समकालीन कविता की प्रवृत्तियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

AN ANALYTICAL STUDY OF THE TRENDS OF HINDI CONTEMPORARY POETRY

Thesis
Submitted to
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
for the Degree of

Doctor of Philosophy

By

वी. राजलक्ष्मी
V. RAJALAKSHMI

Dr. A. ARAVINDAKSHAN
Professor and Head of the Department of Hindi
Dean - Faculty of Humanities
Supervising Teacher

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI - 682 002

2004

Certificate

This is to certify that this thesis is a bonafide record of work carried out by **V. RAJALAKSHMI,** under my supervision for Ph.D degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any university

Department of Hindi
Cochin University of Science & Technology
Kochi - 682 022

Dr. A. ARAVINDAKSHAN
Prof. & Head of the Dept. of Hindi
Dean, Faculty of Humanities,
Cochin University of Science & Technology
(Supervising teacher)

Date: 9-11-2004

DECLARATION

I hereby declare that the work presented in this thesis is based on the original work done by me under the guidance of Dr. A. Aravindakshan, Professor & Head, Department of Hindi, Dean, Faculty of Humanities, Cochin University of Science & Technology, Cochin - 682 022, and no part of this thesis has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree in any university.

Rajalakshmi.V

V. RAJALAKSHMI

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology
Kochi - 682 002

Date 9-11-2004

अनुक्रम

पृष्ठ संख्या

भूमिका I - IV

अध्याय एक 1-41

आधुनिक हिन्दी कविता का रचनात्मक परिदृश्य

आधुनिक हिन्दी कविता का विकास प्रगतशील कविता प्रयोगवाद की भूमिका नयी कविता की भूमिका नयी कविता की यथार्थोन्मुखता - नयी कविता की मानवीय आस्था अकविता की भूमिका

अध्याय दो 42-85

समकालीन कविता की जनवादी दृष्टि

कविता का जनवादी स्वर हिन्दी में जनवादी कविता की परंपरा प्रगतिवादी कविता में जनवादिता - नयी कविता में जनवादिता - समकालीन कविता की जनवादी दृष्टि शोषण तंत्र के नए रूप और उसका विरोध सामान्य जनता का आशंकाकुल जीवन मानवीय आस्था

अध्याय तीन 86-124

समकालीन कविता में जीवन यथार्थ के अन्तर्विरोधी पक्षों की अभिव्यक्ति

सामाजिक अन्तर्विरोध और साहित्य सामाजिक अन्तर्विरोध के आयाम राजनीतिक अन्तर्विरोध के आयाम साँस्कृतिक अन्तर्विरोध के आयाम

अध्याय चार 125-180

समकालीन कविता में नारी मुक्तिवादी स्वर और स्त्री कवितायें

भारतीय नारीमुक्तिवाद और उसकी साहित्यिक अभिव्यक्ति द्विवेदीयुग की नारी - छायावादी युग की नारी - प्रगतिवादी युग में नारीमुक्ति का स्वर नयी कविता में नारी मुक्ति का स्वर समकालीन कविता में नारी मुक्ति का स्वर समकालीन कविता की स्त्री रचनात्मकता अवसाद का स्वर उम्मीद का स्वर प्रतिरोध का स्वर

अध्याय पाँच 181-222

समकालीन कविता की भाषा

भाषा को भूमिका यथार्थवादी कविता की भाषा - नयी कविता की भाषा भाषा परिवर्तन समकालीन कविता की भाषा की बुनावट भाषा की इतिहास दृष्टि भाषा की मनुष्यधर्मी चेतना कविता का वृत्तान्त और वृत्तान्त की कविता भाषा की लोकधर्मी चेतना - भाषा में मिथकीय संसार का विकास

उपसंहार 223-228

संदर्भ ग्रन्थ 229-245

भूमिका

समकालीन कविता जनपक्षधरता की कविता है । उसमें मनुष्य और उसका परिवेश ही नहीं बल्कि उसकी अन्तरंगतायें ही अधिक उभर आती हैं । समकालीन जीवन के सूक्ष्म तन्तुओं को पकड़ने की सक्रिय कोशिश समकालीन कविता की रही है । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध समकालीन कविता की प्रवृत्तियों को समग्रता के साथ प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास है ।

यह शोध-कार्य पाँच अध्यायों में विभक्त है ।

प्रथम अध्याय का शीर्षक है आधुनिक हिन्दी कविता का रचनात्मक परिदृश्य" । समाजोन्मुखता हर युग की कविता की आधारशिला है । समाजोन्मुखता यथार्थ की अभिव्यक्ति की इच्छा के सन्दर्भ में कैसे बदलती है, यथार्थ की समझ और यथार्थ की यथार्थता की व्यंजना तक कैसे पहुँचती है, इस पर विचार किये बिना समकालीन कविता की प्रवृत्तियों का विश्लेषण अधूरा रह जायेगा । समकालीन कविता की भूमिका के रूप में ही प्रस्तुत अध्याय की परिकल्पना है क्योंकि आधुनिक हिन्दी कविता भिन्न-भिन्न मोड़ों से गुज़रकर समकालीन दौर तक कैसे पहूँची और वह क्यों समकालीन कविता कहलाई गयी इसका उत्तर इस अध्याय में दिया गया है । "समकालीन" शब्द सिर्फ एक सामान्य शब्द नहीं है । वह एक गहन और व्यापक परिदृश्य से संबन्धित शब्द है । आज के दौर में लिखी जानेवाली कविताओं को हम समकालीन कविता के अन्तर्गत समाविष्ट नहीं कर सकते । मनुष्य को उसकी संपूर्णता में देखने, आकलित करने और स्थिति की समझ के अनुसार प्रतिक्रियान्वित होने की क्षमता रखनेवाली कविता ही समकालीन कविता का स्तर हासिल कर सकती है । समकालीन कविता की प्रासंगिकता इस दृष्टि से है कि वह अपराजेय मनुष्य की अदम्य जिजीविषा की कविता है । पूर्ववर्ती युग की समकालीन प्रवृत्तियों का लेखा जोखा प्रस्तुत करते हुए समकालीन कविता तक का संक्षिप्त प्रवृत्तिगत इतिहास प्रमुख कवियों के माध्यम से इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है ।

द्वितीय अध्याय का शीर्षक समकालीन कविता की जनवादी दृष्टि । समकालीन कविता में जनवादी दृष्टि की प्रासंगिकता इसलिए है कि वह मानव-मौजूदगी की सशक्त अभिव्यक्ति है । यथार्थ के प्रति सक्रिय ढंग से प्रतिक्रियान्वित होने की कोशिश उन कविताओं को कालजयी बनाती है । शोषणतंत्र में पिसते आम आदमी के यथार्थ को समकालीन कविता ने सरलीकृत नहीं किया है । समकालीन कविता की क्षमता इसमें निहित है कि वह कहां और कैसे लोकजीवन से जुड़ती है । शोषण तंत्र में चरमराते मानव बिंबों को मुक्ति दिलवाने की कोशिश समकालीन कविता की केन्द्रीय अनुभूति है । मुक्ति कामना का यह स्वर मध्ययुग से लेकर आज तक की कविता में गूँजता है । सभी युगों के कवियों ने अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाई है । समकालीन कविता में वही स्वर पूरी प्रखरता से गूँजता है । जनवादिता के विभिन्न आयामों को विश्लेषित करने का प्रयास इस अध्याय में किया गया है ।

तृतीय अध्याय का शीर्षक है -"समकालीन कविता में जीवन यथार्थ के अन्तर्विरोधी पक्षों की अभिप्यक्ति" । कविता कर्म ही इसका मुख्य प्रतिपाद्य है । कविता हमारे जीवन यथार्थ के अन्तर्विरोधों को कैसे समझती है और अभिव्यक्त करती है, यही इस अध्याय का विषय है । समकालीन कवि ने जीवन यथार्थ के अन्तर्विरोधों को किस सूझ-बूझ के साथ यथार्थीकृत किया है यही अध्ययन की वस्तु है । वे जीवन यथार्थ का मानचित्र मात्र प्रस्तुत नहीं करते हैं बल्कि उसे एक विकासमान प्रक्रिया के रूप में देखते हैं । इन अन्तर्विरोधों के सामाजिक, राजनीतिक, साँस्कृतिक पक्षों पर विचार किया गया है ।

चतुर्थ अध्याय है- "समकालीन कविता में नारी मुक्तिवादी स्वर और स्त्री कवितायें" । एक तरह से इस अध्याय की अनिवार्यता नहीं है । इस विषय को सामाजिक अन्तर्विरोध या जनवादी दृष्टि के अन्दर समाविष्ट कर प्रस्तुत किया जा सकता था । मगर पूर्ववर्ती युग की तुलना में आज स्त्री-रचनात्मकता केन्द्रीय विषय है । नारी-लेखन को लेकर आज गंभीर चर्चायें चलती रहतीं हैं। अभी तक पुरुष दृष्टि से ही स्त्री की रचनाओं का विश्लेषण होता रहा । उससे भिन्न दृष्टि से स्त्री कविता को देखना अनिवार्य प्रतीत होता है । इस कारण से

तत्व विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है । इस अध्याय में समकालीन कविता के प्रमुख कवियों को विश्लेषण कोलये चुना गया है । इसके अन्तर्गत कात्यायनी, अर्चना वर्मा, सुमन राज, अनामिका से होकर स्त्री संघर्ष का नया आयाम कैसे खुलता है, इस पर विचार किया गया है । स्त्री की अपराजेय मनस्थिति और संकल्पधर्मी चेतना भी इस अध्याय की विषय-वस्तु है ।

पंचम अध्याय का शीर्षक है "समकालीन कविता की भाषा" । कविता की भाषा का कविता से अलग करने पर उसके संवेदन तंत्र को क्षति पहुँचती है । दरअसल कविता की भाषा ही कविता है । भाषा से ही कविता उत्पन्न होती है और विकसित भी । तब कविता के विषय में जो विविधता आती है वह वैविध्य भाषा में भी आता है । कविता की प्राथमिकता और उसका विकल्प आदि कविता में भाषा से ही व्यक्त होते हैं । इस अध्याय में समकालीन कविता की भाषा की लोकधर्मी चेतना, इतिहास दृष्टि, मनुष्यधर्मी चेतना आदि पक्षों का विश्लेषण प्रस्तुत किया है ।

उपसंहार में समकालीन कविता की अन्तरंग पहचान को रेखाँकित करने का प्रयास किया गया है । समकालीन कविता क्यों सक्रिय है, क्यों जीवन्त है और क्यों प्रासंगिक हे । ये प्रश्न साहित्यिक भी हैं और समाजशास्त्रीय भी । इन सवालों को अन्तरअनुशासनपरक सन्दर्भों में देखना इस शोध-प्रबन्ध का अभीष्ट है ।

कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष एवं मानवीय संकाय के अध्यक्ष सम्माननीय प्रोफसर डॉ. ए. अरविन्दाक्षनजी के विद्वत्तापूर्ण निर्देशन में यह शोध कार्य संपन्न हुआ है । यथा समय उनसे प्राप्त बहुमूल्य सुझाव और निर्देश मेरे लिए पथ प्रदर्शक रहे । मैं ने उनकी सहृदयता का भी लाभ उठाया है । कविता की उनकी समझ ने मुझे इतना प्रभावित किया है कि उस प्रभाव का किंचित लाभ ही मैं ने अवश्य उठाया है ।

कविता संबन्धी उनकी पुस्तकों से भी मुझे पर्याप्त दिशा मिली है । मैं ने उनके प्रति चिर ऋणी हूँ और प्रणम्य भाव से आभार प्रदर्शित करती हूँ ।

इस विश्वविद्यालय के प्रोफसर डॉ. एम षण्मुखन इस शोध-कार्य में मुझे प्रोत्साहन देते रहें । उनके प्रति भी मैं धन्यवाद अर्पित करती हूँ । विभाग के अन्य गुरुजन डॉ. एन. मोहनन और डॉ. शशिधरन के प्रति भी मै आभार प्रकट करती हूँ ।

मेरे सभी-शोध छात्रा मित्रों के प्रति, जिनका परोक्ष एवं प्रत्यक्ष सहायता मुझे मिली है, स्नेहसिक्त शब्दों में आभार प्रकट करती हूँ ।

पुस्तकालयाध्यक्षा और उनके सहायक का स्मरण इस अवसर पर आवश्यक है ।

अन्त में अत्यन्त विनम्रता से यह शोध प्रबन्ध सहृदय विद्वानों के सम्मुख प्रस्तुत कर रही हूँ । सुधी जन जानते हैं कि कोई भी अध्ययन अपने आप में पूर्ण नही हैं । इसलिए मेरे प्रबन्ध में जो कमियाँ हैं जिनकेलिये मैं क्षमा प्रार्थी हूँ ।

सविनय

वी. राजलक्ष्मी

हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
कोच्चि 682 022

तारिख 9-11-2004

अध्याय - एक

आधुनिक हिन्दी कविता का रचनात्मक परिदृश्य

आधुनिक हिन्दी कविता का विकास

कविता समय-सापक्ष अभिव्यक्ति है । समय-सापक्षता आधुनिक हिन्दी कविता का भी बुनियादी तत्व है और समय का यथार्थ हर युग में कविता का विषय भी है । नवजागरण काल की कविता अधिक मुखर रही । वह बहिरंग सामाजिक जीवन से संबन्धित काव्य काल है। दरअसल उसका दृष्टिकोण बहुमुखी रहा । धीरे-धीरे कविता स्थूल जगत की अपेक्षा सूक्ष्म जगत के यथार्थ का अभिव्यक्त करने लगी । छायावादी कविता स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है । छायावादी कवि अन्तर्मुखी दृष्टि के हिमायती थे। प्रसाद पन्त निराला और महादेवी वर्मा अपने-अपने ढंग से समय के सत्य को अभिव्यक्ति देते रहे । सब ने व्यक्तिगत अन्तरंगताओं को अपनाया । इसमें निराला एक अपवाद है । इस अन्तर्मुखता को तोड़कर निराला ने कविता को जीवन से जोड़ा । इस अर्थ में आधुनिक हिन्दी कविता की विकास-यात्रा छायावादी युग से शुरु होती है ।

छायावादी युग में निराला ने आधुनिक हिन्दी कविता को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य दिया । निराला का कविता-बीज अंकुरित होकर छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता से गुज़रते हुए आगे की कविता तक को परिभाषित करने की क्षमता रखता दिखाई देता है । इसलिए आधुनिक हिन्दी काव्य की शुरुआत निराला से मानें तो अनुचित नहीं होगा । उनका आधुनिक बोध प्रगतिशील चेतना से संपृक्त है । निराला का काव्य और व्यक्तित्व दोनों आधुनिकता की समग्र चेतना से स्पन्दित हैं । कविता की मुक्ति को मनुष्य की मुक्ति माननेवाले निराला की कविताओं में सामाजिक जीवन का स्पन्दन है, विविधता और विद्रोह हैं । उनकी मुक्ति कामना में तमाम मानवजाति की आशाओं और आकांक्षाओं का स्वर मुखरित है । प्रथम छंदोंमुक्त कविता लिखकर उन्होंने काव्यक्षेत्र में नवीनता की पहली किरण बिखेर दी । "जूही

कला में उन्मुक्त प्रेम व्यापार के अभिव्यक्ति है लिखी गई कवि का प्रत्येक कविता भिन्न-भिन्न क्षितिजों को छूती है । "देशकाल के शर से बिंधा"[1] कवि की कई कवितायें प्रखर सांस्कृतिक और आधुनिक बोध से संपृक्त है। 'कुकुरमुत्ता' एक व्यंग्य कविता से बढकर बदलते सौन्दर्य-बोध की कविता है इस प्रतीकात्मक कविता का केन्द्रबिन्दु आम आदमी है । इस बदली हुई सौन्दर्य दृष्टि का एक प्रखर रूप समकालीन कविता में मिलता है । "गम की कहानी मज़ा ले-लेकर कहने की प्रवृत्ति हिन्दी कविता में छायावादी मिजाज के टूटने की स्थिति में उत्पन्न हुई जिसका ऐतिहासिक दस्तावेज है निराला का कुकुरमुत्ता ।"[2]

निराला की कविता जीवन को उसकी समग्रता में लेनेवाली हमारी शताब्दी की मनोभूमियों की कविता है । नवजागरण, राष्ट्रीय मुक्ति और सर्वहारा वर्ग की मुक्ति से जुड़ी उनकी कवितायें मुक्तमन वाले व्यक्ति की अभिव्यक्ति है । निराला की ये बहुआयामी कवितायें भविष्य की कविता का पथ प्रशस्त करती हैं । उन्होंने कटु जीवनानुभवों का साक्षात्कार ही नहीं किया बल्कि गहरी दृष्टि से उन्हें अपनी रचनाओं में शब्दबद्ध भी किया । असुरक्षा और टूटन की स्थितियों से गुज़रते कवि को अपना जीवन निरर्थक लगा । यह निरर्थकता ही उनकी कविताओं की सार्थकता है । क्योंकि वे द्रष्टा से बढकर भोक्ता हैं ।

उनकी सरोजस्मृति समग्रतः मानवीय विड़म्बना की कविता है ।

धन्ये मैं पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरे हित न कर सका ।
हारता रहा मैं स्वार्थ समर
देखता रहा मैं खड़ा अपल [3]
वह शरपेक्षप वह रणकौशल

---

1 तुलसीदास -अपरा निराला पृ.सं. 13, प्र. सं. 1992 (छात्र संस्करण)
2. कविता के नये प्रतिमान-नामवरसिंह पृ.सं. 154 प्र. सं.1993
3. सरोजस्मृति -निराला पृ.सं. 12 प्र. सं.1999 (छात्र संस्करण)

स्वार्थ समर क्षेत्र के भागीदार कवि का दु:ख यहाँ काल्पनिक परिवेश से उपजा नहीं है मलयज के शब्दों में उनकी चीख छायावादी दुख की स्वनिर्भर दुनिया से बाहर आने की चीख है । यह दु:ख अनुभूति का अतिक्रमण करता है । क्योंकि छायावादी कविता में दु:ख के कई प्रसंग आये हैं परन्तु उस दु:ख को भोगनेवाले हाड़-माँस के पुतले की असली तस्वीर महज निराला की कवताओं में ही उजागर हुई है ।[1]

निराला ने कविता की वाहरी दुनिया को ही नहीं आन्तरिक दुनिया को भी एकदम परिवर्तित किया । अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा वे यथार्थ से जूझनेवाले कवि हैं । राम और सीता क पूर्वनिर्धारित रूप को उन्होंने बदल दिया । 'राम की शक्तिपूजा' का राम आधुनिक मानव का प्रतीक है । उनका संघर्ष आधुनिक परिप्रेक्ष्य से गुज़रते आम आदमी का संघर्ष है । 'सीता' के ज़रिये राष्ट्र की मुक्ति की कामना भी वे व्यक्त करते हैं । राम और सीता की यह नवीन अवधारणा निराला के आधुनिक भावबोध का परिचय देती है । 'राम की शक्तिपूजा' में उन्होंने लिखा

है अमा-निशा; उगलता गगन घन अन्धकार;
खो रहा दिशा का ज्ञान; स्तब्ध है पवन-चार,
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल;
भूधर क्यों ध्यान-मग्न; केवल जलती मशाल ।[2]

निराला ने हिन्दी कविता के व्यक्तित्व को परिवर्तित किया जो आगे भी कविता केलिए उर्वर सिद्ध हुआ ।

---

1. कविता से साक्षात्कार मलयज पृ.सं. 12 प्र. सं. 1979
2. राम की शक्तिपूजा -अपरा -निराला पृ.सं. 44, प्र. सं. 1992 (छात्र संस्करण)

साहित्य का हर परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन का अचूक साधन है । हिन्दी कविता भी इस परिवर्तन को आत्मसात करने लगी । वह धीरे-धीरे कल्पना के वायवी जगत को तोड़कर यथार्थवादी धरातल की खोज करने लगी । ठोस यथार्थवादी धरातल की खोज में कविता मार्क्सवाद के बहुत निकट आ गयी जो प्रगतिवादी कविता कहलाई । आर्थिक असमानता के विरुद्ध प्रगतिवादी कवि अपनी कविताओं के माध्यम से आवाज़ बुलन्द करते रहे । शोषण के विरुद्ध एक जुझारु मुद्रा इन कवियों ने अपनायी । साम्यवादी समाज में ही उन्होंने विश्व कल्याण की संभावनायें देखीं । इसलिए उनकी रचनाओं में सामाजिक यथार्थ और मानव मुक्ति के स्वर गूँजते मिलते हैं । पूँजिवादी सभ्यता का हनन श्रमिकों और कृषकों की दुर्दशा, सर्वहारा वर्ग की विजय, वर्गहीन समाज की स्थापना आदि पक्षों को प्रगतिवादी कवियों ने तरजीह दी । नागार्जुन, त्रिलोचन और केदारनाथ अग्रवाल यथार्थ से निरन्तर जूझते रहे ।

तत्कालीन समय से विक्षुप्त कवि नागार्जुन आगामी भविष्य को लेकर चिन्तित हैं । उनकी कवितायें प्रगतिशील चेतना से संपृक्त आधुनिक भावबोध की अभिव्यक्ति हैं । वे सर्वहारा वर्ग के पक्षधर ही नहीं उन्हीं में से एक हैं । सतही ढंग से सरल दिखनेवाली उनकी कविताओं में परिवेश का स्वर अधिक स्पष्ट है । उन्हें जनता की शक्ति पर पूरा भरोसा है । इसलिए वे आम जनता को तत्कालीन अन्याय के विरुद्ध प्रतिक्रियान्वित होने की प्रेरणा देते हैं । उनकी क्रान्ति अमानवीयता के प्रतिरोध में परिकल्पित रही है ।

'लाल भवानी' में अमानवीय स्थिति के विरुद्ध नागार्जुन का आक्रोश मुखरित है । तत्कालीन व्यवस्था के ध्वंस की कामना करने के साथ साथ जनता के सक्रिय विद्रोह पर भी उन्हें पूरा भरोसा है । आशा करते हैं कि निकट भविष्य में ही नौकरशाही का यह रद्दी ढाँचा

चकना चूर हो जायेगा मज़दूर किसानों को अपना हक माँगने का मौका मिलेगा । वे लिखते हैं ।

> खेत-मज़दूरों और किसानों में ज़मीन बँट जायगी,
> नहीं किसी कमकर के सिर पर बेकारी मँडरायेगी;
> नहीं मिलेगा साजिश करने का मौका गद्दारों को
> वतन फ़रोशों को न मिलेगा ठका टेकेदारों को, सपने में भी क्षमा मिलेगी
> नहीं कभी हत्यारों को, एक-एक कर कैद करेगी जनता रँगे सियारों को,
> नौकरशाही का यह रद्दी ढाँचा होगा चूरम-चूर,
> सुजला सुफला के गायेंगे गीत प्रसन्न किसान-मज़दूर[1]

समय की पहचान नागार्जुन की कविताओं का सबसे बड़ा आकर्षण है जो कवि को अन्य समकालीनों से अलग करती है । सर्वहारा वर्ग के पक्षधर कवि ने 'संघर्ष' को एक व्यापक धरातल दिया है । कोर्ट की दीवार पर पोस्टर चिपकानेवाले और चाय की दूकान में नोटिस फेंकनेवाले में कवि अपना प्रतिबिंब देखते हैं । उनकी कविता यथार्थ के अन्धेरे में रास्ता टटोलती रहती है । भूमिगत संघर्ष का तीखा अनुभव उन्हें है ।

> हे अपरिचित भूमिगत, अज्ञातवासी
> नाम गोत्रविहीन प्रिय आज़ाद छापेमार' टुकडी के बहादूर बन्धु !
> निष्कंटक करो इस कंटकावृत भूमिको
> अपनी परिधि को करो तुम प्रस्तार
> हे नवशक्ति [2]

---

1 लाल भवानी चुनी हुई रचनायें -नागार्जुनपृ.सं. 60 प्र. सं. 1985

2. वह कौन था चुनी हुई रचनायें 2- नागार्जुन पृ.सं. 60 प्र. सं.1985

कवि नागार्जुन   विद्रोह दृष्टिकोण   प्रखर रूप "हरिजन गाथा" में मिलता है । हिन्दी में राजनीतिक कविता का आरंभ उनकी प्रस्तुत व्यंग्यपरक यथार्थवादी कविता से होता है । क्रान्ति चेतना के बीच सांस्कृतिक बोध, इतिहास बोध और मानवीय संवेदना का परिपाक नागार्जुन की कविताओं को समय से साक्षात्कार कराता है । उनका हर पात्र अमानवीयता का शिकार बना हुआ आम आदमी है। 'हरिजनगाथा' में अंकित 'गरीबदास' भविष्य का एहसास दिलानेवाले सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधि नागार्जुन ही हैं ! नागार्जुन इसमें तत्कालीन व्यवस्था और उसकी मार सहनेवाले आम आदमी पर क्षुब्ध होते हैं । राजनीतिक दृष्टि से भी इस कविता का महत्व है । भोजपुर की जनक्रान्ति पर आधारित यह कविता पूर्ववर्ती सारे काव्यसिद्धान्तों को चुनौती देती है ।

भूमिहीन बन्धुआ मज़दूरों के घर में
जीवन गुज़रेगा हैवान की तरह
भटकेगा जहाँ-जहाँ वनमानुस-जैसा
अधपेटा रहेगा, अधनंगा ड़ोलेगा
तोतला होगा कि साफ   साफ बोलेगा
जाने क्या करेगा
बहादूर होगा कि बैमौत मरेगा ।[1]

ये कोरे नारे नहीं बल्कि इनकी कई काव्यात्मक संभावनाये हैं जिनसे यह कविता प्रभावशाली बनी है ।

'शासन की बन्दूक' में बन्दूक भिन्न-भिन्न अर्थों और रूपों की सूचना देती है । यह कविता राजनीति को आधुनिक संदर्भ देती है इसमें भी वे जनशक्ति के प्रतिरोध को निमन्त्रण

---

1 हरिजन गाथा   चुनी हुई रचनायें   2-नागार्जुन पृ.सं. 58 प्र. सं. 1985

देते हैं [illegible] प्रणय या शान्ति का वाहक नहीं बल्कि क्रान्ति की बन्दूक है । प्रगतिवादी चेतना से संपन्न कवि में यद्यपि भावुकता है फिर भी वह यथार्थवादी दृष्टि से समृद्ध है ।

जला ठूँठ पर बैठकर गयी कोकिला कूक
बाल न बाँका कर सकी शासन की बन्दूक [1]

" सामाजिक यथार्थ के समकालीन बिंब, सामाजिक अन्तर्विरोध की गहरी पहचान और साम्यवादी आस्था की आधार भूमि पर कवि में जो क्रान्तिकारी चेतना जागती है, वह एक ऐसे व्यंग्य काव्य को जन्म देती है जिससे आधुनिक हिन्दी कविता में राजनीतिक कविता का आरंभ होता है "।[2]

निस्सन्देह नागार्जुन ने कविता को विशिष्ट बोध से सामान्य बोध की ओर मोड़ने की कोशिश की । इस कोशिश के बीच भी उन्होंने भारतीय संदर्भ को समग्रता से पकड़ा है । उनकी संवेदना गाँव से शहर तक जाकर पुनः गाँव की ओर लौट आती है । वह ठेठ देशीपन की जीती-जागती वास्तविकता है । अपनी ठोस ज़मीन से गहरा लगाव त्रिलोचन और केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में भी लक्षित होती है । त्रिलोचन की कविता औसत आदमी की कविता है जिसमें उनकी मिट्टी की महक है । यह लोकदृष्टि अन्य कवियों से उन्हें अलग करती है । "उस जनपद का कवि हूँ" कविता का जनपद बहुत व्यापक है । अरुण कमल के शब्दों में वह "सहस्रशीर्ष" कविता है ।[3] प्रस्तुत कविता विराट सामाजिक जीवन की विविधताओं का उद्घाटन करती है । भूखे, दुखे, नंगे और अनजान जनपद से तादात्मय ही नहीं प्राप्त करते बल्कि उन्हीं में एक बनकर यह घोषणा करते हैं-

---

1. शासन की बन्दूक तुमने कहा था नागार्जुन पृ.सं. 76 प्र. सं.1991
2. समावेशी आधुनिकता-धनजंय वर्मा पृ.सं. 76 प्र. सं. 1991
3. त्रिलोचन का जनपद: एक नक्शा अरुण कमल आलोचना अक्तूबर -दिसंबर 1987

उस जनपद का कवि भूखा दूखा है

नंगा है, अनजान है कला-नहीं जानता

कैसी होती है क्या है, वह नही मानता

कविता कुछ भी दे सकती है, कब सूखा है

उसके जीवन का सोता इतिहास ही बता

सकता है............ [1]

त्रिलोचन की कविता परिपक्व मानसिकता की अभिव्यक्ति है । प्रस्तुत काव्यसंग्रह उनकी काव्ययात्रा के एक नये मोड़ का दिग्दर्शन कराता है । हिन्दी के आन्तिरक लय के अनुकूल विदेशी काव्य रूप सोनट का रूपायन इसकी एक विशेषता है ।

'दिगन्त' की कविताओं के द्वारा कवि ने व्यक्ति सत्य को मानव सत्य में बदल दिया है । उनकेलिए कविता तनाव से मुक्त होने का उपाय नहीं, जीवन में कुछ खोजने का प्रयास है । यह गतिशीलता कवि की कविताओं को आधुनिक दृष्टि प्रदान करती है । रूपबन्ध के स्तर पर पश्चिमी प्रभाव के बीच भी राजनीतिक साँस्कृतिक और साहित्यिक स्तरों पर भारतीयता को बनाये रखने में वे सफल निकले । मलयज ने लिखा है-"वे मानव अनुभूतियों की विशिष्टता के नहीं, मानव अनुभूतियों की मार्मिकता के कवि हैं । जीवन और जगत की आपाधापी में जो सहज-मानव-सत्य आँख की ओट हो गये हैं उन्हें एक नयी और विश्वसनीय पहचान के साथ वे हमारे सामने लाते हैं । कड़वे और मीठे अनुभूतियों ने उन्हें एक जीवनान्वेषी बना दिया है "।[2]

जीवन है दुनिया का सपना
जब तक आँखों में है तब तक ज्योति बना है
अलग हुआ तो आँसू है या तिमिर घना है
बने ठीकरा तो भी मिट्‌टी को है तपना ।[3]

---

1 उस जनपद का कवि हूँ मैं त्रिलोचन पृ.सं.17 प्र. सं. 1982

2. कविता से साक्षात्कार-मलयज पृ.सं. 64 प्र. सं. 1979

3. दिगन्त त्रिलोचन पृ.सं. 12 प्रथम संस्करण

केदारनाथ जनवादी कवि है । वे प्रकृति के चितेरे है फिर भी उनके प्रकृति सौन्दर्य की अन्मुक्तता में मानवीय संस्पर्श है । सच्च अर्थ में वे जीवनधर्मी कवि है। यह दृष्टि ही उन्हें हिन्दी की यथार्थवादी परम्परा से जोड़ती है । उनकी कविताओं म अंकित दिल व्यक्ति सत्ता का प्रतीक नहीं समग्र पीड़ित भारतीयों का दिल है । स्वतंत्र देश में रहकर भी भारतीय अस्वतंत्र है । इसलिए मुक्ति पर उनकी कविता बल देती है । मुक्ति की छटपटाहट उनकी कविताओं को जीवंत आयाम देती है । धूप उनकेलिए खुले वातावरण का ही नहीं जिजीविषा का भी प्रतीक है ।

धूप नहीं, यह
बैठे है खरगेश पलंग पर
उजला
रोयेंदार मुलायम
इसको छूकर
ज्ञान हो गया है जीने का
फिर से मुझको । [1]

प्राकृतिक चित्रण के भीतर व्यक्ति की उपस्थिति और व्यक्ति की अनुपस्थिति में प्रकृति की उपस्थिति दोनों उनमें हैं । प्रकृति की उन्मुक्तता के बीच सारी मानवजाति की मुक्ति की कामना उनमें है जो नये कवियों के आशावादी दृष्टिकोण की ओर संकेत करती है । वे ग्रामीण और नगर जीवन के बहुआयामी सन्दर्भों के बीच मनुष्यता की तलाश करनेवाले धरती से जुड़े कवि हैं । जनवादी चेतना के संवाहक केदारजी के बारे में अशोक त्रिपाठी ने लिखा है -"केदार की जनपक्षधरता केवल मौसमी उबाल नहीं है बल्कि उसके पीछे एक सघर्षपूर्ण, सार्थक, सुदीर्घ रचना परम्परा है ।"[2] "जो शिलायें तोड़ते हैं" कविता में उनकी जनवादी दृष्टि खूब व्यंजित है ।

---

1 फूल नहीं रंग बोलते है केदारनाथ अग्रवाल पृ.सं. 32-33 प्रथम संस्करण

2. आलोचक पाठकों से अशोक त्रिपाठी -जो शिलायें तोड़ते हैं पृ.सं. 32 प्र. सं. 1986

उस कविता [illegible] संघर्षरत जनता के पक्षधर बनना [illegible] नहीं चाहते बल्कि उन्हीं में से एक बनना चाहते हैं । ज़िन्दगी को गढने केलिये शिलायें तोड़नेवाले जनसमुदाय के सिलसिले में केदारनाथ अग्रवाल लिखते हैं -

जिन्दगी को
वह गढेंगे जो शिलायें तोड़ते हैं,
यज्ञ को इस शक्ति श्रम के
श्रेष्ठतम मैं मानता हूँ !

मैं नया इंसान हूँ इस में सहयोग दूँगा ।
खूबसूरत ज़िन्दगी को नौजवानी भोग लूँगा ।[1]

निराला, नागार्जुन त्रिलोचन और केदारजी की दृष्टि सदैव समूचे जनसमुदाय पर टिकी है । वैयक्तिक अनुभूतियों के परे परिवेश से जुडाव उनकी कविताओं को एक व्यापक घरातल प्रदान करता है । ग्रामीण और शहरी परिवेश के जुड़ाव से उत्पन्न एक नया भावबोध उनकी आत्मा में है । रचनात्मक तनाव का यह सह-अस्तित्व उन्हें एक नई स्फूर्ति प्रदान करता है । भारतीय आधुनिकता को बनाये रखने में ये कवि सक्षम हैं । केदारनाथ सिंह के शब्दों में "उनकी आधुनिकता की जड़ें अपने समय और समाज के संघर्षो की उस लम्बी परम्परा में है जो परिवर्तन की एक दीर्घ प्रक्रिया के अन्तर्गत धीरे धीरे विकसित होती रही है । इसलिए उनके शब्दों में एक अर्थ की गूँज है जो चेतना में देर तक टिकी रहती है ।"[2]

---

1 जो शिलायें तोड़ते हैं केदारनाथ अग्रवाल पृ.सं. 198-199 प्र. सं.1986
2. मेरे समय के शब्द - केदारनाथ सिंह - पृ.सं. 16 प्र. सं. 1993

प्रयोगवाद की भूमिका

'तारसप्तक' के प्रकाशन के साथ हिन्दी काव्य में सभी दृष्टियों स आधुनिक भावबोध का उदय हुआ । तारसप्तक आधुनिक भावबोध की समवेत अभिव्यक्ति है । तारसप्तक के सात कवि एक दूसरे से भिन्न दिखते हुए भी अपनी-अपनी दृष्टि से आधुनिक है । प्रगतिवादी कविता में समाज को आश्रय मिला । तारसप्तक के उदय के साथ प्रयोगवादी कविता का प्रारंभ हुआ जिसमें व्यक्ति की पीड़ा, संत्रास, कुंठा, दुःख आदि भावनायें व्यक्त होती रहीं । संवेदना के स्तर पर ये कवितायें पूर्ववर्ती कविता से भिन्न हैं । सिद्धान्त स्थापनाओं के बदले चारों ओर की परिस्थितियों को निकट से देखने का प्रयास इन कवियों ने किया । भूख गरीबी, बेरोज़गारी, युद्धभय और असुरक्षा से पीड़ित आम आदमी ही इस कविता के केन्द्र में है । वह अस्तित्व बोध और अकेलापन से पीड़ित है । नये मूल्यों की खोज में भटकता आदमी एक तनावयुक्त दार्शनिक वातावरण उपस्थित कर देता है । "मुक्ति"कविता में कवि अज्ञेय ने बदलते मूल्यों को दार्शनिक दृष्टिकोण से आँकने की कोशिश की है ।

एक अन्तिम निमिष भर केलिए कट जाय मायापाश
एक क्षण भर वक्ष के सूने कुहर को झनझनाकर
चला जावे झुलस कर भी तप्त अन्तिम मुक्ति का प्रश्वास
कब तलक यह आत्मा संचय की कृपणता ! यह घुमड़ता त्रास !
दान कर दो खुले कर से, खुले उर से होम कर दो स्वयं को समिधा बनाकर-
शून्य होगा, तिमिरमय भी, तुम यही जानो कि अनुक्षण मुक्त है आकाश ![1]

आधुनिकता और आधुनिकता बोध से हिन्दी साहित्य का साक्षात्कार कराने का पूरा श्रेय अज्ञेय को प्राप्त है । डॉ.लक्ष्मीनारायण ने उन्हें "आधुनिकता के रथी" नाम से संबोधित किया है ।[2]

---

1. मुक्ति-अज्ञेय-तारसप्तक पृ.सं. 301 प्र. सं. 19 66
2. कविता कालयांत्रिक डॉ.लक्ष्मीनारायण पृ.सं. 152 प्र. सं. 1988

असल में पाश्चात्य साहित्य जगत की नवीनता से अज्ञेय ने ही हमें परिचित कराया है । आधुनिकता से जुड़ी संवेदना आज़ादी के पूर्व लिखी काव्य कृतियों में भी बड़ी मात्रा में दिखाई देती है । छायावादी काव्य आधुनिकता की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है । मगर वह प्रखर मात्रा में स्वातंत्रयोत्तर साहित्य में ही पायी जाती है । इस दृष्टि से भी अज्ञेय अग्रणी हैं । उन्होंने काव्य को परंपरागत अवधारणाओं से मुक्त करके आधुनिक संदर्भ से जोड़ने की कोशिश की । कवि की इस आधुनिकोन्मुखता पर आलोचकों ने व्यंग्य किया था । किन्तु वे पीछे नहीं हटे और अपने कवि कर्म को परिभाषित करते रहे । नये कवियों को नये ढंग से कविता को परिभाषित करने का आह्वान देते हुए उन्होंने लिखा-

गा गया सब राजकवि, फिर राजपथ पर खो गया ।
गा गया चारण, शरण फिर शूर की आ कर, निरापद सो गया ।
गा गया फिर भक्त दुलमल चाटुता से वासना को झलमला कर
गा गया अन्तिम प्रहर में वेदना प्रिय अलस तन्द्रिल कल्पना का लाड़ला ।
कवि निपट भावावेश से निर्वेद ।
किन्तु अब-निःस्तब्ध संस्कृत
लोचनों का भाव संकुल, व्यंजना का भीरू
फटा सा अश्लील सा विस्फार
झूठ वह आकाश का निरवधि गहन विस्तार
वंचना है चाँदनी सित
शिशर की राका निशा की शान्ति है निस्सार ।[1]

अज्ञेय अपने कवि कर्म की सही आलोचना चाहते हैं । उनकी कवितायें आधुनिक

---

1 शिशिर की राका-निशा-अज्ञेय तारसप्तक पृ.स. 287 प्र. सं. 1966

भावबोध की सशक्त अभिव्यक्ति हैं । कविता म हो या गद्य में वे एक तटस्थ द्रष्टा हैं । यह दृष्टि ही उन्हें आधुनिक बनाती है । कवि कर्म की स्वतंत्रता से वे वाकिफ थे । विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के शब्दों में -"उनकी कविताओं में एक संयत अनुशासित मनस्थिति है और वे भावावेग से या अतीत के सम्मोहन या यथार्थ के स्फीत चित्रण से भरसक बचने का प्रयास करते हैं ।[1] अज्ञेय की कविताओं में व्याप्त सौन्दर्य चेतना से हमारी संवेदनात्मक दृष्टि अभिभूत हुई। आगे की कविता की सौन्दर्य चेतना को सुनिश्चित करने में उनका महत्वपूर्ण योगदान है ।

समकालीन जीवन से जुड़कर औसत आदमी की पीड़ाओं को शब्दबद्ध करने का प्रयास पहले निराला ने किया और मुक्तिबोध ने एक संतुलित चुनौतिपूर्ण दृष्टिकोण के साथ उसे आगे बढाया जिसे व्यापक स्तर पर समकालीन कवियों ने स्वीकार । उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से यथार्थ को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य दिया । उनकी कविता युग के बहुतेरे प्रश्नों से जूझती हुई आगे बढी । श्रीकान्त वर्मा के शब्दों में मुक्तिबोध की कविता केवल कविता न होकर ध्वंस भी है । मुक्तिबोध की कविता के साथ ही जो परिवर्तन हुआ उसमें मान्यताओं के बहुत से दुर्ग गिर गये । इसमें कुछ भी अप्रत्याशित नहीं है ।[2]

नयी कविता के परिप्रेक्ष्य में ही मुक्तिबोध ने हिन्दी कविता को कालयात्री, जनचरित्री और परमस्वाधीन कहकर संबोधित किया था जो आगे नयी कविता की ही नहीं समकालीन कविता की भी सशक्त प्रवृत्तियाँ बन गयीं । ये प्रवृत्तियाँ मुक्तिबोध के प्राथमिक दौर की कविताओं में भी बीज रूप में वर्तमान हैं । कविता में वे तटस्थ रहने के बजाय आत्मालोचन करते हैं । आत्मालोचन की वृत्ति उनकी आधुनिकता को प्रखर बनाती है । "अशक्त" कविता में उन्होंने कविता संबन्धी अपनी राय व्यक्त की है । साथ ही आधुनिक मानव की अर्थ-खोजी मनस्थिति भी साफ उजागर हुई है। 'सत्य की खोज' प्रयोगवादी आधुनिकता का प्राण तत्व है ।

---

1. समकालीन हिन्दी कविता -विश्वनाथ प्रसाद तिवारी पृ.सं. 28 प्र. सं.1980
2. मुक्तिबोध की सार्थकता श्रीकान्त वर्मा-सं विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - पृ.सं. 57 प्र. सं.

इससे य [illegible] स्पष्ट होता है कि उनके [illegible] का स्वर सतही नहीं प्रखर है । यद्यपि मुक्तिबोध का काव्य आत्मवक्तव्य है किन्तु उसका परिप्रेक्ष्य व्यक्ति केन्द्रित नहीं व्यापक है ।

हम लिखें कविता विरह पर,दुःख पर
या मधुर आराधना पर, युद्ध पर,
या रचें विज्ञान जीवन के बने-
प्रश्नमय जो अंग सन्तत क्रुद्ध पर ?

अर्थ-खोजी प्राण ये उद्दाम है,
अर्थ-क्या ? यह प्रश्न जीवन का अमर ।
क्या तृषा मेरी बुझेगी इस तरह ?
अर्थ क्या ? ललकार मेरी है प्रखर ।[1]

मुक्तिबोध का काव्य संसार संघर्षमय अनुभव संसार के बल पर खड़ा है । वह भीतरी और बाहरी संघर्ष का एक समाविष्ट संशिलष्ट संसार है । उनके काव्य की मानवीय संपृक्ति कविता की आन्तरिक बनावट पर आधारित है । 'तारसप्तक' की भूमिका का यह वक्तव्य मुक्तिबोध की कविताओं की अन्तश्चेतना को पकड़ने में सहायक है । "मेरे बाल-मन की पहली भूख सौन्दर्य और दूसरी विश्व मानव का सुख दुःख-इन दोनों का संघर्ष मेरे साहित्यिक जीवन की पहली उलझन थी ।"[2] उनकी कविताओं का मुख्य विषय आत्मसंघर्ष है जो व्यक्ति-केन्द्रित न होकर सारी मानवजाति से संबद्ध है ।

मुक्तिबोध पूँजिवादी संकट को वैयक्तिक अनुभूति के स्तर पर व्यक्त करते हैं । परन्तु

---

1 अशक्त मुक्तिबोध-तारसप्तक पृ. सं. 42-43 तृ. सं. 1966
2. वक्तव्य मुक्तिबोध तारसप्तक पृ.सं. 41-42 प्र. सं. 1966

उस दीनता से गुज़रना [illegible] उससे मुक्त होने की छटपटाहट उनमें है । रूमानी वातावरण में शुरू करने पर भी कवि की दृष्टि यथार्थ की ठोस भूमि पर टिकी है । आम आदमी की गहन पीड़ाओं के अन्दर घुसकर उसमें वे आशा की किरण खोजते हैं । वे अभिभावक नहीं बल्कि सर्वहारा वर्ग की बेचैनी के सशक्त वक्ता है । उस सर्वहारा वर्ग के साथ कदम मिलाते वक्त भी वे अपना आशावादी दृष्टिकोण नहीं छोड़ते । उनमें आस्था का स्वर है साथ ही सक्रिय मुक्ति की छटपटाहट भी । उनका सामाजिक और आधुनिक बोध-पूर्ववर्ती पीढियों से भिन्न है । वे व्यक्तिगत मुक्ति के स्थान पर समूचे समुदाय की मुक्ति केलिये छटपटाते हैं ।

छोडो हाय, केवल घृणा औ दुर्गन्ध
तेरी रेशमी वह शब्द-,संस्कृति अन्ध
देती क्रोध-मुझको, खूब जलता क्रोध
तेरे रक्त में भी सत्य का अवरोध
तेरे रक्त से भी घृणा आती तीव्र
तुझको देख मितली उमड आती शीघ्र
तेरे हास में भी रोग-कृमि है उग्र
तेरा नाश तुझ पर क्रुद्ध, तुझ पर व्यग्र
मेरी ज्वाला जन की ज्वाल होकर एक
अपनी उष्णता से धोचले अविवेक
तू है मरण, तू हैं रिक्त, तू है व्यर्थ
तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ ।[1]

मुक्तिबोध की कविता अपने समय की भयावहता से टकराती है । प्रारंभिक दौर से समय के प्रति कवि का दृष्टिकोण प्रगतिशील रहा है । शंभुनाथ के शब्दों में-"तारसप्तक की प्रगतिशील बौद्धिक चेतना को मुक्तिबोध ने ही आगे बढाया और नयी कविता की आधुनिकतावादी

---

1. पूँजिवादी के प्रति मुक्तिबोध-तारसप्तक पृ.सं. 61 प्र. सं.1966

धारा के समानान्तर प्रगतिशील आधुनिक धारा का विकसित किया ।[1]

पश्चिमी साहित्य में आधुनिकता एक प्रकार का संकटबोध है जो औद्योगिकरण और महानगरीय एकरसता की उपज है । हिन्दी कविता ही नहीं समस्त भारतीय साहित्य पश्चिम से प्रभावित है । पश्चिम में आधुनिकता समृद्धि और विकास की दौड़ के मध्य अनुभूत मोहभंग की उपज थी तो भारत में आत्मनिर्भरता के अभाव की उपज । उपनिवेशवादी और पूँजिवादी सभ्यता से कटे रहने पर भी पश्चिम के उस बोध को अपनाने की कोशिश भारतीयों ने की । पश्चिम की आधुनिकता में एक प्रकार का रूमानी आकर्षण था । मगर वह बोध भारतीय परिवेश से जुड़ता नहीं था । जहाँ पश्चिम में वह संपूर्ण की अभिव्यक्ति थी वहाँ भारत में यह खंड़ित दृष्टि थी । पश्चिमी आधुनिकता को न वह पूर्णतया आत्मसात कर सकी न भारतीय संदर्भ से जुड़ सकी । तब एक प्रकार का अन्तर्विरोध पैदा हुआ जिसके तले भारतीय का दृष्टिकोण दोहरा हो गया । ओढी गयी आधुनिकता के भीतर भारतीय आत्मा छिप गयी । भारतीय साहित्य सर्वहारा वर्ग से कट गया । साहित्यकार की तूलिका सामान्य में विशिष्ट के बदले विशिष्ट में सामान्य की खोज करने लगी । इस मानसिकता ने उसे चुनौतियों का सामना करना नहीं सिखाया बल्कि एक पलायनवादी दृष्टि प्रदान की । जनता के दिल की धड़कन से दूर इस आधुनिकता में एक प्रकार की जड़ता थी । आगे इस ज़डता को तोड़ने की सार्थक कोशिश की गई ।

धीरे-धीरे इस जड़ता को तोड़कर आधुनिकता ने भारतीयता का अपना परिवेश आत्मसात किया । भारतीय सदर्भ के अनुकूल परम्परा से जुड़ी एक ठोस दृष्टि उसने पाई। इस तरह इतिहास बोध और यथार्थबोध भारतीय आधुनिकता के ठोस आधार बने । उसने मूल्यबोध को प्रश्रय देना शुरू किया । भारतीय आधुनिकता के मूल में काम करनेवाली शक्ति विद्रोह की भावना थी । क्योंकि धीरे-धीरे भारतीय मानस ने महसूस किया कि भारत की

---

1 आधुनिकता और हिन्दी कविता -शंभुनाथ -आलोचना -अप्रैल जून 1987

आत्मनिर्भरता के अभाव से जुड़े बिना भारतीय आधुनिकता अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं बना सकती । हिन्दी कविता में आधुनिकता नवीनता, गतिशीलता और सार्थकता का मिश्रित रूप है । वह बदले हुए संदर्भ को आत्मसात करनेवाली परम्परा से विकसित एक जीवन दृष्टि है । केदारनाथ सिंह के शब्दों में "हिन्दी कविता में आधुनिकता कोई आकस्मिक घटना नहीं है, बल्कि वह लम्बी विकास प्रक्रिया का परिणाम है । यह प्रक्रिया पुराने मूल्यों से टकराती हुई आगे बढी । तब कवि को भाषा, संवेदना और विचार जैसे दो क्षेत्रों में (खेमों) में लडाई करनी पडी ।"[1]

नयी कविता की भूमिका

आधुनिक हिन्दी कविता में परिवेश के प्रति सजगता पाई जाती है । आधुनिक कवि परिवेश को समग्रता में अपनाना चाहते हैं उसमें सामान्य मनुष्य को प्रतिष्ठा मिली है । गहरी मानवीय आस्था उन कवियों को अमानवीय मूल्यों के मुखौटे को तोड़ने की प्रेरणा देती है । आधुनिकता कोई रूढि नहीं है वह काल की चेतना है । काल के बदलने के साथ साथ उसकी धार अधिक तेज़ हो गयी है । काल के साथ याने यथार्थ की स्वीकृति के साथ नयी कविता काव्यक्षेत्र में आयी । तारसप्तक से लेकर प्रतीक तक की यात्रा नयी कविता की विकास यात्रा रही है । नयी कविता में मनुष्य को संपूर्णता में देखने की कोशिश के साथ कई अनुभव खंडों को भी संयोजित किया है । "नयी कविता में समग्र मनुष्य अपने-अपने समग्र-अनुभव में जीवंत है ।"[2] जीवन यथार्थ को देशकाल के संदर्भ में आँकने की कोशिश नये कवियों ने की है । हर बात के प्रति उनका दृष्टिकोण सर्वथा नवीन रहा है । इसलिए प्रत्येक दृष्टि से नयी कविता अपने समय से साक्षात्कार करती है ।

नई कविता आज की विसंगतियों और विडम्बनाओं की युगानुरूप अभिव्यक्ति है । उसने समकालीन जीवन यथार्थ को व्यष्टि और समष्टि के समन्वय के ज़रिये अभिव्यक्त किया है । नयी कविता का मानवतावादी स्वर सशक्त है ।

---

1. मेरे समय के शब्द केदारनाथसिंह पृ.सं. 12 प्र. सं.1993
2. समकालीन हिन्दी साहित्य विविध परिदृश्य डॉ. रामस्वरूप चतुरवेदी पृ.सं. 199 प्र. सं. 1995

[illegible] विघटित [illegible] की [illegible] धर्मवीर भारती की रचनाओं को अधुनातन रूप देती है । भारती की राय में आधुनिकता वर्तमान संदर्भ में पूर्णता की खोज है । यह पूर्णता की खोज उनकी 'कनुप्रिया' और 'अन्धायुग' दोनों में है । दोनों रचनाओं में उन्होंने पौराणिक पात्रों को समसामयिक संदर्भ से जोड़कर एक नया परिप्रेक्ष्य दिया है । कनुप्रिया में कृष्ण के प्रति राधा के प्रेम को एक नये ढंग से दिखाना चाहा है । वह प्रेम संबन्ध सार्वदेशिक और सार्वकालिक है । स्वयं को श्रीकृष्ण में सदैव समर्पित करने केलिए आतुर युवती की तरल अभिलाषाओं की सशक्त अभिव्यक्ति इसमें हुई है । भारती की राधा कृष्णा से बार बार प्रश्न करती है जो युगों पहले और आज भी अनुत्तरित है ।

सुनो कनु सुनो
क्या मैं सिर्फ एक सेतु थी तुम्हारेलिए
लीला भूमि और युद्धक्षेत्र के
अलंध्य अन्तराल में ![1]

कनुप्रिया के कई अंशों से गुज़रते वक्त राधा की उसाँसों की ऊष्मा, समर्पण की भावनाएं खोये हुए क्षणों को पुनःपाने की आशा आदि अनुभूत होती हैं । राधा अपने को रीते हुए पात्र की आखिरी बूँद कहती है । महाभारत युद्ध के पश्चात कृष्ण घायल होकर लौटेंगे । तब उन्हें सहलाकार तसल्ली देने केलिए आतुर होकर वह खड़ी है । घायल होकर ही सही वह कृष्ण के लौटने की आशा नहीं छोड़ती । विरही रहकर भी वह कभी आस्था नहीं छोड़ती । नये कवियों का आशावादी दृष्टिकोण भारती की राधा में है । साथ ही आस्था और अनास्था का एक मिश्रित स्वर भी उसमें गूँजता है । प्यार की तन्मयता के क्षणों में उसे कनु अपना लक्ष्य, आराध्य और गन्तव्य लगते हैं । रूठते वक्त वह तुरन्त कह उठती है ।

---

1. कनुप्रिया धर्मवीर भारती पृ.सं. 64 प्र. सं. 1959

अगले ही क्षण वह अपने अनुत्तरित प्रश्न को इस तरह दुहराती है ।

तुम मेरे हो कौन कनु
मैं तो आज तक नहीं जान पायी ।[2]

प्रेम की तन्मयता और मान दोनों अवस्थाओं की यानी प्रणय-प्रसंगों की सघन और आकर्षक अभिव्यक्ति कनुप्रिया को आधुनिक बनाती है राधा की सहज तन्मयता के क्षणों के संकेत के साथ साथ कृष्ण के महान और आतंककारी इतिहास प्रवर्तक के रूप का भी अंकन किया है । उस आतंककारी रूप में भी कृष्ण को सहजता के स्तर पर अपनाने केलिये राधा तैयार है । अज्ञेय के शब्दों में-"प्रेम का आयाम सहजता का ही आयाम हो सकता है । दूसरे आयाम प्रेम के नहीं, बुद्धि के हैं-राग के नहीं चिन्तन के हैं "।[3]

अन्धायुग में पौराणिक कथा के आधार पर समसामयिक संदर्भ की अभिव्यक्ति की है। द्वितीय महायुद्ध और तज्जन्य भयावहता दृश्यकाव्य में खूब उभरा है । उस संदर्भ से गुज़रते आदमी की दुविधाग्रस्त मनस्थिति का अन्दाज़ा अन्धायुग के हर पात्र के द्वारा लगा सकते हैं । यह कृति शक्ति और संवेदना से संपृक्त है । इसमें सत्य को कवि ने एक व्यापक धरातल ही नहीं दिया है बल्कि उसे आधुनिक ढंग से परिभाषित भी किया है । अश्वत्थामा को व्यास जो चेतावनी देते हैं वह आज भी सत्य है। असल में यहाँ महाभारत युद्ध दोहराता रहता है । ब्रह्मास्त्र सबन्धी अवधारणा आधुनिक आणविक संस्कृति से मिलती है ।

मैं हूँ व्यास
ज्ञात क्या तुम्हें है परिणाम इस ब्रह्मास्त्र का

---

1. कनुप्रिया भारती पृ.सं.11 प्र. सं. 1959
2 कनुप्रिया भारती पृ.सं. 35 प्र. सं.1959
3. विवेक के रंग रघुवंश पृ.सं. 25 प्रथम संस्करण

यदि यह लक्ष्य सिद्ध [illegible] नरपशु
तो आगे आनेवाली सदियों तक
पृथ्वी पर रसमय वनस्पति नहीं होगी
शिशु पैदा होंगे विकलांग और कुष्टग्रस्त
सारी मनुष्य जाति बौनी हो जायेगी ।[1]

डॉ.रामस्वरूप चतुरवेदी ने 'अंधायुग' को नवलेखन की मौलिक अभिव्यक्ति कहा है ।[2] उसके हर पात्र को कवि ने मानवीय संस्पर्श दिया है । उन्होंने कृष्ण को इतिहास के नियंता का रूप ही दिया है । मगर वह अध्यात्म चेतना से भिन्न व्यापक युग चेतना से संपृक्त है । आस्था, और अनास्था को कवि ने व्यापक युग चेतना से मिलाया है । अन्धायुग के कृष्ण के हर कथन में व्यापक युग चेतना का प्रस्पुटन है । लोकसंपृक्ति की यह भावना भारती के अन्धायुग में बखूबी मिलती है जो नयी कविता की एक सशक्त विशेषता है । युग युग से पालित श्रीकृष्ण के पुरातन रूप को वर्तमान संदर्भ से जोड़कर कवि ने कालजयी बनाया है ।

अट्ठारह दिनों के इस भीषण संग्राम में
कोई नहीं केवल मैं ही मरा हूँ करोड़ों बार
जितनी बार जो भी सैनिक धराशायी हुआ
कोई नहीं था
वह मैं ही था [3]

धर्मवीर भारती की छोटी कविता टूटा पहिया यथार्थ का एक नया क्षितिज खोलता है। संबन्धों के विघटन और मूल्य विघटन के बीच भी टूटा पहिया आस्था का प्रतीक है । आशा को बनाये रखने तथा परिस्थितियों से जूझने का साहस कविता को समसामयिक बनाता है ।

---

1 अन्धायुग भारती पृ.सं. 28 प्रथम संस्करण
2. समकालीन हिन्दी साहित्य विविध-परिदृश्य-डॉ.रामस्वरूप चतुर्वेदी पृ.सं. 30 प्र सं 1995
अन्धायुग भारती पृ.सं. 60 प्रथम संस्करण

शमशेर समग्र रूप से आधुनिकता के रथी है । क्योंकि भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से उनमें एक नयापन और खुलापन है । उनका काव्य काव्यानुभूति और काव्यभाषा का अपूर्व संगम है । क्योंकि वे अपने अनुभवों को ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनाते हैं । तब अभिव्यक्ति के नये-नये माध्यम ही नही नये-नये प्रतीक भी रूपायित होते हैं जो आधुनिकता बोध और प्रगतिशील चेतना से भी संपृक्त हैं । सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने लिखा है । "शमशेर की कविता में अमूर्तन है पर वह मौलिकता और विशिष्टता लिए है ।"[1] उनमें मौन, नींद आकाश शब्दों की प्रचुरता है । परन्तु ये अकर्मण्यता के प्रतीक नहीं शान्त और स्थिर चिन्ता के प्रतीक हैं । ये छोटे छोटे शब्द भाषा से अधिक सशक्त हैं । उनकी कविताओं में पाये जानेवाले अन्तराल अधूरापन के बदले भावों की गहराई का संकेत देते हैं । शब्दों की आवृत्ति शमशेर की कविता में महज शब्दघोष ही नहीं गहरा अर्थ भी पैदा करती है । उनमें विक्षोभ और हलचल के बदले आत्मीयता और निजता पाई जाती है । शान्ति के वक्ता शमशेर ने लिखा है ।

किससे लड़ना ?
रुचि तो है शान्ति
स्थिरता,
काल-क्षण में
एक सौन्दर्य की
मौन अमरता ।
अस्थिर क्यों होना
फिर ?[2]

चीन शीर्षक कविता शमशेर की भाषा के उदात्त उपक्रम की उपज है । यहाँ से ही कवि अमूर्तन की ओर उन्मुख होते हैं । तब भाषा अनुभूति को यथार्थ बनाने के बजाय उसका

---

1 शमशेर (संपादक) सर्वेश्वर दयाल सक्सेना पृ.सं. 1 प्रथम संस्करण

2. अज्ञेय से -कुछ कवितायें -कुछ और कवितायें -शमशेर पृ.सं. 72 प्र. सं. 1984

अतिक्रमण करते हैं मलयज के ... शमशेर की कविता स्वप्न शिशु को यथार्थ की ठंडी उंगलियों से छूना होगा ।"[1]

चार दिशाओं का आलोक
सिर पर धारे
पाँवों में उत्साह के पर औ
अक्षुण्ण गति के तीर
बाँधे ।[2]

शमशेर में रूमानियत भी है। लेकिन शमशेर की कविताओं में समय का तीखा यथार्थ भी व्यंजित है । उनकी कवितायें तरल अनुभूतियों की अभव्यक्ति नहीं अनुभूति के एक खास क्षण की अभिव्यक्ति हैं । उस सौन्दर्यानुभूति और प्रकृति चित्रों के भीतर मानवीय उपस्थिति कविता को सार्थक बनाती है । सौन्दर्यवादी सज्ञान के अन्दर आम आदमी का यथार्थ दब नहीं गया है अधिक उजागर हुआ है।

सूना सूना पथ है, उदास झरना
एक धुँधली बादल रेखा पर टिका हुआ आसमान
जहाँ वह काली युवती हँसी थी ।[3]

शमशेर मार्क्सवाद से प्रभावित थे । फिर भी मार्क्सवाद और उनके काव्य-व्यक्तित्व के बीच सदैव संघर्ष वर्तमान है । कला के संघर्ष और समाज के संघर्षों दोनों उनके काव्य में हैं । वे अपनी कविताओं के द्वारा समाज के सत्य को ही नहीं उसके मर्म को भी पकड़ना चाहते हैं । वे प्रणय के कवि है साथ ही समय के सत्य से जूझते कवि भी हैं । एक ही कवि में सौन्दर्यवादी और

---

1 कविता से साक्षात्कार मलयज - पृ.सं. 24-प्र. सं. 1979
2. चीन कुछ-कवितायें कुछ और कवितायें शमशेर पृ.सं. 71 सं,व,1984
3 सूना सूना पथ है उदास झरना - इतने पास अपने -शमशेर पृ.सं. 21 प्र. सं. 1980

प्रगतिवादी रुझान का एक साथ मौजूदगी एक अपूर्व घटना है । शमशेर इसका स्पष्ट दस्तावेज उपस्थित करते हैं ।

'य' शाम है
कि आसमान खेत है पके हुए अनाज का
लपक उठी लहू भरी दरातियाँ कि आग है
धुआँ धुआँ
सुलग रहा
ग्वालियार के मज़दूर का हृदय ।[1]

नयी कविता की यथार्थोन्मुखता

नयी कविता में मानववादी स्वर प्रबल है । यह नये कवियों के यथार्थवादी रुझान का परिचायक है । यह रुझान उनकी कविताओं को अलग पहचान देती है । यह यथार्थ की स्वीकृति ही नयी कविता की अहमियत है । किन्तु उनका यथार्थ जीवन-संघर्ष से नहीं उस संघर्ष के द्वन्द्व से उभरा है । उस पर मध्यवर्गीय मानसिकता का दबाब पड़ा है । इसलिए यथार्थ आँशिक रूप में ही अभिव्यक्त होता था । किन्तु एकाध कवियों ने यथार्थ के प्रति एक जुझारु मनस्थिति अपनाई । परवर्ती कविता ने इस मनस्थित को प्रखर अभिव्यक्ति दी ।

दूसरों के कपड़े पहनकर
सड़क पर मिले एक प्रोफसर
बोले:
"जिस्म तो अपना है,

---

1. यह शाम है कुछ कवितायें -कुछ और कवितायें शमशेर पृ.सं. 40 प्र. सं. 1984

कपड़े भी अपने हो
क्या ज़रूरी बात है ?
उद्देश्य तो केवल
चाहिए होना आधुनिक
देखिए लगाता हूँ न ठीक" ।[1]

पंक्तियाँ सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का आधुनिकता संबन्धी दृष्टिकोण की स्पष्ट व्याख्या करती है । इसमें कवि ने आधुनिक और क्रान्तिकारी बनने के ढोंग रचनेवाले बुद्धिजीवियों पर व्यंग्य किया है । भारत के बुद्धिजीवियों के खोखलेपन को कवि यहाँ खुलकर व्यक्त करते है। भारतीय अपने आपको भी भूलकर दूसरों का अनुकरण करते हैं । हमारी भाषा और रूप तक को छीननेवालों के प्रति कवि भारतियों को सचेत करते हैं ।

सर्वेश्वर निजी पहचान पर बहुत बल देते हैं । क्रान्ति के वाहक कवि की दृष्टि महज क्रान्ति के बाहरी रूप पर ही नहीं पड़ती । वह भावना उनकी नसों में खून बनकर बहती रहती है । अन्याय से जूझने का साहस साधारण आदमी नहीं दिखाता । वह सब कुछ पथराकर सहता रहता है । रंग-बिरंगे पोस्टरों को सब से बड़ा सत्य माननेवाले आम आदमी को अपने आपको पहचानने का इजाजत वे देते हैं । मनुष्यता आज मृत हो गयी है । सारी निर्दय परिस्थितियों के प्रति मनुष्य निर्मम रहता है । किसी भी परिस्थिति में वह अपनी निजता खोना नहीं चाहता । कवि कहता है कि हमारी मौजूदगी से मानव विरोधी परिस्थिति से टकराना चाहिए । पथराव में वे लिखते हैं ।

मैं जानता हूँ पथराव से कुछ नहीं होगा
न कविता से ही

---

1 कवितायें दो-गर्म हवायें -कवितायें दो सर्वेश्वर दयाल सक्सेना पृ सं 115 प्र सं 1978

कुछ हो या न हो

हमें अपना होना प्रमाणित करना है ।[1]

कवि खुद से और समाज से जुड़कर कविता करते हैं । निर्याति और स्थिति को सही मायने में पहचानने की वजह से जीवन की समग्रता उनकी कविताओं में उभर आयी है । जीवन को समग्रता से देखने की विराट कोशिश उन्हें समकालीन कवि का पद प्रदान करती है । युग की चुनौतिया का डटकर सामना करने का जो साहस सक्सेना में है उसे आगामी पीढी ने अधिक तीव्रता से पकड़ा है । हरे भरे जंगल की संपूर्णता कवि को सदैव अनुभव होती थी। मगर अब उस हरे भरे जंगल की याद उन्हें कुल्हाड़ियों की वार महसूस होती है । उन्हें लगता है कि संपूर्णता उनसे छीन ली गयी है ।

मेरी संपूर्णता मुझसे छीन ली थी ।[2]

संपूर्ण मानव जीवन में उन्हें एक जलन महसूस होती है । उसके भीतर आम आदमी निरन्तर परिवेश से जुड़ता और जूझता रहता है । सर्वेश्वर ने अपने आपको खूँटी पर टंगा कोट कहा है । इसमें प्रयुक्त "मैं" व्यक्ति सूचक संज्ञा नहीं सड़क से गुज़रते सामान्य मानव का प्रतीक है ।

खूँटी पर कोट की तरह
एक अरसे से मैं टँगा हूँ
कहाँ चला गया
मुझे पहनकर सार्थक करनेवाला ?
धूल पर धूल
इस कदर जमती जा रही है
कि अब मैं खुद
अपना रंग भूल गया हूँ ।[3]

---

1 पथराव-कुआनो नदी सर्वेश्वर पृ.सं. 90 प्र. सं. 1973

2. जंगल की याद मुझे मत दिलाओं-खूँटियाँ पर टंगे लोग - सर्वेश्वर पृ.सं. 13 प्र. सं. 1982

3. कोट खूँटियों पर टगे लोग सर्वेश्वर पृ.सं. 20 प्र. सं. 1982

सम्प्रेषक [illegible] सर्वेश्वर की कविता की ताकत है । अपनी कविताओं के माध्यम से तत्कालीन व्यवस्था को तोड़ना चाहते हैं । उन्होंने जाना कि संघर्ष में व्यक्ति अकेला नहीं है । उसके पीछे एक लम्बी कतार उतावली खड़ी है । उनकी यह आस्था अस्तित्ववादी दर्शन से बोझिल नहीं है । यह दृष्टिकोण उनकी आशावादी दृष्टि का परिचय दता है । व्यवस्था की निर्ममता और राजनैतिक खोखलेपन के विरुद्ध कवि एक विद्रोही अन्दाज रखता है ।

जनपक्षधरता, व्यापक सामाजिक चिन्ता और यथास्थिति को बदलने की तीव्र आकाँक्षा ने उनकी कविताओं को यथार्थ बोध से संपृक्त किया । यह बहुआयामिता सर्वेश्वर की कविताओं को जनचरित्री बनाती है । अमानवीय स्थिति के बीच अपने को ढोते औसत आदमी को जड़ता से मुक्त करने की छटपटाहट ही सर्वेश्वर की क्रान्ति चेतना है । परमानंद श्रीवास्तव के शब्दों में-"सर्वेश्वर की नयी कवितायें व्यक्तिगत अनुभव ताप में जीवित होकर भी प्रायः अपने समय के संघर्ष और तनाव को प्रत्यक्ष करती हैं।"[1]

जीवन की निरन्तरता को आत्मसात करती हुई रघुवीर सहाय की कविता निरंतर विकसित होती गयी । उन्होंने आधुनिक हिन्दी कविता को नये ढंग से परिभाषित करने का प्रयास किया । संवेदना और भाषा दोनों दृष्टियों से वे आधुनिक हैं । तत्कालीन अन्याय के प्रति जनता की निष्क्रियता और निस्संगता पर वे उबल पड़ते हैं और जनता के कवि बनकर जीना चाहते हैं ।"नये कवि गुटों के सीखचों में बन्द होकर या तो आक्रोश के रूप में कवितायें लिखते हैं अथवा अनोखेपन को मृग मरीचिका के पीछे दौड़ रहे हैं । परन्तु कुछ कवि ऐसे भी हैं जो जीवन में व्याप्त भोगी हुई यंत्रणा, असन्तोष निराशा और अनिश्चयग्रस्त मानस की सही और रचनात्मक स्तर पर व्यंजना कर रहे हैं । रघुवीर सहाय ऐसे ही कवियों में से एक हैं "।[2] रघुवीर सहाय की बहुत सारी कवितायें आगे लिखी जानेवाली महत्वपूर्ण कविताओं के भावी संकेत हैं । उनकी समूची काव्ययात्रा आत्मबद्धता से समाजबद्धता तक की यात्रा है । कविता उन्हें सच्चाई महसूस होने लगी ।

---

1 समकालीन कविता का व्याकरण -परमानंद श्रीवास्तव पृ.सं.56 प्र. सं. 1980

2. आधुनिक प्रतिनिधि कवि डॉ.शान्ति स्वरूप गुप्त पृ.सं. 156 प्र. सं. 1970

[illegible]।

यह [illegible] आग का छटपटाहट नहीं

यह कि मैं घोर उजाले में खोजता हूँ ।

आग...... [1]

मनुष्य की लालसा और स्वाधीनता जब छीन ली जाती है तब ज़िन्दा रहते हुए भी उसे मुर्दा बनना पड़ता है । जीवन के ठोस समर क्षेत्र का भागीदार बनकर ऐसे जीवित लाशों के दर्द को उन्होंने बहुत निकट से जाना और अभिव्यक्त किया ।

बीस बरस बीत गये ।

लालसा मनुष्य की तिल तिलकर मिट गयी

रोज़ रोज़ थोड़ा थोड़ा मरते हुए लोगों का झुण्ड

तिल तिल खिसकता है शहर की तरफ

मैं क्या कर रहा था जब मैं मरा

मुझसे ज्यादा तुम जानने लगते हो

तुमने लिखा मैं ने कहा था स्वाधीनता

शायद मैं ने कहा था बचाओ ।[2]

रोज़मर्रा की जानी पहचानी दुनिया की नस-नस में बहते खून का ताप वे महसूस करते थे । इसलिए दुनिया के लगाव और अलगाव के प्रति उनकी दृष्टि सतही नहीं है । उनकी बहुत सारी कवितायें राजनीति का सुस्थिर चित्र उपस्थित करती हैं। किन्तु ये कवितायें केवल नारे नहीं हैं। उनके द्वारा कवि ने राजनीति को यथार्थ से जोड़ने में पहलकदमी की है । वैयक्तिक अनुभव के बदले सूक्ष्म और बृहत्तर निरीक्षण उनकी सृजनात्मकता की आधारशीला रही । अपने पर होनेवाले सारे अन्यायों को सहकर विरोध से बेखबर रहनेवाली आत्माओं की छटपटाहट की

---

1. फिल्म के बाद चीख-आत्महत्या के विरुद्ध प्र.सं. 73 प्र. सं. 1967
2. आज का पाठ हँसो हँसो जल्दी हँसो रघुवीर सहाय पृ.सं. 7 प्र सं. 1975

अभिव्यक्ति [illegible] समय की सृजनात्मकता को सार्थक बनाता है । आहत होकर भी अनाहत जिजीविषा [illegible] संघर्षरत नयी पीढी को सही ढंग से उन्होंने पहचाना है । यहाँ नये कवियों का आशावादी दृष्टिकोण झलकता है । तारसप्तक के सारे कवि समानधर्मी कवितायें लिखनेवाले नहीं हैं। उनका क्षेत्र अलग-अलग है फिर भी प्रत्येक कवि अपने अपने क्षेत्र में प्रवीण है । इस प्रकार भिन्न-भिन्न कवियों के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से संपृक्त होकर आधुनिक हिन्दी कविता उत्तरोत्तर विकसित होती गई ।

नयि कविता की मानवीय आस्था

काल की गतिशीलता को पकड़ने में नये कवि केदारनाथ सिंह सफल निकले हैं । केदार की कविता संपूर्ण मानव की कविता है, उसकी नियति से सीधे साक्षात्कर करनेवाली कविता है । उनकी कविता की शक्ति भाषा की विशिष्टता की शक्ति है क्योंकि मामूली शब्दों के ज़रिये गहन अनुभव खंड़ को वे सामने रखते हैं । आज की वास्तविकता, व्यवस्था की क्रूरता और उसके बीच पिसते आदमी की पीड़ा उनकी कविताओं का विषय है ।असल में वे संभावना के कवि हैं, भविष्य में होनेवाले परिवर्तन पर उन्हें पूरा भरोसा है क्योंकि वे कविता नहीं कर रहे हैं आग की ओर इशारा कर रहे हैं यह आग अवश्य ही परिवर्तन का प्रतीक है । इस परिवर्तन को संभाव्य बनानेवाले मनुष्य पर उन्हें पूरा विश्वास है । वे मानते हैं कि मनुष्य में लोहे से बढकर शक्ति है । उनकी कविता के केन्द्र में संघर्षरत आम आदमी है जो बहत्तर भविष्य का सपना संजोता रहता है । स्वप्निल श्रीवास्तव के शब्दों में-"केदारनाथसिंह कविता की शक्ति और सीमाओं से परिचित हैं, इसलिए उनकी कवितायें काव्यात्मक संयम का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं ।"[1] रोटी नामक कविता में समय की धड़कनें मुखरित हैं । इसमें उन्होंने यथार्थ के ठोस धरातल पर खडे होकर कविता को प्रासंगिक बनाया है । सामाजिक सवालों से जूझने

---

1 कवि केदारनाथ सिंह स्वप्न खंड स्वप्निल श्रीवास्तव पृ.सं. 52

की ताकत उनकी 'रोटी' कविता का मूल भूत तत्व है सामाजिक चेतना के साथ साथ राजनीतिक चेतना भी उनकी कविताओं की केन्द्रीय बिन्दु है ।

एक अद्भुत ताप और गरिमा के साथ
समूची आग को गंध में बदलती हुई
दुनिया की सबसे आश्चर्यजनक चीज़
वह पक रही है
और पकना
लौटना नहीं है जड़ों की ओर ।[1]

सदियों से रोटी केलिये संघर्षरत आम आदमी का संघर्ष इसमें उभर आया है । बिंबों और शब्दों के कवि केदार ने अपनी कविता में संदेह और प्रश्नात्मकता को प्रधानता दी है । भयाकुल और शंकाकुल मनस्थिति उनकी बहुत सारी कविताओं में प्रस्फुटित है । किन्तु उस मनस्थिति के भीतर भी वे भविष्य के प्रति आस्थावान हैं। उन कविताओं में जिजीविषा और बहत्तर जीवन का स्वप्न सुरक्षित है । "केदारनाथ सिंह एक मानवविरोधी माहौल में मानवीय जिजीविषा के कवि हैं । कविता उनकेलिये अपने को यानी मनुष्य को और उसके आत्मीय परिवेश को बनाये रखने की एक कोशिश है ।"[2]

शब्दों की शक्ति, महत्व और उस संपदा की असीम शक्ति से कवि अवगत है । वे कहते हैं शब्द परिस्थितियों को सरल भी बना सकते हैं और जोखिम भी । संकट की घड़ियों में उन्हें शब्द ही सबसे योग्य मित्र लगते हैं । इस अनिश्चय की अवस्था में अगर हम कुछ कर सकते हैं तो शब्द के ज़रिये । यह शब्द ही उनकी कविता है । शब्द में साँत्वना, सुरक्षा जन्य अनुभूति विश्वास सब हैं। अगर शब्द मर जाते हैं तो सिर्फ साहस की कमी से क्योंकि वे यह

---

1 रोटी ज़मीन पक रही है - केदार नाथ सिंह पृ.सं. 30 प्रथम संस्करण

2. मातृभाषा में लौटने की कोशिश -नंदकिशोर आचार्य पृ.सं. 67 भाषा

कहना चाहते हैं परिस्थितियों से जूझने की हिम्मत व्यक्ति में होनी चाहिए इन कवियों की यह जुझारू मनोस्थिति समकालीन कविता को दिशा निर्देश देने में कामयाब हुई । 'ठण्ड से नहीं मरते शब्द" कविता कवि की इस भावना का स्पष्ट परिचय देती है ।

ठण्ड से नहीं मरते शब्द
वे मर जाते हैं साहस की कमी से
कई बार मौसम की नमी से
मर जाते हैं शब्द। [1]

अकाल में सब कुछ झुलस जाते हैं मगर दूब झुलस नहीं जाता । "अकाल में दूब" एक पिता के अनुभव खंड की अभिव्यक्ति है । यह भिन्न धरातल की कविता है । एक बार घोर अकाल हुआ था । परन्तु पिता ने पुत्र को सूचना दी कि चाहे सब कुछ झुलुस जाये पर दूब बना रहेगा । पुत्र तत्काल दूब की खोज में निकल पड़ा और खूब छानबीन के बाद एक हरी पत्ती देखने की खबर दी तो पिता का चेहरा दमक उठा । नये कवियों के आशावादी दृष्टिकोण और मनुष्य की अदम्य जिजीविषा की सुन्दर अभिव्यक्ति इस कविता में हुई है । किन्तु यह कविता आशा से बढकर आस्था की है। क्योंकि इसमें संवेदना और विचार को घुलावट है । दोनों बार पिता के चुप हो जाने और विचार में खोने में आस्था, विचारपूर्ण चिन्ता और संयम है । इस दृष्टि से प्रस्तुत कविता उल्लेखनीय है ।

दूब मगर मरती नहीं
कहते हैं वे
और हो जाते हैं चुप

---

1 ठण्ड से नहीं मरते शब्द अकाल में सारस केदार नाथ सिंह पृ.सं. 102 प्र. सं. 1988

लौटकर घर सुबह
देता है पिता को
अँधेरे में भी
दमक उठता है उनका चेहरा
है-अभी बहुत कुछ है
अगर बची है दूब.....
बुदबुदाते हैं वे
फिर गहरे विचार में
खो जाते हैं पिता ।[1]

जीवन पर और कविता पर केदार की पकड़ एक जैसी है क्योंकि अपने समय की धडकती हुई सच्चाई को ही उन्होंने शब्दबद्ध किया है । इस प्रकार पूर्ववर्ती कविता के परम्परागत मुहावरे को बदलकर प्रतिपक्ष जो प्रतीक्षा का पर्याय है के काव्यमुहावरे से कविता को संपन्न बनाया गया ।

विजयदेवनारायण साही समय की चेतना से अवगत है । उनकी कविताओं में संलाप और एकालाप की स्थितियाँ मौजूद हैं । 'मछली घर' कविता साही के जीवन दर्शन, रचना-प्रक्रिया, काव्यानुभव और नैतिक संपृक्ति को व्यक्त करनेवाली सरल बल्कि गंभीर कविता है । इतिहास के धड़कते हुए सत्यों की अभिव्यक्ति की दृष्टि से ही इस कविता की सार्थकता है । वे अनुभवों को एक ऐतिहासिक परिदृश्य में परखकर कल्पना के सहारे ठोस जीवन संदर्भों में ढाल लेने की कोशिश करते हैं । उनकी कविताओं में हमेशा एक ऐंद्रजालिक वातावरण छाया रहता है । मगर इसके बीच सत्य छिप नहीं जाता एकदम उजागार हो उठता है । मछली घर कविता में आन्तरिक एकालाप को पकड़ने की साही की कोशिश स्पष्ट है ।

---

1. अकाल में दूब अकाल में सारस केदारनाथ सिंह पृ.सं. 20-21 प्र. सं. 1988

मैं तुम्हें निमन्त्रित करता
कि मेरे साथ इस कल्पित खिड़की तक
और ठण्डे काँच की इस दीवार को
होठों से छुओ
यह स्पर्श तुम्हें परिशोधित कर देगा

और जब तुम चाहोगे
धीरे धीरे इस ठण्ड़े काँच की दीवार के सहारे
तृषाहीन आकर टिक जाओगे
परिशोधित [1]

प्रस्तुत कविता में अंकित 'कल्पित खिड़की' साही के काव्यानुभव की खिड़की है । वे अनुभूत क्षण की नहीं यथार्थ के परे के यथार्थ का अंकन करते हैं । क्योंकि उनकी कविता में मानव-सापेक्षता है । उनकी भाषा के जादूई स्पर्श से मनुष्य का यथार्थ मूर्त हो उठता है । लघुमानव की प्रतिष्ठा साही में खूब हुई है संवाद, एकालाप और ऐंद्रजालिक वातावरण के बीच भी कवि की दृष्टि लकीर की समाप्ति पर खड़े आम आदमी पर टिकी है । आधुनिक मानव की शंकाग्रस्त मनस्थिति की अभिव्यक्ति उनकी कइ कविताओं में है । आगे बढने के दौरान निर्मित पैरों के निशान से वे पूर्णतया अवगत हैं मगर इन में कौन किसका सृष्टिकर्ता है यह वह नहीं जानता ।

वह आज तक यह हल नहीं कर पाया
कि ये निशान उसे निर्मित करते हैं
या वह इन निशानों को निर्मित करता है ।[2]

---

1. मछली घर विजयदेवनारायण साही पृ.सं. 9-10 प्र. सं. 1966
2. लकीर की समाप्ति पर एक आदमी साखी विजयेदवनारायण साही पृ.सं. 10 प्र. सं. 1983

इस संकटग्रस्त परिस्थिति के भीतर भी मनुष्य अपनी आस्था नहीं छोड़ता । 'साँप काटे हुए भाई से' 'साखी' संग्रह की सर्वाधिक सार्थक कविता है । इसमें 'उस भाई' के द्वारा कवि ने मानव नियति पर व्यंग्य किया है । साँप काटे हुए भाई को जगाते रखने के प्रयास के पीछे सारी मानव जाति को जगाते रखने की उनकी आशा वर्तमान है । वर्तमान समाज के सारे कोलाहल और नारेबाजियाँ समाज को जगाने में समर्थ नहीं हैं । समय के सत्य से जूझने का साहस और जिजीविषा ही मनुष्य को आगे बढ़ाती है । बाकी सब व्यर्थ हैं। छाती पीटकर रोना या सारे कबीले को अपने उलझनों केलिये कोसना बेवकूफी है । इस कविता में प्रयुक्त साँप, भाई, जहर, खून जैसे शब्दों को कवि ने व्यापक स्तर पर प्रस्तुत किया है । वे सब आज के क्षत विक्षत जर्जरित आदमी से संबद्ध हैं । शरीर में जहर के व्याप्त होते वक्त भी व्यक्ति के साहस बनाये रखने की ज़रूरत पर कवि ज़ोर देता है । परिस्थितियों का सामना करने का साहस ही मानव जीवन को रूपायित करता है ।

> अगर भरोसा है तो सिर्फ तुम्हारे
> बहते हुए खून
> और जागती हुई आँखों का भरोसा है ।
> इस खून को ज़ारी रखने केलिये
> सोना मत !
> ओ मेरे भाई सोना मत !![1]

कबीरदास केलिये समर्पित 'साखी' की कवितायें परिपक्व संवेदना की अभिव्यक्ति करती हैं । आतंक के बीच भी सत्य से साक्षात्कार करने का अपूर्व साहस कबीर में है । उनसे साही 'साहस' की प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं । साही कबीर की भाँति जीवन के बहुमुखी युद्ध

---

1. साँप काटे हुए भाई साखी पृ.सं. 49 प्र. सं.1983

को डटकर सामना करना चाहते हैं । साही [illegible] अन्तहीन सहानुभूति की वाणी बोलने का साहस भी माँगते हैं । नयी पीढ़ी को ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चिन्तन की कभी न खत्म होनेवाली धारा से वे परिचित थे । प्रगतिशीलता और भारतीयता दोनों को मिलाने की कोशिश अपनी कविताओं के द्वारा उन्होंने की । मार्क्सवाद से प्रभावित होने पर भी प्रगतिवादियों की क्रान्ति से भिन्न एक क्रान्ति को उन्होंने बढ़ावा दिया । वे नयी कविता के ऐसे विरले कवियों में से हैं जिन्होंने देश और काल में निरन्तर बदलते मनुष्य को परिभाषित करने का प्रयास किया । कृष्णदत्त पालीवाल के शब्दों में-"साही की भारतीयता उन्हें भीतर तक चीरकर गुर्राती थी और इस गुर्राहट में निरन्तर आत्मसजग आत्मलोचन की सक्रियता थी"।[1] उनके पहले दौर की कवितायें एकालाप की कवितायें थीं तो 'साखी' में आकर वे संवाद की ओर बढती है । गुरु कबीरदास से आलोक की माँग करते हुए वे लिखते हैं ।

परमगुरु
दो तो ऐसी विनम्रता दो
कि अन्तहीन सहानुभूति की वाणी बोल सकूँ
और यह अन्तहीन सहानुभूति
पाखण्ड़ न लगे ।

इस दहाड़ते आतंक के बीच
फटकार कर सच बोल सकूँ
और इसकी चिंता न हो
कि इस बहुमुखी युद्ध में
मेरे सच का इस्तेमाल
कौन अपने पक्ष में करेगा ।[2]

---

1. विजयदेवनारायण साही-दहाड़ते आतंक के बीच फटकार का सच-कृष्णदत्त पालीवाल- पृ सं 12 दस्तावेज अक्तूबर मार्च 90-91
2. प्रार्थना गुरु कबीरदास केलिये-साखी-साही -पृ.सं. 148 प्र. सं.1983

अन्य नव कवियों की अपेक्षा साही इतिहास बोध-अनुभवों की उपज है । अकेलापन के बोझ से वे न तो पीड़ित है न आतंकित । मानव मुक्ति की कामना की वजह से संघर्षों और चुनौतियों को झेलकर भी वे परास्त नहीं होते । उनमें एक अकेलापन और अलगाव बोध है । मगर उन सब के ऊपर उनमें अड़िग आस्था है ।

जब हम थोड़ा (गुमसुम) होते हैं
अकेले होते हैं
लेकिन जब उत्तेजित होते हैं
तब और भी अकेले होते हैं ।[1]

श्री प्रकाश मिश्र के शब्दों में यह अकेलापन 'कविसमय का अकेलापन नहीं है, कविसमझ" का अकेलापन है ।[2]

आधुनिक चेतना ने जीवन के हर पहलू को प्रभावित किया । छायावादी कविता से नयी कविता तक आते आते वह चेतना काव्य जगत में पूर्ण रूप से छा गयी । विभिन्न आन्दोलनों से गुज़रते वक्त वह परिवर्तित होती रही । नयी कविता में लघु मानव को प्रतिष्ठा मिली । विभिन्न संघर्षों और विषमाताओं के बीच भी वह अपनी आस्था नहीं खोता, अपने व्यक्तित्व को सुरक्षित रखने का प्रयास करता है । राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिवर्तनों से उसकी मानसिकता बदलती रहती है । इस बदली हुई मानसिकता को, साधारण आदमी की सच्चाई को नयी कविता शब्दबद्ध करती रही । नये कवियों की यथार्थवादी दृष्टि ने क्षण के सत्य को महत्ता दी । फिर भी उनमें से कई कवि समकालीन सच्चाईयों से निकट संपर्क रखते थे । उन्होंने परंपरागत मूल्यों और रूढियों की निरर्थकता घोषित की और साथ-साथ अपने परिवेश के प्रति सजग रहे । "नये कवियों की प्रतिक्रिया विनाशात्मक न होकर, एक विवेकशील व्यक्ति की प्रतिक्रिया थी । यह विवेकशील दृष्टि ही उनकी आधुनिक दृष्टि है ।"[3]

---

1 प्रार्थना गुरु कबीरदास केलिये-साखी-साही -पृ.सं. 48 प्र. सं. 1983

2. कवि समय और कवि समझ का द्वन्द्व संवाद तुम से श्री प्रकाश मिश्रा-पृ.सं. 22 दस्तावेज़ अप्रैल जून 1991

3 आधुनिकता के संदर्भों में नयी कविता तथा अन्य काव्यांदोलन डॉ.रामरती पृ.सं. 55 भाषा सितंबर 1984

अकविता की भूमिका

विश्व युद्ध के पश्चात भारतीय समाज परिवर्तित और आहत हुआ । सब कहीं तनाव भरा वातावरण छा गया । सन् साठ तक आत आते पूरा माहौल बदल गया । अनुभूति और संवेदनाओं की अभिव्यक्ति केलिये अलग सशक्त माध्यम की तलाश होने लगी । नयी कविता से भिन्न कुछ विस्फोटक कविताओं को लेकर कुछ कवि काव्यक्षेत्र में आये । बदलते सौन्दर्य बोध की अभिव्यक्ति केलिये उन्होंने पूर्ववर्ती परम्पराओं को अस्वीकार किया । मूल्यहीनता और मोहभंग से गुज़रते युग को इंग्लैण्ड़ की बीट पीढी ने खूब प्रभावित किया । इंग्लैण्ड की बीट पीढी का प्रभाव बंगाल की भूखी पीढी से होकर हिन्दी में आया । हिन्दी कवियों में भी भूखी पीढी की सी चर्चित होने की लालसा हुई जो अकविता कहलाई । अकविता नयी कविता का अगला चरण है जिसने अभिव्यक्ति की दृष्टि से कुछ मौलिकता लाने का अवश्य प्रयास किया । प्रारंभ, विजप, निषेध आदि काव्य संग्रहों और अकविता पत्रिका के द्वारा अकविता काव्यक्षेत्र में प्रतिष्ठित हुई । ये कवि तत्कालीन विड़म्बनाओं को ज्यों का त्यों कविताओं में उद्घाटित करते थे । सभी बातों की वे खुलकर चर्चा करते थे जिन्हें मनुष्य छिपाकर रखना चाहता है। "ज़िन्दगी की टुच्ची स्थितियों, व्यवस्था की विड़म्बना, राजनीति और सभ्यता के प्रति आक्रोश करते-करते अकवि देह की राजनीति तक आ गए ।"[1]

अकविता निषेध केलिये निषेध करनेवाली कविता थी । उनके विद्रोह में एक प्रकार की आक्रामकता है । परन्तु उसका दायरा यौन-क्षेत्र तक सीमित था । दिन ब दिन बदलते शासन तंत्र और विघटित मूल्यों के बीच आदमी अपना अस्तित्व खो रहा था । महानगरीय जीवन के अजनबीपन, अकेलेपन और एकरसता से उसे एक प्रकार की आन्तरिक रिक्तता अनुभव होती है । मुक्ति केलिये वह सर्वनाश चाहता है । समसामयिक समाज को तहस नहसकर उसे वह अपने अनुकूल बनाना चाहता है ।

---

1 आधुनिकता के सदर्भ में नयी कविता तथा अन्य काव्यादोलन-डॉ.रामरती- पृ.सं. 56 भाषा सितंबर 1984

मेरे अंदर में बसा ब्राह्मण अपनी शिखा को खींचकर फेंक देना चाहता है
निष्ठा और धर्म के ढोंग में मैं जिंदा नहीं रहना चाहता
मैं प्रेम जैसे अभिशप्त रोग को मुट्ठी में भरकर
आग में झोंक देना चाहता हूँ

मैं तमाम यात्राओं को दुर्घटनाओं में बदलना चाहता हूँ
मैं प्रेम करते युग्मों को आग के जलते कंगारों पर बिठाकर
मांस गंध को चिरियाते देखना चाहता हूँ
मैं चाहता हूँ विनाश [1]

जगदीश चतुरवेदी ने मानवीय संवेदनाओं पर निर्मम प्रहार किया है । .अकवियों ने पूर्ववर्ती काव्यात्मक ढाँचे को तोड़कर कविता की भाषा को गद्य के निकट लाने की कोशिश की । परमानंद श्रीवास्तव के शब्दों में-"अकविता केवल रूपगत परिवर्तन न होकर वस्तु और विचार का परिवर्तन है । एक शून्य स्थिति रचने की कोशिश है "।[2]

'मुक्ति प्रसंग' विच्छिन्न रचना प्रयास में अपने समय के दो विभाजित अन्तरालों को जोड़नेवाला एक सेतु है ।"[3] यह एक विचित्र मनस्थिति की अभिव्यक्ति है । यह मानसिकता समसामयिक परिस्थितियों की उपज है । क्योंकि जीवन की तेज़ रफ्तार में व्यक्ति कम उम्र में ही वयस्क हो जाता है । अनुभूति के कई स्तरों से वह बड़ी तेज़ी से गुज़रता है । अल्पावधि में ही वह अन्तर्विरोधों का शिकार बनता है । वह टूटता है और अनिश्चय की अवस्था से गुज़रता है । तब वह मृत्युबोध को बार-बार अपने भीतर गुंभित कर देता है । अकविता विद्रोह

1. मुक्ति इतिहासहन्ता जगदीश चतुरवेदी पृ.सं. 17 प्र सं. 1984
2. नयी कविता का परिप्रेक्ष्य परमानंद श्रीवास्तव - पृ.सं. 112 प्र. सं. 1968
3. अकविता और कला सन्दर्भ डॉ.श्याम परमार पृ.सं. 57 प्र. सं. 1968

और मोह भंग की कविता है तो भी समय की सच्चाई की अभिव्यक्ति ही उसका केन्द्रबिन्दु है । सन् साठ के उपरान्त राजनीति ने देश को भीतर से घायल कर दिया । इस भ्रष्ट राजनीति की खामियों से अवगत कवि एकदम उबल पड़ते हैं ।

देह की राजनीति से विकट सन्निकट और कोई
राजनीति नहीं है संजय !
अन्न और अफीम की राजनीति यहाँ से शुरु होती है ।[1]

अकवि को समग्र माहौल खोखला महसूस होता है । समूची व्यवस्था ने व्यक्ति को मशीन बना रखी है । वह स्वत्व खोकर जी रहा है । उसे अपनी आवाज़ पराये की सी महसूस होती है । उसमें एक प्रकार की निर्ममता छा जाती है जिससे व्यर्थता बोध से वह मुक्त नहीं हो सकता। उसे चारों ओर का वातावरण अटपटा सा लगता है । सौमित्र मोहन लिखते हैं

मैं वातावरण से परे फेंक दिया गया हूँ
जहाँ मुझे अपनी ही आवाज़ सुनायी नहीं देती
और मेरी सारी इन्द्रियाँ किसी लोहेदार नगर में घुसती जा रही हैं ।[2]

संक्षेप में अकविता तोड़-फोड़ और आक्रामक विद्रोह की कविता है । अपनी संकुचित दायरे की वजह से वह धारा बहुत जल्दी क्षीण हो गयी । अकविता देश काल से कभी संबद्ध नहीं थी । इसकी दृष्टि विध्वंसात्मक भी । धीरे धीरे युवा पीढ़ी की कविता अकविता की घोर वैयक्तिकता से एकदम मुक्त हुई ।

सन् सत्तर के बाद की कविता केलिए समकालीन कविता जैसे नाम का पड़ जाना सहज था । वह वाद मुक्त कविता की अभिव्यक्ति थी इतने पर भी वह अपनी पूर्ववर्ती धारा से पूर्णतया

---

1. मुक्तिप्रसंग राजकमल चौधरी पृ.सं. 183 प्र. सं. 1988
2. सौमित्र मोहन

विच्छिन्न नहीं हो सकती । समकालीन कविता ने पूर्ववर्ती कविताओं से मानवीय समग्रता को अपनाया क्योंकि समकालीन जीवन को उत्तरोत्तर बढ़ती बहुआयामी समस्याओं के प्रति वह सचेत है । सातवें दशक तक आते आते काव्य-क्षेत्र में युवा पीढ़ी प्रतिष्ठित हुई । आज़ादी के कुछ साल बाद ही इस पीढ़ी ने भारत में आँखें खोली थीं । फिर भी ये इतिहास से कभी असंबद्ध नहीं रहीं । इसने आस्था और विश्वास के स्थान पर विचार को प्रश्रय दिया । मगर वह दर्शन से बोझिल नहीं था, बल्कि संवेदना से संपृक्त था । "आधुनिक कविता समकालीन स्थितियों का मात्र अनुभव आकलन ही नहीं करती, स्थितियों और उनके जिम्मेदार कारणों की पड़ताल-पहचान की कोशिश भी करती है ।"[1]

रचनात्मकता की दृष्टि से युवा पीढ़ी की सबसे बड़ी उपलब्धि यथास्थिति के टूटन का तीखा एहसास है । वर्तमान के प्रति एक गहरा असन्तोष और नकार जो पूर्व पीढ़ी में दिखाई पड़ता है उसका गहरा और व्यापक स्तर समकालीन कविता में मिलता है। परिवेश के अन्तर्विरोधों की शिनाख्त युवा पीढ़ी की रचनाओं को जीवंतता प्रदान करती है । उनके विद्रोह का आयाम व्यापक है । आज की स्थापित सत्ता और उच्च-वर्गीय संस्कृति के खोखले मूल्यों पर वह प्रखर प्रहार ही नहीं करती उस अमानवीय ढाँचे से मनुष्य को मुक्त करने केलिये छटपटाती भी है । राजनीति का इतना तीखा एहसास पूर्ववर्ती कविता में नही है ।"युवा पीढ़ी की और एक विशेषता यह है कि वह अपनी वैचारिक प्रतिक्रिया में खूब यथार्थवादी है । वह राजनीति को केवल पृष्ठभूमि नहीं मानती बल्कि उसे आज की सबसे गत्यात्मक, प्रत्यक्ष और क्रूरतम वास्तविकता मानती है । उससे तटस्थ होने का मतलब है युग की कठोरतम सच्चाई से असंबद्ध होना ।"[2] धूमिल युवा पीढ़ी के सशक्त हस्ताक्षरों में हैं जिन्होंने समय की ज्वलन्त सच्चाईयों को चुनौती के रूप में स्वीकार किया । 'चालाक आदमी' मे उन्होंने गत्यात्मक सच्चाई को, चालाक राजनैतिक नेता को, भोक्ता की दृष्टि से आँका है ।

---

1. आधुनिकता के सन्दर्भ में नई कविता तथा अन्य काव्य आन्दोलन डॉ.रामरती पृ.सं. 57 भाषा सितंबर 1984
2. युवा लेखन प्रतिपक्ष का साहित्य केदारनाथ सिंह पृ.सं. 52 आलोचना जनवरी-मार्च 1968

मगर [illegible] चालाक आदमी [illegible] किसी बात का उत्तर
नहीं दिया और हँसता रहा, हँसता
फिर जल्दी से हाथ छुड़ाकर
जनता के हित में स्थानान्तरित
हो गया ।[1]

उनका यह आक्रोश मनुष्य के संरक्षक होने का दावा करनेवाले शासन तंत्र से है । परिवेशगत विड़म्बना की अभिव्यंजना से बढ़कर उससे मुक्त होने की तीव्र अकुलाहट युवा कविता को एक नया आयाम देती है । "साठोत्तरी कविता में राजनीति एक जीवन्त और कठोर सत्य बनकर आयी है जिसने सामान्य जन को राहत देने के बजाय आहत अधिक किया है"।[2]

युवा पीढी ने अपने को, अपनी रचना को, ज़िन्दगी को और कवि-कर्म को सही परिप्रेक्ष्य में परिभाषित किया । ये स्वतंत्र चेता कवि ठहरे हुए क्षणों के स्थान पर गत्यात्मक क्षणों को अभिव्यक्ति देते रहे । ये अपने स्वत्व की पहचान के प्रति सचेत थे । वे प्रतिबद्धता को बिलकुल त्याज्य मानते हैं । उन्हें प्रतिबद्धता है तो सिर्फ अपने आन्तरिक संघर्ष से । उनकी प्रतिबद्धता ने काव्य सृजन को एक नया मोड़ दिया । मुक्तिबोध और धूमिल दोनों के आधुनिक बोध में काल सापेक्ष अन्तर है । दोनों ने अन्धेरा शब्द का काफी प्रयोग किया है । परन्तु मुक्तिबोध की कविताओं में चित्रित अन्धेरा आज़ादी के बाद का है । पटकथा में तीसरे आम चुनाव के बाद भारत में छाये हुए अन्धेरे का चित्र उभरा गया है । इन दोनों की आधुनिकता बदले हुए परिवेश की आधुनिकता है । युवा कवि विचार और संवेदना के विभिन्न आयामों से टकराने की वजह से हमारे समय के सत्य को वाणी देने में समर्थ हुए ।

'समकालीनता' कालसूचक शब्द नहीं बल्कि रचना और रचनाकार को जीवंत और कालजयी बनानेवाली एक दृष्टि है । वह जीवन के व्यपक परिप्रेक्ष्य को शब्दबद्ध करती रही ।

---

1. अकाल दर्शन -धूमिल पृ सं 17
2. समकालीन हिन्दी कविता में विद्रोह-गोविन्द रजनीश- पृ.सं. 53 समीक्षा
3. समकालीन कविता संप्रेषण विचार: आत्मकथ्य वीरेन्द्रसिंह - पृ.स. 25-26, प्र. सं. 1987

समकालीन कविता पूर्ववर्ती कविता से पृथक पहचान रखती है । उसमें असुरक्षित भविष्य से संबद्ध वर्तमान की ही प्रासंगिकता है । ये कवि विद्रोह के नाम पर कविता को उत्तेजनात्मक वक्तव्यों से नहीं भरते । वे कटु तिक्त सच्चाइयों का डटकर सामना करते हैं । यह साहस धूमिल, कुमार विकल जैसे युवा पीढी के कवियों में बखूबी से मिलता है । आम जनता जहाँ जहाँ मूल्य खोती है वहाँ कवि प्रतिक्रियान्वित होता है । उनकी रचनाओं में उभरता मानव बिंब संघर्षों के बीच चरमराते मामूली आदमी का है । धूमिल आक्रोश के कवि हैं मगर उनकी संवेदना वयस्क है । उनकी कविता विभिन्न कोणों से पिसते एक भारतीय की पीड़ा और छटपटाहट की कविता है । समकालीन कविता इस प्रकार देशी संदर्भों को मज़बूत करती रही । धूमिल ने हिन्दी कविता को आम आदमी से और भारत की मिट्टी से जोड़कर नयी अर्थवत्ता दी ।

युवा पीढी के विकास के साथ भारतीय मिट्टी की महक के साथ समकालीन कविता भी विकसित होती रही । आठवें दशक तक आते आते उसने समय के सत्य से साक्षात्कार करने वाला एक सुनिश्चित दृष्टिकोण भी हासिल किया। तत्कालीन परिवेश इस दृष्टि को मज़बूत करता रहा । यथार्थ की स्वीकृति ने ही समकालीन कविता को पृथक पहचान दी है । वादों के दबाव से कविता को मुक्त करके समय और विचार को एक दूसरे से जोड़कर वे कविता को सौन्दर्य के वायवी कटघरे से मुक्त करके यथार्थ के धरातल पर लायी । समकालीन कविता बहुआयामी है । उसकी सार्थकता इसी बात पर निर्भर है कि वह युग जीवन से कहाँ, कैसे, किस स्तर पर जुड़ती है ।

अध्याय दो

समकालीन कविता की जनवादी दृष्टि

कविता का जनवादी स्वर

मनुष्य को मनुष्य बनाने, उसे मानवीयता से संपृक्त करने और जनता को मुक्ति पथ पर अग्रसर कराने की क्षमता रखनेवाला साहित्य ही साथक साहित्य हो सकता है। साहित्य में निहित साँस्कृतिक तत्वों को बारीकी से पहचानने केलिये मन का साँस्कृतिक परिष्कार ज़रूरी है । एक ही समय दुनिया में परस्पर विरोधी विचारधारायें एक दूसरे से उलझी हुई रहा करती हैं । इन विविधताओं के बीच से ही कविता उपजती है । रचना की प्रांसंगिकता वैयक्तिक दृष्टि से नहीं बल्कि सामाजिक संदर्भ में ही महत्वपूर्ण है ।

'जनवाद' शब्द सिर्फ राजनीति से संबद्ध नहीं है। उसका संबन्ध संस्कृति से है । साहित्य में वह प्रगतिवाद का स्थानापन्न शब्द भी नहीं है । कविता का जनवादी स्वर मानवीयता से संबद्ध तत्व है । अतीत से बढ़कर उसमें वर्तमान की अपेक्षा है । युग को बदलने की शक्ति उसमें है । मगर इसकी परम्परा अत्यन्त गहरी है । प्राचीन युग से ही साहित्य में मुक्तिकामना का स्वर रहा है । समकालीन कविता में वह प्रखरता से गुंफित है । पुराने समय में जनवादी काव्य सामंत विरोधी काव्य माना जाता था। उसका क्षेत्र व्यापक होता गया। वह जीवन के हर क्षेत्र में व्याप्त शोषण के प्रतिरोध में लिखा गया मानव संपृक्ति का काव्य बन गया । जनवाद का यही मूल स्रोत है । मानवीय संपृक्ति ही इस दृष्टि को विकसित करती है । जनवाद छायावाद या प्रयोगवाद की तरह केवल साहित्यिक वाद नहीं है । इसका एक निश्चित राजनीतिक आधार और अभिप्राय है ।[1]

हिन्दी की जनवादी काव्यधारा भारतीय जीवन संघर्ष की सुदृढ़ भूमि पर खड़ी है । जनवादी काव्य मुट्टी भर शोषक-शासक वर्ग के प्रति विशाल शोषित जनसमुदाय की मुक्ति का

---

1. शब्द और कर्म - मैनेजर पाण्डेय -पृ.सं. 145 प्र.सं. 1997

उद्घोष है [1] जनवादी कविता श्रमजीवियों की जिन्दगी का दस्तावेज़ है । जनता के संघर्षों और जीवन को स्वर देने की एक सफल कोशिश जनवादी साहित्य में दिखायी देती है । व्यवस्था की मार से क्षत-विक्षत मानव बिंब ही जनवादी कविता के केन्द्र में हैं सभी प्रकार की तबाहियों के बीच घुटते मनुष्य की त्रासदी का सशक्त चित्र जनवादी कविता में मिलता है । ये कवि करोड़ों श्रमजीवियों के संघर्ष में सहभागी ही न होकर उन्हीं में से एक बन जाता है । सर्वहारा की नज़रिये से ही वे देशकाल और समाज को विश्लेषित करते हैं । शोषण के विरुद्ध संगठित सर्वहारा की क्रान्ति-भावना को इस साहित्य ने अंजाम दिया है । जनवादी रचनाकार की दृष्टि समूचे समाज पर पड़ती है । सर्वहारा वर्ग रोटी केलिये कभी व्यवस्था से समझौता नहीं करता है । ऐसे लोग ही क्रान्ति कर सकते हैं । समाकालीन कविता की जनवादी दृष्टि की नींव पर क्रान्ति भावना टिकी है ।

हिन्दी में जनवादी कविता की परंपरा

जनवादी दृष्टि समकालीन कविता में सशक्त सन्निहिति के रूप में उपलब्ध है । परन्तु उसका अपना इतिहास भी है । प्राचीन काल में ही इसका बीजावापन हुआ था । मध्यकाल के काव्य भी मानवीय आकाँक्षाओं से जुड़े हुए हैं । भक्तिकाल के कबीर हर युग में प्रासंगिक हैं। आत्मदया का ज़रा भी संस्पर्श उनमें नहीं था । समाज सुधारक और धर्मसुधारक कवि में मानव मुक्ति का स्वर गुंफित है । जो समस्यायें आज भी प्रखर रूप में वर्तमान हैं उन्हें वर्षों पहले कबीर ने उठाई थी । कबीर आध्यात्मिक मुक्ति की ही बात नहीं करते बल्कि समूचे जनसमुदाय की विषमताओं से मुक्ति की ही बात करते हैं । संत साहित्य मुक्ति कामना का साहित्य है । इसिलए वह जनवादी साहित्य का प्रथम रूप है ।

---

1. जनवादी काव्य की प्रवृत्तियाँ - हिन्दी की जनवादी कविता - वशिष्ठ अनूप पृ.सं. 83 प्र.सं. 1994

नवजागरण काल में भारतेन्दु [illegible] कृतियों के माध्यम से समाज में व्याप्त अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठायी थी । असल में उन्होंने अंग्रेज़ों की खूबियों की प्रशंसा भी की है । लेकिन भारतेन्दु की रचनाओं में भारत की दुर्दशा, पराधीनता और देश की मुक्ति की तड़प भी मिलती है । उन्होंने जनवादी दृष्टि से प्रेरित होकर कवितायें नहीं लिखी हैं । सामाजिक सोद्देश्यता से जुड़ी उनकी कविताओं की तह में जनसमुदाय की मुक्ति की बात निहित है ।

नवजागरण काल में मैथिली शरण गुप्त ने अपने काव्य को सामाजिक दुःख दर्दों से जोड़ा । स्वतंत्रता की बलिवेदी पर खुद को समर्पित करने की प्रेरणा देने के साथ-साथ सामाजिक शोषण से मुक्ति की आवाज़ भी वे अपनी कविता में बुलन्द करते हैं । उनकी नारी ही नहीं उनके किसान मज़दूर भी मुक्ति के सपने देखते हैं । गुप्तजी की "किसान" कविता में उन्होंने महाजनी सभ्यता और ज़मींदारी प्रथा के तले शोषित निचले तबके का चित्र खींचा है । यद्यपि वे नैतिकवादी हैं फिर भी वे निरन्तर अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं । उनकी मुक्ति कामना के पीछे निहित जनवादी दृष्टि को अनदेखा नहीं किया जा सकता ।

आदर्शवादी कवि रामनरेश त्रिपाठी ने भी जनवादी दृष्टि से नहीं तो भी सोद्देश्यता से जुड़ी कवितायें रची हैं । स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ी उनकी कविताओं में अन्याय से भिडने की चाह भी वर्तमान है । आदर्शवाद की आड़ में उनकी जनवादी चेतना अप्रत्यक्ष नहीं हो गयी बल्कि खूब उजागर हुई ।

प्रखर सामाजिक चेतना के कवि निराला में जनवादिता चरम सीमा में मिलती है । छायावादी कवि होते हुए भी कालातिक्रमण की अपूर्व क्षमता उनमें थी । छायावादियों में निराला का संवेदना-संसार व्यापक और गहरा है जिसे नागार्जुन, त्रिलोचन, मुक्तिबोध, शमशेर आदि

निर्मित किया । उनकी संवेदनशीलता आत्मकेन्द्रित होने बदले समाजोन्मुख है । निराला की अपराजेय मनःस्थिति समकालीन कविता की जनवादी दृष्टि को खूब सशक्त बनाती है । वे संघर्षों को झेलते है। वे स्वयं दबते नहीं हैं, समझौता नहीं करते है, एकदम जूझते है । यह जुझारू मानसिकता सरोजस्मृति, राम की शक्तिपूजा आदि लम्बी कविताओं को कालजयी बनाती है ।

प्रगतिवादी कविता में जनवादिता

प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के पश्चात कवियों को इस बात का तीखा एहसास होना शुरू हुआ था कि अब कविता स्वप्नों में नहीं जी सकती क्योंकि साहित्य के प्रचलित विश्वास, भाव और कल्पना-संसार बदल चुके हैं । प्रगतिवाद एक हद तक मार्क्सवाद का पर्याय है । कविता में साधारण जनसमुदाय की पीड़ाओं को शब्दबद्ध करने और उनसे मुक्ति दिलवाने की कोशिश विशेष रूप से शुरू हुई । समानता की स्थापना, अन्याय के विरुद्ध क्रान्ति, परिवर्तन की इच्छा. परिवर्तन पर पूरा भरोसा आदि प्रगतिवाद के तत्व हैं । नागार्जुन, त्रिलोचन जैसे कवि इसके सशक्त हस्ताक्षर हैं । वे मार्क्सवाद के सिद्धान्तों को मानते थे, मगर उससे भी अधिक मानवीय संस्पर्श को महत्वपूर्ण मानते हैं । क्रान्ति के इन वाहकों ने सामाजिक परिवर्तन केलिये क्रान्ति की है । उन्होंने जीवन को उसके सारे खट्ठे-मीठे अनुभवों के साथ स्वीकारा है । ईमानदारी और साहस के साथ उन अनुभवों के बीच पलकर उनसे कविता की नयी मूर्ती गढ़ी है । व्यक्तिगत कुंठा और अवसाद को व्यापक भूमिका प्रदान करने वाली उनकी कवितायें अपनी मिट्टी की सोंधी गंध से युक्त हो गयी हैं । उन्होंने यथार्थ के कुछ पहलुओं को ही नहीं उसे संपूर्णता में ग्रहण किया था । दुख और सुख की सहज संवेदनाओं को औरों की भाँति अनुभव करनेवाले एक व्यक्ति के रूप में नागार्जुन ने अपने को चित्रित किया है ।

[illegible] नहीं पाषाण

जिसको डाल दे कोई कहीं भी

करेगा वह कभी कुछ न विरोध

करेगा वह कुछ नहीं अनुरोध [1]

सामाजिक यथार्थ का चेतना इन कवियों का जीवनोन्मुखी बनाती है । मानववाद की व्याख्याओं को एक नया संदर्भ देते हुए इन कवियों ने उसे एक आन्तरिक दृष्टिकोण माना है । प्रगतिवादी रचनायें मनुष्य के सचेतन व्यक्तित्व को प्रश्रय देनेवाली सच्ची मानववादी रचनायें हैं । इन क्रान्तियों का लक्ष्य एक स्वस्थ मानवमन का निर्माण था । ये मनुष्य को अपनी शक्ति से परिचित कराकर विरोधी परिस्थितियों के बीच अपने व्यक्तित्व को विकसित करने का आत्मविश्वास भर देते हैं । "मनुष्यता जहाँ भी पीड़ित है, मनुष्य जहाँ भी अपनी तथा समाज की नई रूपरेखा केलिये संघर्ष कर रहा है प्रगतिशील कवि की संवेदना का प्रसार निर्बाध रूप से वहाँ तक है"[2]। प्रगतिवादी कविताओं में यद्यपि मार्क्सवादी सिद्धान्तों की प्रधानता है फिर भी उनमें पीड़ित मनुष्यों की पक्षधरता ही प्रबल है ।

नागार्जुन की कविताओं का मुख्य स्वर वर्तमान शासन व्यवस्था का घोर विरोध है। शोषक वर्ग पर वे खुलकर प्रहार करते हैं क्योंकि उन्हें मालूम है कि ये अजेय नहीं । उनमें कालबोध से बढकर इतिहास बोध है जिससे वे जन के पक्षधर बने हैं । युगधारा को पहली कविता 'जनवन्दना' में भगवान के विराट रूप के ज़रिये सारे पीड़ित जनसमुदाय का विराट रूप उभार दिया है ।

हे कोटि शीर्ष, हे कोटि बाहु, हे कोटि भरण[3]

---

1 सिंदूर तिलकित भाल-सतरंगे पंखोवाली नागार्जुन पृ.सं. 48 प्र.सं. 1984

2. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी प्रगतिशील कविता में सामाजिक चेतना डॉ. भक्तराम शर्मा - पृ.सं. 14 भाषा-दिसम्बर 1982

3 जनवन्दना युगधारा नागार्जुन -पृ.सं. 9 द्वि सं 1982

उनके [illegible] डा० विश्वनाथ त्रिपाठी 'महाराग' कहते हैं ।[1] उनकी 'हरिजनगाथा' जनपक्षधर [illegible] स्पष्ट इज़हार

त्रिलोचन की कवितायें व्यापक जीवन के सूक्ष्म पक्षों को छूती हैं । सतही ढंग से शान्त दिखनेवाली उनकी कविताओं की तह में अवसाद है । उन्होंने जीवन परिवेश के रोए-रेशे की परतों को खोलने की कोशिश की है । आम आदमी के सुख-दुःखों से ही वे स्थायी सत्य को बटोरते रहे । वे सामान्य में असामान्य के दर्शक हैं तो वह इसलिए कि इस असामान्य के माध्यम से पुनः सामान्य को समझ सकें । दुःख, दर्द और अवसाद के बीच भी एक अपराजेय भाव से यह अभावग्रस्त सर्वहारा वर्ग खड़ा है । वे अभाव से न दबकर उससे जूझते हैं और आस्था नहीं छोड़ते हैं । आहत होकर भी अनाहत बने रहने का वे संघर्ष करते हैं । त्रिलोचन उन्हीं लोगों के साथ उठते बैठते हैं ।

खाली पेट भरु, कुछ काम करूँ कि चुप मरू
क्या अच्छा है; जीवन है; जीवन जीवन है प्रताप से
स्वाभिमान ज्योतिष्क लोचनों में उतरा था
यह मनुष्य था इतने पर भी न भरा था [2]

अन्धकार को अन्धकार ही समझकर वे शब्द गढते हैं । प्रगतिवाद और प्रगतिशीलता के नाम पर खोखली ललकार और उद्घोष वे नहीं करते हैं । उनमें आस्था है परन्तु तत्काल उदित होनेवाले सुनहले सबेरे की उन्हें कभी आशा नहीं । वे एसा भरोसा नहीं रखते कि दुनिया तुरन्त बदल जायेगी । उन्हें सिर्फ अपनी अन्तरात्मा की धड़कन से सरोकार था ।

शांति यहाँ कितनी है
अशांतियों को शान्ति से छिपाते हैं
शांति में शक्ति है
देश आगे बढ रहा है
और लोग कैसे हैं
पीछे पड़ रहे हैं

---

1 जनकवि होने का अर्थ विश्वनाथ त्रिपाठी पृ.सं. 68 to 74 आलोचना 1987 जूलाई-सितम्बर

2. भीख माँगते- उस जनपद का नहि हूँ त्रिलोचन पृ.सं. 13 प्र.सं. 1981

3. शान्ति यहाँ कितनी है तुम्हें सौंपता हूँ त्रिलोचन -पृ.सं. 57 प्र.सं. 1985

त्रिलोचन की कविता दुःख और संघर्ष के [illegible] आस्था न खोकर अनाहत बने रहने का प्रयास करते मनुष्य की कविता है। त्रिलोचन की पैनी और गहरी दृष्टि इन हाड़-मांस के पुतलों के यथार्थ को बहुत निकट से आँकती है । प्रगतिवादी कवियों में सबसे अधिक सौन्द्रयवादी रुझान त्रिलोचन में है । इस रुझान का आधार सामान्य जन में निहित अनुभूतियाँ ही हैं। वे अनुभूतियाँ ठोस यथार्थ की, परिवेश की उपज हैं । दूसरों के दर्द में उन्होंने अपना प्रतिबिंब देखा इसलिए उन्हें लगा कि दर्द मनुष्य को मनुष्य से जोड़ता है । आत्मा को प्रसार देता है । वे अपने को जनपद का कवि मानते हैं जो भूखा और नंगा है ।

दर्द जो आया तो दिल में उसे जगह दे दी,
आके जो बैठ गया मुझसे उठाया न गया [1]

टूटे हारे ठेठ भारतीयों की दुर्दशा को उनकी स्थिर और शान्त दृष्टि ने आँका है । 'अरघान' और 'उस जनपद का कवि हूँ', कवि की वयस्क संवेदना की अभिव्यक्ति है । आधुनिक हिन्दी कविता में दरिद्रता का मार्मिक किन्तु नियन्त्रित वर्णन 'उस जनपद का कवि हूँ' में मिलता है । त्रिलोचन की कविताओं में अंकित क्षत-विक्षत मानव बिंब उनके मानव प्रेम का, उनके सहभागित्व का दस्तावेज़ है ।[2] उनकी हर कविता का आधार सहज स्वाभाविक मानवता है । उनकी जनवादी दृष्टि का आधार मानव-प्रेम और क्रान्ति है ।

नयी कविता में जनवादिता

मुक्तिबोध नयी कविता के प्रमुख कवि हैं। उनकी कवितायें मनुष्य नियति को भलीभाँति परिभाषित करने में समर्थ हैं। मार्क्सवाद के संपर्क में आने के बाद उनके विचारों और संवेदनाओं में अन्तर आया । उस बदली हुई अवस्था में ही उन्होंने अपने को श्रमिक वर्ग से

---

1 उनसे भूला न गया -गुलाब और बुलबुल त्रिलोचन पृ.सं. 22 प्र.सं. 1985
2.शब्दों का अन्तरनिहित प्रकाश - अरुण कमल पृ. सं. 188 प्र.सं. 1994

आत्मीयता से जुड़ना शुरु किया उनकी कवितायें वैयक्तिक सीमाओं को लांघकर सार्वजनिक मुकाम तक पहुँचती है । मगर उन्होंने मार्क्सवाद को बना बनाई चीज़ के रूप में ग्रहण नहीं किया । उसे अपने ज्ञान और अनुभव के योग से एक आत्मसंघर्ष के द्वारा अनुभव किया । उनकी कविताओं की तह में गहन मानववादी स्वर गूँजता है जो सिद्धान्तों के परे है । मध्यवर्ग के प्रतिनिधि-मुक्तिबोध उन संस्कारों से जूझकर आहत अवश्य हुए हैं । मगर उनकी कवितायें आहत होकर भी अनाहत रहनेवाले हृदय की अभिव्यक्ति हैं । इस अनाहत दृष्टि का ही समकालीन कवियों ने विकसित किया है। मुक्तिबोध की जनवादी दृष्टि ज्ञान और संवेदन का घोल है जो अनुभव प्रसूत है, आत्मसंघर्ष की उपज है ।

भारत में जनक्रान्ति का सपना वे देखते थे । उसमें वे मध्यवर्ग की भी भूमिका मानते थे । मध्यवर्ग और मज़दूर वर्ग को मिलानेवाली एक कड़ी के रूप में मुक्तिबोध इतिहास में वर्तमान है उन्हीं में से एक बनने की वजह से उनके दिल की धड़कन मुक्तिबोध की कवित्त का मुख्य विषय बनी। 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' मुक्तिबोध की प्रथम और प्रतिनिधि रचना है जिसमें वैचारकिता और भावात्मकता का संगम हुआ है । रात के सन्नाटे में आकाश में टेढे मूँहवाला चाँद टाँगा है । सड़क के पास खड़े बरगद के पेड़ के नीचे के भैरों की मूर्ति की पीठ पर किसी ने पोस्टर लगा दी है । बरगद की शाखाओं पर भी पोस्टर लटकती है । लाल अक्षरों में लिखा पोस्टर पेट से बाहर आयी ज्वालाओं की आंत सी महसूस होती है । इन पोस्टर लगानेवाली आकृतियों को पूँछ उठाकर, नाखूनों से खून टपकती काली बिल्ली भी देख लेती है । प्रस्तुत कविता क्रान्ति और अन्धाकार की भयावहता का सशक्त चित्र प्रस्तुत करती है ।

मनुष्य और उसके सपनों को अनदेखा करनेवाले धर्म के खोखलेपन का उन्होंने खूब विरोध किया है । 'एक अरूप शून्य के प्रति' में उन्होंने धर्म और अरूप पर कड़ी चोट की है । व्यक्ति को आत्मकेन्द्रित बनाकर वे उसे समूचे विश्व से अलग करते हैं। उस प्रकार के

अध्यात्मवाद के व [illegible] [illegible]   [illegible] कविता के [illegible] अध्यात्मिकता में निहित मानववाद को व बाहर लाते है । आदमी की पीड़ा को समझनेवाला ही आदमी कहलाता है । आदमी की दर्दभरी पुकार सुनकर सिर्फ वही मदद केलिये दौड़ आयेगा । मनुष्य के दर्द को उसकी पीड़ा को वर्तमान संदर्भ में गहराई से छूने की वजह से मुक्तिबोध यथार्थ दृष्टा और युगदृष्टा का स्तर हासिल करते हैं । सन्ध्या के वक्त मन्दिर के चबूतरे पर बैठते कवि को "मेरे लोग" याद आते हैं ।

मुझे याद आते हैं मेरे लोग
उनके सब हृदय रोग,
घुटप अंधेरे घर
पीली पीली चिन्ता के अंगारों जैसे पर
मुझे याद आती है भगवान राम की शबरी,
मुझे याद आती है लाल जलती हुई ढिबरी
मुझे याद आता है मेरा प्यारा देश
लाल लाल सुनहला आवेश ।[1]

" मुक्तिबोध का काव्य यथार्थ जन जीवन का वस्तुगत यथार्थ है, अचेतन के गहरे सॉंस्कृतिक स्तरों से उसे सिर्फ मिथकीय शक्ति प्राप्त हुई है ।[2] मध्यवर्ग से जुड़ा हुआ यह कवि सर्वहारा वर्ग के वक्ता बनने के साथ साथ मध्यवर्ग को सचेत और सक्रिय बनाते थे । मुक्तिबोध से ही आगामी पीढ़ी ने जनवादी चेतना ग्रहण की है ।

रघुवीर सहाय की राय में जनजीवन की यंत्रणाओं की शुरुआत व्यवस्था की अनैतिकता से ही होती है । यह अनैतिकता विकसित होकर जीवन के हर पहलू को ग्रस लेती है । ऐसी व्यवस्था के भीतर देश केलिये अपने को समर्पित करने का बहाना करनेवाले, जनता को ठगने

---

1. एक अरूप शून्य के प्रति   मुक्तिबोध रचनावली -2   मुक्तिबोध   पृ.सं. 190 प्र.सं.1985
2. आठवें दशक की हिन्दी कविता - शंभुनाथ – पृ.सं. 118 प्र.सं.1980

के नये नये तरीके खोज निकालने वाले भ्रष्ट चरित्र ही रघुवीर सहाय की कविताओं का केन्द्रबिन्दु है। आज़ाद भारत की जनतान्त्रिक व्यवस्था के खोखलेपन का वे अपनी कविताओं में खुलकर विरोध करते है । 'हँसो हँसो जल्दी हँसो' कविता में वे हँसी के कई नये आयाम खोलते हैं । दिन ब दिन बदलती राजनीति, शोषण, अत्याचार आदि सरल भाषा में उनकी कविताओं में अभिव्यक्त हैं । हर मौके से बचने का एक सरल उपाय है हँसी। मौकापरस्त हँसी के बल पर दुनिया में बवंड़र खड़ा करते हैं ।

> हँसते-हँसते किसी का जानने मत दो किस पर हँसते हो
> सबको मानने दो कि तुम सब की तरह परास्त होकर
> एक अपनापे की हँसी हँसते हो
> जैसे सब हँसते हैं बोलने के बजाय [1]

'रामदास' की हत्या देखकर भी चारों ओर का जनसमुदाय निर्मम खड़ा रहा । यह निर्ममता आज के मध्यवर्ग की मुखमुद्रा है । आज के संदर्भ में हत्या भी, मृत्यु भी एक मामूली घटना बन गयी है।

> भीड़ ठेलकर लौट गया वह
> मर पड़ा है रामदास यह
> देखो देखो बार बार कह
> लोग निड़र उस जगह खड़े रहे
> लगे बुलाने उन्हें जिन्हें संशय था हत्या होगी ![2]

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता में जनवादी स्वर मुख्य है । समकालीन कविता ने

---

1 हँसो हँसो जल्दी हँसो रधुवीर सहाय - पृ.सं. 25 प्र.सं.1975
2. रामदास हँसा हँसो जल्दी हँसो - रधुवीर सहाय - पृ.सं. 26 प्र.सं.1975

सर्वेश्वर से अवश्य प्रेरणा ग्रहण की है । वे अपनी एक कविता में (अपना चेहरा) जनवादी दृष्टि का वातावरण सृजित करते है ।

मैं ने झाँका
वहाँ तमाम चेहरे थे
दुखी चेहरे, उदास चेहरे, गुस्से और
क्षोभ से भरे चेहरे, फीके निस्तेज, धूल खाये चेहरे ।[1]

सर्वेश्वर की कवितायें व्यवस्था के विरुद्ध एक सीधे बेलोस मुहावरे की खोज करती हैं और शब्दों से हथियारों का काम लेना चाहती है ।[2] जन कवि अपने में निहित शक्ति को पहचानने का आहवान जनता को देते हैं । वे जनता में यह विश्वास भरना चाहते हैं कि विपत्ति में मनुष्य अकेला नहीं है । उसे मिलकर प्रयत्न करना है, तभी वह मानवीयता का स्तर ऊपर उठा सकता है । मनुष्य अपना अधिकार पा सकता है तभी राह निकाल सकता है ।

विपत्ति में
तुम अकेले नहीं हो,
असंख्य सोते कुलबुलाते हैं
चट्टानों में मिलकर एक धारा बनने को
इसे पहचानो
राह निकलेगी निश्चय ।[3]

यहाँ कवि सक्रिय विद्रोह की प्रेरणा देते है । 'जंगल का दर्द' कविता में उन्होंने सत्ताधारी वर्ग पर प्रहार किया है । यह सत्तावर्ग जानवरों की तरह एक दूसरे पर झपट पड़ने की वजह खोजता है ।

---

1. अपना चेहरा जंगल का दर्द सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - पृ.सं. 10 प्र.सं.1994
2. जन कविता के पक्ष में - समकालीन कविता का व्याकरण परमानंद श्रीवास्तव पृ.सं. 52 प्र.सं.1980
3. राह निकलेगी जंगल का दर्द -सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - पृ.सं. 25 प्र.सं.1994

शिक्षित होकर भी [illegible] के समान व्यवहार करनेवाले मानवीय सम्पर्क से अलग आज के नेताओं की ओर उन्होंने इसमें संकेत किया है।

ताकतवर ने सब खा लिया
कमज़ोर ने उच्छिष्ट से
सन्तोष कर दर्द से मुँह छिपा लिया ।[1]

मनुष्य का जीवन मूल्यों के संकट और नये मूल्यों की खोज के बीच से गुज़रता है । प्रबुद्ध साहित्यकार इस स्थिति के प्रति प्रतिक्रियान्वित होते हैं । नयी कविता में अन्वेषण की निरन्तरता के साथ यथार्थ की नयी दृष्टि भी विकसित हुई है । "समसामयिकता का दायित्व तथा लोकसंपृक्ति का भाव सर्वेश्वर की कविता में जिस आधुनिक संवेदना के स्तर पर व्यक्त हुआ है वैसा आज के किसी कवि में नहीं मिलता है "।[2] वे धड़कते वर्तमान से अपने को जोड़ते हैं । बाढ़ खतरे का निशान है । उस खतरे से अपने को, अपने परिवेश को बचाना दुष्कर है । बचाने के प्रयत्न में कुछ अवश्य खो जायेंगे । खोये हुए पर रोते रहना बेवकूफी है । खोने से ड़रनेवाला कभी कुछ बचा नहीं सकेगा, पा नहीं सकेगा । आशा और आस्था का स्वर सर्वेश्वर की कविताओं की अन्तसत्ता है । सबसे जूझने का साहस कवि की कविताओं में बखूबी से मिलता है । सर्वहारा वर्ग के अन्दर जलती ज्वालाओं को अधिकारी वर्ग दबाते हैं, पर उसे प्रज्वलित करना कवि का लक्ष्य है।

कुछ बचाने केलिये
कुछ खोना पड़ता है
जो खोने से ड़रता है
वह बचा नहीं सकता ।[3]

---

1 जंगल का दर्द सर्वेश्वर दयाल सक्सेना पृ.सं. 34 प्र.सं.1994

2. आधुनिक संवेदना के स्तर विवेक के रंग रघुवंश पृ. सं 165 प्र. सं 1973

3. खतरे का निशान कुआनो नदी सर्वेश्वर पृ.सं. 34 प्र.सं.1973

कवि चाहता है कि दुःखी आदमी के न रोने के बदले में आदमी दुःखों को तोड़ने का हौसला दिखाये । गरीबी हटाओ के नाम पर होनेवाली भिन्न-भिन्न अर्थशून्य कारवाईयों की ओर कवि ने इशारा किया है । गरीबी हटाने के प्रयत्न के बहाने लोग खूब अन्याय करते हैं । इस प्रयत्न के नाम पर हाथ धरकर बैठते, भूख का इलाज खोजते नेताओं पर उन्होंने करारी चोट की है ।

गरीबी हटाओ सुनते हैं
वे एक बहुत बड़ी रोटी बेलने लगे
काफी बेल लेने के बाद
उन्हें पता चला तवे छोटे हैं
और चुल्हे नदारद
फिर वे हाथ पर हाथ रखकर बैठ गये
जब आटे में फफूँद लग गयी
तब वे उस फफूँद से
दवाईयाँ तैयार करने की सोचने लगे
जिनसे भूख का इलाज हो सके ।[1]

जनवादी स्वर की मुखरता ही सर्वेश्वर की कविता की आत्मा है ।

शमशेर बहादुरसिंह हिन्दी कविता के अग्रणी कवि हैं । शमशेर की कवितायें जटिल मनस्थिति की कवितायें हैं । "शमशेर के यहाँ कविता मनुष्य से सबसे अनश्वर रचना है: वह समयविद्ध होते हुए भी समयातीत है । उनकी दुनिया टूटी हुई बिखरी हुई है, पर अपनी सुन्दरता

---

1. गरीबी हटाओ कुआनो नदी सर्वेश्वर दयाल सक्सेना- पृ.सं. 44 प्र.सं.1973

[illegible] अर्थवत्ता में मुकम्मल"[1] उनकी रचनाधर्मिता के कई आयाम भिन्न भिन्न काव्य संग्रहों में खुलते नज़र आते हैं। मार्क्सवाद से प्रभावित होकर भी शमशेर ने अपना एक पृथक राह और पहचान बनाई है। उनकी काव्यानुभूति मार्क्सवाद के भी परे है । मार्क्सवाद के जनवादी रूप और जनवादी आकाँक्षाओं को ही उन्होंने जीवन में और रचना में प्रधानता दी है । इतिहास के मर्म और समाज के सत्य को समझने की दृष्टि से ही उन्होंने उसे स्वीकारा है । इतिहास की धड़कन को ही उन्होंने अपनी सर्जनात्मकता का आधार माना है । "शमशेर सामान्यीकृत भावनाओं और सामान्यीकृत रुखों के कवि नहीं हैं । उनमें चीज़ों, स्थितियों, हरकतों और मनस्थितियों की गहरी पहचान और विशिष्ट संवेदनाओं का साक्षात्कार होता है ।"[2]

सत्य का रुख
समय का रुख है
अभय जनता को
सत्य ही सुख है,
सत्य ही सुख ।[3]

समकालीन परिदृश्य में विनम्र आत्मविश्वास से ओतप्रोत कवि बहुत कम मिलते हैं । शमशेर ने रूढ़ियों को तोड़कर मानवीय संपृक्ति को अपनी रचनाओं में स्थान दिया । जनजीवन के सही यथार्थ को पकड़नेवाले कवि ने व्यक्ति सत्ता को समष्टि से मिलाया है। सच्चाई, सौन्दर्य जैसी परस्पर विरोधी भावनायें उनकी कविताओं में एक दूसरे से घुलमिल गयी हैं। 'काल तुझसे होड़ है मेरी' कविता शमशेर की कविताओं को समग्रता से आँकती है । काल अपराजित है । उस काल में अपराजित कवि वास करना चाहता है। वे पूरे आत्मविश्वास के साथ उससे भिड़ने को तैयार है । वे आस्था और आत्मविश्वास के साथ कहते हैं कि 'काल

---

1. पहाड़ों को कुहनियों से ठेलता - टूटी हुई बिखरी हुई अशोक वाजपेयी पृ.सं. 1 प्र.सं.1990
2. समावेशी आधुनिकता धनंजय वर्मा पृ.सं. 249 प्र.सं.1991
3. बात बोलेगी टूटी हुई बिखरी हुई शमशेर पृ.सं. 76 प्र.सं.1990

तुझसे होड़ है मेरी यह कविता उनके संपूर्ण काव्य व्यक्तित्व का दस्तावेज़ है । उसमें प्रयुक्त "मैं" अपराजय भाव से संपृक्त समूचा जनसमुदाय है । यह अपराजय भाव समकालीन कविता की एक खासियत है जो शमशेर में बखूबी से मिलती है ।

काल,
तुझसे होड़ है मेरी अपराजित तू-
तुझसे अपराजित मैं वास करूँ ।

जो मैं हूँ-
मैं कि जिसमें सब कुछ है.....
क्रान्तियाँ, कम्यून
कम्यूनिस्ट समाज के
नाना कला विज्ञान और दर्शन के
जीवन्त वैभव से समन्वित
व्यक्ति मैं ।[1]

व्यक्ति, समाज, व्यक्तिबद्ध आकाँक्षा, समाजबद्ध, दृष्टि, प्रतिबद्धता, जनवादिता आदि की मिलीजुली भूमि ने नयी कविता के दौर में कविता के जनवादी पक्ष को उभारा है । इन कवियों ने कविता की जन-निबिड़ता को और उसके प्रति अपनी आस्था को ही व्यक्त किया था जिसे व्यापक परिप्रेक्ष्य में समकालीन कवियों ने प्रस्तुत करने का कार्य किया है ।

---

1. काल तुझसे होड़ है मेरी शमशेर - पृ.सं. 40 प्र.सं.1988

समकालीन कविता की जनवादी दृष्टि

आठवें दशक की हिन्दी कविता समय के सत्य से साक्षात्कार करने लगी । समय के सत्य की तलाश इसने यथार्थ स जुड़कर करना शुरू किया । आज के दौर में लिखी जानेवाली तमाम कवितायें समकालीन नहीं कही जा सकती क्योंकि समकालीनता कोई समयबद्ध अवधारणा नहीं है । यह परम्पराओं को तोड़ने के बजाय उसी की ही सही दिशा में होनेवाला विकास है । समय के व्यापक परिप्रेक्ष्य में वर्तमान की बहुआयामी समझ का होना, वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं का सामाजिक रुप से साक्षात्कार करना, व्यापक जनसमुदाय की आशा आकाँक्षाओं के प्रति दायित्व और प्रतिबद्धता महसूस करना ही समकालीन बनना है । समकालीन कवि आक्रामक मुद्रा अपनाकर पाठकों को चौंकाने के बजाय सीधी सहज बातचीत का लहजा अपनाकर कविता को अधिक प्रभावशाली बनाते रहे ।

समकालीन कविता में दर्ज जनवादी दृष्टि के बहुस्तरीय आयाम हैं । सुविधा केलिये इन आयामों को तीन शीर्षकों में बाँटा जा सकता है । ये इस प्रकार हैं

शोषण तंत्र के नए रूप और उसका विरोध,
सामान्य जनता का आशंकाकुल जीवन,
मानवीय आस्था ।

शोषण तंत्र के नए रूप और उसका विरोध

शोषण का इतिहास नया नहीं है । वह बहुत पुराना है । शोषण अब शोषण तंत्र में बदल गया है । शोषण तंत्र के अधीन चरमराता आदमी अकसर निचले तबके का होता है । भारत में ही नहीं संसार भर में जनवाद की आड़ में लोग दूसरों का शोषण करते हैं । समकालीन कविता

का जनवादी दृष्टि नव-नव शोषण-तंत्र को पहचानती ही नहीं बल्कि उसका विरोध करती है। पूर्ववर्ति कविताओं में तत्कालीन स्थिति की समझ ज़रूर है । मगर शोषण तंत्र में पिसते जनसमुदाय को स्वतंत्र बनाने की छटपटाहट नहीं । समकालीन कविता की जनवादी दृष्टि यथार्थ को यथार्थता में देखती है और अमानवीय स्थितियों के प्रतिरोध में खड़ी होती है ।

धूमिल से शुरु होनेवाली समकालीन कविता जनवाद की सही भूमि तैयार करती है । धूमिल की कविता में कविता तो है, प्राथमिकता के साथ । उसके साथ समाज और यथार्थ जीवन भी । उसमें आर्थिक विपन्नता का संयम भी है । उसका समाज शास्त्र भी वे रचते हैं । इसलिए धूमिल लिख पाते हैं ।

भूखे आदमी का सबसे बड़ा तर्क
रोटी है ।[1]

भारत पर चीनी आक्रमण के पहले जनता के मन में आशा जगाई थी कि उनके सारे स्वप्न सार्थक होंगे । उस मनस्थिति को कवि ने "पटकथा" में प्रस्तुत किया था । 'पटकथा' उनकी काव्ययात्रा की एक सुशक्त कड़ी है । आज़ादी के बाद मौजूदा पीढी के सपने टूटने और आदर्श के मुखौटों के बीच नई पीढी के उदय की बात प्रखर ढंग से उन्होंने इसमें व्यक्त की है। एक प्रकार के खोखलेपन का बोध ही उन्हें विरासत के रूप में मिला । 'पटकथा' में कवि परिवेश से जुड़कर जीवन के संश्लिष्ट सत्य को उतारते रहे । आज़ादी के बाद भारतीय जनता ने इन्तज़ार किया कि 'अब कोई बच्चा भूखा रहकर स्कूल नहीं जायेगा' [2]। उस सुनहले इन्तज़ार के बदले उत्पन्न अमानवीयता से जनता तिलमिला उठी । उस असह्य पीडाबोध को शब्दबद्ध करने के साथ उसके प्रति आक्रोश भी व्यक्त किया है । 'पटकथा' समग्र रूप से

---

1. संसद से सड़क तक धूमिल पृ.सं. 125 प्र. सं. 1972
2. पटकथा संसद से सड़क तक धूमिल पृ.सं. 110 प्र. सं. 1972

जनता की कविता है । अपराध की असली मुकाम पर इस कविता के द्वारा वे अंगुली रखना चाहते हैं । देश की इस अवस्था केलिए वे समाजार्थिक व्यवस्था को ही उत्तरदायी मानते हैं ।

गरज यह कि अपराध
अपने यहाँ एक ऐसा सदाबहार फूल है
जो आत्मीयता की खाद पर
लाल-भड़क फूलता है ।[1]

व्यवस्था केलिये वे जूते, मकान, जंगल जैसे कई प्रतीकों का प्रयोग करते हैं फिर भी उन्हें ठोस जीवन संदर्भों से जोड़ना वे नहीं भूलते । झूठे जनतंत्र पर व्यंग्य करते वक्त भी, समग्र ढंग से बदली हुई व्यवस्था में भी कवि आस्था नहीं छोड़ता । वे साहसपूर्वक आगे बढने केलिये अपने में निहित आग को प्रज्वलित करने केलिये जनता को प्रोत्साहन देते हैं । जन संघर्ष का पाठ पटकथा का प्राणतत्व है । जनवादी दृष्टि की इतना प्रखरता प्रखर दस्तावेज़ पूर्ववर्ती कविताओं में नहीं मिलता ।

यद्यपि सही है कि मैं
कोई ठंडा आदमी नहीं हूँ
मुझमें भी आग है
मगर वह
भभकर बाहर नहीं आती
क्योंकि उसके चारों तरफ चक्कर काटता हुआ
एक पूँजीवादी दिमाग है ।[2]

गरीबी का चित्र धूमिल की कविताओं का केन्द्रबिन्दु हैं । भूखा आदमी देशप्रेम के नाम

---

1. पटकथा संसद से सड़क तक धूमिल पृ.सं. 119 प्र. सं. 1972
2. पटकथा संसद से सड़क तक धूमिल पृ.सं. 126 प्र. सं. 1972

पर रो नहीं सकता भूखा रहकर हो सही भूख के नाम पर रोने का उसे अधिकार नहीं । इसलिए अपनी सुरक्षा हेतु वह देशप्रेम के नाम पर रोता सबसे बड़ा यथार्थ गरीबी ही है । देशप्रेम मेरेलिए क्या है ? उसकी परिभाषा एक बीमार आदमी के द्वारा कवि देता है । उस वक्तव्य में सर्वहारा वर्ग की कारुणिक ध्वनि गुंफित है । वह बीमार आदमी देशप्रेम के वास्ते अभी तक नहीं रोया है । मगर वयस्क होते होते वह एक नयी सीख लेने केलिये मजबूर हो गया है

मेरे मुख पर झुरियाँ बढ जाती थीं
किन्तु जो कभी नहीं किया-
वही मैंने अब सीखा
रोना और भूख केलिये
निरा पागलपन है
देशप्रेम मेरेलिए-
अपनी सुरक्षा का
सर्वोत्तम साधन है ।[1]

यहाँ प्रयुक्त "मैं" शब्द सर्वहारा वर्ग के दर्द का प्रतीक है । गरीबी और सत्ताधारी वर्ग का एक मिलाजुला चित्र उनकी 'रोटी और संसद' में उभरा है । उसमें वे रोटी बेलने, खाने और उससे खेलनेवाले की सूचना देकर अन्त में उस तीसरे आदमी के सामने प्रश्नचिह्न लगाते हैं । वस्तुतः धूमिल ऐसे कवि हैं जिन्होंने कविता को जनाकांक्षा से जोड़ा । अतः कहा जा सकता है कि धूमिल जनवादी कविता के शलाखा पुरुष है ।

---

1 देशप्रेम मेरेलिए कल सुनना मुझे धूमिल पृ.सं. 14 प्र. सं. 1977

आलोकधन्वा की कविताओं में सशक्त क्रान्ति का स्वर गूँजता । आलोकधन्वा जो हो रहा है के कवि हैं । जीवन का शिनाख्त रखनवाले आलोकधन्वा अपनी अपूर्व काव्यदृष्टि से अन्याय के प्रतिरोध में खडे हो जाते हैं । उनकी"जनता का आदमी""गोली दागो पोस्टर"जैसी कवितायें वामपंथी साँस्कृतिक आन्दोलन से गहरी जुड़ी हैं । ये दोनों कवितायें उनकी जनवादी दृष्टि को खूब अख्तियार करती हैं । नक्सलबाड़ी आन्दोलन के प्रारंभिक दौर में लिखी गयी इन कविताओं में वस्तुस्थिति की पकड़ जीवंत है । 'जनता का आदमी' की पृष्ठभूमि 1972 के आसपास का नक्सलबाड़ी आन्दोलन है जिसमें वे सामन्ती अत्याचारा के विरुद्ध सशक्त क्रान्ति करते हैं । समकालीन कविता के कई कवि इस वामपन्थी आन्दोलन से गहरे जुड़े हैं । इस आन्दोलन से जुड़ने के साथ साथ यह कविता एक नयी भूमिका भी तलाशती है । प्रस्तुत कविता में जलते हुए गाँव, जली औरत और उनके बीच से निकलती नुकीली चीखें अभिव्यक्त हैं । आलोकधन्वा की कविता सबसे पहले अमानवीय स्थितयों के प्रतिरोध में खड़ी होती है । कवि ने कई क्षेत्रों में होनेवाले अन्याय के विरुद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त की है । सबसे पहले वे पुलीस और सत्ता के अत्याचार के विरुद्ध खुले तौर पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं । पूँजिपति, शासक, ज़मीन्दार, अख़बार, प्रकाशक, साहित्यकार सभी के प्रति उन्होंने आक्रोश व्यक्त किया है। शोषण ने आदमी को आदमी न रहने देकर पेट या भूख का पर्याय बना दिया है । सरकार और पूँजिपतियों से जुड़े तमाम कवियों के प्रति भी उनके मन में खूब वितृष्णा है । साधारण जनता के पक्षधर कवि की काव्य संवेदना में किसान और मौजूदा जीवन की संघर्षशीलता और उससे जूझने का अपूर्व साहस वर्तमान है । बिहार के आर्थिक असमानता, सामाजिक गौरबराबरी, ज़मीन्दारी आतंक और पुलीस अत्याचार के वे द्रष्टा नहीं बल्कि भोक्ता हैं । 'जनता का आदमी' कविता महज़ उनकी क्रान्तिकारी चेतना को व्यक्त नहीं करती बल्कि आतिमानवीय और संवेदनशील दृष्टि को भी खूब प्रकट करती है । यह कविता

क्रान्ति का आह्वान देने के साथ साथ बिहार के किसानों और मज़दूरों की ज़रूरतों को भी व्यक्त करती है ।" खासतौर से कविता से क्रान्ति करने के लिये उतारू जनवादियों के लिये आलोक रामबाण की तरह प्रयोग किए जाते रहे हैं । इस प्रयोग में 'गोली दागो पोस्टर' और 'जनता का आदमी' जैसी कवितायें सबसे ज्यादा आजमायी गई।"[1] दुनिया को बदलने का अपूर्व साहस वे रखते हैं । वे कहते हैं कि अब मामूली आदमी अपनी हैसियत समझने लगा है । बीज, पानी और ज़मीन के सही रिश्तों को वह महसूस करने और पहचानने लगा है । जीवन की भावी संभावनाओं से वह अवगत होने लगा है । मृत से नहीं जीवित शत्रुओं से लड़ने को वह समर्थ हो गया है । मनुष्य ने अपनी ताकत को पहचानना शुरु किया है ।

जिसे आप मामूली आदमी कहते हैं,
क्योंकि वह किसी भी देश के झंडे से बड़ा है ।
इस बात को वह महसूस करने लगा है,
महसूस करने लगा है वह
अपनी पीठ पर लिखे गये सैकडों उपन्यासों,
अपने हाथों से खोदी गयी नहरों और सड़कों को ।[2]

तत्कालीन व्यवस्था, परिस्थिति, युवा वर्ग की असंगठित चेतना आदि के विरुद्ध कवि की तीव्र प्रतिक्रिया 'गोली दागो पोस्टर' में खूब मुखरित है । उसमें मनुष्य का दर्द है, परिस्थितियों पर व्यंग्य भी । भूमि-संघर्ष से जुड़ी यह कविता कवियों और सर्वहारा वर्ग को मिलाती है । कवि ने लिखा–

यह कविता नहीं है
यह गोली दागने की समझ है
जो तमाम कलम चलानेवालों को
तमाम हल चलानेवालों से मिला रही है ।[3]

---

1. दुनिया को बदलने का साहस अरविंद त्रिपाठी पृ.सं. 237 पल प्रतिपल मार्च-जून 1999
2. जनता का आदमी - दुनिया रोज़ बनती है आलोक धन्वा पृ.सं. 36 प्र. सं.1998
3. गोली दागो पोस्टर - दुनिया रोज़ बनती है आलोक धन्वा पृ.सं. 29 प्र. सं. 1998

कुमार विकल अपनी धरती को कविता के बाहर भी बचाने को विकल रहे । ये अकेले कवि थे जिन्होंने अपनी भूमिका में कविता और उससे बाहर कोई फ़र्क नहीं किया ।[1]" सामूहिक वर्ग चेतना से जुड़कर ही उन्होंने कवितायें लिखी हैं। उनकी कविता में वैयक्तिक प्रतिक्रिया सामाजिक संघर्ष में बदल जाती है । समकालीन यथार्थ को पहचानकर उसके प्रति वे सशक्त ढंग से प्रतिक्रियान्वित होते हैं । समाजार्थिक लड़ाई को वे खूब शक्तिशाली मानते हैं । अकेले आदमी की लड़ाई थकानेवाली है । अकेला आदमी एकतंत्र के खिलाफ लड़ता है तो वह बेकार है । वह डर का शिकार बनता है । असुरक्षा की भावना से पीड़ित आदमी सामने एक दृढ़-बाँध चाहता है । मगर इस व्यस्त ज़िन्दगी में आदमी महज खामोशी की चीख चीख सकता है। उसे स्वयं अपना रक्षक बनना पड़ता है । असुरक्षित हज़ार जुड़कर लडाई में कूद पड़े तो सुरक्षा बोध होगा । जनता एक अदम्य शक्ति है। उन्होंने अपने निजी अनुभव को व्यापक सामाजिक संदर्भ दिया है ।

जनता एक बहुमुखी तेज़ हथियार है
जो अकेली लड़ाईयों को आपस में जोड़ता है
दुश्मन के व्यूहचक्रों को तोड़ता है ।
जनता एक आग है [2]

समकालीन कविता समग्र परिवर्तन चाहती है । उस समग्रता में अनुभव की व्यापकता और गहराई निहित हैं । वेणुगोपाल क्रान्ति के पक्षधर हैं। सतहीपन को तोड़कर बातों का विश्लेषण उन्होंने खूब गहराई से किया है । अपने समय से बाहर झाँकने की कोशिश उन्होंने कविताओं में की है । वे जीवन में और कविता में भी क्रान्ति चाहते हैं । इसलिए सिर्फ नारे नहीं लगाते बल्कि कविताओं के ज़रिये सर्वहारा वर्ग को भिड़ने का साहस और ताकत देना चाहते हैं । सामाजिक, साँस्कृतिक और राजनीतिक तनावों को झेलकर उन्हीं में से एक बनकर

---

1. एक फकीर शायर को याद करते हुए - लीलाधर मंडलोई - पृ.सं. 13 साक्षात्कार मार्च 1997
2. मिथक एक छोटी सी लडाई संपूर्ण कवितायें - कुमार विकल पृ.सं. 38 प्र. सं. 2001

उन्होंने तत्कालीन कविता के तेवर को एकदम बदल दिया है । सर्वहारा वर्ग कर्मनिरत हाथ होता है । कवि लिखता है

वे हाथ जो
पत्थर होते हैं
मोम होते हैं,
आग होते हैं,
पानी होते हैं और
सबसे बडी बात तो यह है
कि वे हाथ होते हैं एकदम हाथ [1]

वेणुगोपाल की कवितायें मध्यवर्गीय मनस्थिति से सर्वहारा वर्ग की मनस्थिति की ओर बढती हुई कवितायें हैं । उस सफर में अनुभूत आत्मसंघर्ष की शिनाख्त उनकी कविता को पृथक पहचान देती है । उनके काव्य संग्रहों से तब की हिन्दी कविता की विकास यात्रा का परिचय मिलता है । उनकी कवितायें आकार में छोटी हैं किन्तु वे विचारात्मक गहन तहों को छूती हैं । वे अपनी कविताओं के द्वारा तत्कालीन विड़म्बना का उद्घोष ही नहीं करते बल्कि समग्र परिवर्तन की आशा भी संजोते हैं। स्वयं को और समग्र मानवजाति को त्रासदी से मुक्त करने की छटपटाहट उनकी हर कविता में निहित है ।

उदयप्रकाश कविता को यथार्थ के मूल उत्स से पकड़ना चाहते हैं ताकि एक गहरा अनुभव खंड़ उनकी कविताओं में उभर सके । चेतना पर जमती समय की धूल को हटाकर उसके अन्दर झाँकने का उपक्रम उनकी कविताओं को नया अन्दाज़ देता है । धूमिल और वेणुगोपाल का सा हमलावर अंदाज़ उदय प्रकाश की कविताओं में भी खूब मिलता है । इस मुखरता के होते हुए भी

---

1 वे हाथ होते हैं -हवायें चुप नहीं रहती वेणुगोपाल पृ.सं. 80-81 प्र. सं. 1980

उदय प्रकाश की कविताओं में एक खुलापन और ताज़गी है । उनकी कवितायें पिछले दिनों लिखी गई उन तमाम कविताओं से भिन्न है जिसमें फूल, चिड़िया, बच्चा आदि का रूढ़ि की तरह दुहराया गया है । ये कवितायें जन और ज़मीन से जुड़ी कवितायें हैं जिनके केन्द्र में श्रमशक्ति है । उदय प्रकाश की कविता में वैयक्तिक अनुभूतियाँ सामाजिक धरातल पाती हैं । रोज़मर्रा की ज़िन्दगी और संघर्षरत जन से वे एक गहरा रिश्ता कायम रखते हैं इसलिए उनकी कविता एक ठोस आधार प्राप्त करती है।

'श्रम' उनकी कविता का एक मुख्य विषय है । निराला की 'तोड़ती पत्थर' कविता से मिलती एक खास संवेदना उनके 'इमारत' में भी मिलती है । नित कर्मरत तन और मन लेकर खड़ी युवती अट्टालिकाओं और प्रासादों की सुरक्षा से वंचित और इतिहास से बेखबर है । मगर उन प्रासादों को खड़ा करने के पीछे उसका हाथ है । उसी तरह हमारे इतिहास से बेखबर नौकर और कारीगर ही उनकी कविताओं के केन्द्र में उपस्थित हैं । श्रमशक्ति के महत्व और श्रमजीवियों की विशिष्ट भूमिका की ओर वे अपनी कविता में संकेत करते हैं । कारीगर की खाँसी से इमारत के हिलने का सा अंदाज कवि लगाता है । इंजनीयर और मकान मालिक सुरक्षा तले कारीगरों के श्रम से, उनकी असहायता से बेखबर हैं । कवि की शान्त मुन्द्रा में प्रतिरोध का स्वर मुखरित है ।

> नहीं जानता इंजीनियर
> या जानता है
> कि इमारत हिल रही है
> जो ज़ोर से
> क्योंकि तीन सौ मील दूर
> गाँव में अपनी
> झिलंगी खंटिया पर

पड़ा हुआ कारीगर

खांस रहा है ज़ोर ज़ोर से[1]

सामाजिक संलग्नता और साधारण जन की आशाओं और आँकाक्षाओं से जुड़ने की ललक उदय प्रकाश की कविताओं को एक अलग पहचान देती है । वे अपनी कविताओं में जीवन्त मानवीय संदर्भों को पकड़ने की कोशिश करते हैं ।"उनकी कविता एक आत्मकेन्द्रित होती हुई दुनिया के खिलाफ एक रचनात्मक मोर्चा बाँधती है ।[2]" "मदारी का खेल" में मदारी अपने साथी को भालू बनाकर अपने अधीन में रखता है । उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है । मदारी भालू को पालने का स्वाँग रचता है । असल में मदारी भालू को नहीं भालू मदारी को पाल रहा था । एक दिन उस भालू को मदारी ने खूब पीटा । पीट खाकर झूठमूठ के भालू को स्वयं भालू बनने का सा अनुभव होने लगा। मदारी ने आदमी को भालू बनने को मज़बूर किया । भालू का स्वाँग रचते-रचते वह न भालू रह गया, न आदमी । वह एक जीवित नपुंसक बन गया । यह शोषण का एक तरीका है । कविता के अन्त में कवि लिखता है कि भालू को स्वयं बदला हुआ सा लगा। वह खुलकर मदारी की ओर बढने लगा । शोषण के विरुद्ध प्रतिक्रियान्वित होने का साहस साधारण आदमी आर्जित करने लगा है । मनुष्य विरोधी शक्तियों का प्रतिरोध करने में वह कामयाब हुआ है ।

तो झूठ-मूठ के भालू ने देखा
कि उसके नाखून सचमुच के भालू की तरह
बढ गये हैं, रोये हैं समूचे शरीर में,
दाँत हैं पैने और नुकीले
और गले में से
हिंसक गुर्राहट निकल रही है ।[3]

---

1. इमारत सुनो कारीगर उदय प्रकाश -पृ.सं. 19 प्र. सं. 2001
2. साठोत्तरी हिन्दी कविता परिवर्तित दिशायें - विजयकुमार पृ.सं. 12 प्र. सं. 1986
3. मदारी का खेल अबूतर कबूतर उदयप्रकाश -पृ.सं. 59 प्र. सं. 1984

व्यवस्था विरोधी कई कविताएं उदयप्रकाश ने लिखी है । उनकी कई कविताएं राजनीतिक चेतना से संपृक्त हैं । व्यवस्था के अमानुषिक पक्षों को अभिव्यक्त करते वक्त उदय प्रकाश के समकालीन कवि की पहचान गहराने लगती है । राज्यसत्ता की सच्चाई पर कवि ने यों लिखा है–

राज्यसत्ता अस्सी प्रतिशत लोगों की आँख में
बूट और बारूद की सत्ता है
पाँच प्रतिशत लोगों के हाथ में
मनमाना राज्य
और बाकी हम जैसों के दिमाग में
राज्यसत्ता ।[1]

'तानाशाह की खोज' में सत्ताधारी मनस्थिति की अभिव्यक्ति हुई है । उस मनस्थिति के प्रतिरोध में कवि इस कविता में खड़ा होता है । अब तानाशाह को पहचानना मुश्किल है । क्योंकि विनोबाभावे और संत तुकराम का भेष रचकर निशस्त्रीकरण और शान्ति स्थापना का बहाना करके घूमते इन्हें शायद शान्ति का नोबल पुरस्कार भी प्राप्त हुआ होगा। वह पुरस्कार हासिल करने केलिये उसने कितनों को कुचल दिया होगा । मगर सब चुपचाप उनकी बहस अजमाते रहे । जनतंत्र के नाम पर मानव-जीवन के विकास के बदले स्वेच्छाचारी वृत्ति सघन और सशक्त होने लगी । उस तानाशाह की संवेदनशीलता को सुरक्षा चाहनेवाला मध्यवर्ग सराहता रहा । क्योंकि उनके प्रति प्रतिक्रियान्वित होकर खतरा मोल लेना उसका काम नहीं ।

विज्ञान कक्षा में एक छोटी सी लड़की द्वारा पूछा जानेवाला सवाल सारे विश्व के सामने असमानता के प्रतिक्रिया स्वरूप ज्ञानेन्द्रपति द्वारा पूछा गया सवाल है । इन पंक्तियों से गुज़रते वक्त लगता है कि आदमी होकर भी पशु सा गया बीता जीवन जीने को अभिशप्त मनुष्य के

---

1. राज्यसत्ता अबूतर कबूतर उदयप्रकाश -पृ.सं. 65 प्र. सं. 1984

स्वत्व और अधिकारों से वंचित आम आदमी ही उनकी कविताओं का केन्द्रबिन्दु है ।

सारे आदमी जब एक से ही आदमी हैं
जल पर और थल पर
एक साथ चलकर ही बने हैं इतने आदमी
तो एक आदमी अमीर, एक आदमी गरीब क्यों है ?
एक आदमी तो आदमी है
दूसरा जैसे आदमी ही नहीं है ।[1]

ज्ञानेन्द्रपति ने जीवन के बहुस्तरीय पक्षों से विभिन्न विषय चुनकर प्रौढ गंभीर ढंग से अपने विचारों का बखान कविता में किया है । वे अकाल में ही बूढे बनने को अभिशप्त नौजवानों के प्रति सहानुभूति ही प्रकट नहीं करते बल्कि उन परिस्थितियों पर उबल पडते हैं । श्रमजीवि परिस्थितियों की जबरदस्ती से असहाय और अभिशप्त पड़ा रहता है । मगर कभी कभी यह जबरदस्ती ही उसे पुनः सर्वशक्ति से जागने की प्रेरणा देती है। 'अपना बधवा' क्रान्तिकथा है । अभाव में मरी पशु की सी हालत में बफादार बधवा अपने परिवार के बचाव केलिये एक रुपया माँगने मुखिया के पास गया । बदले में उसे सिर्फ गालियाँ ही मिली । किन्तु उसमें न पराजय भाव उमडा न बेचारगी का रंग उसके चेहरे पर एक खूँखार चमक उभरी । वह खूँखार चमक उनका व्यवस्था विरोध है ।

समकालीन कविता की सामाजिकता सतही नहीं है । इसलिए शोषण तंत्र के बहुरंगी चित्र को वह सदैव प्रस्तुत करती रहती है ।

---

1 शब्द लिखने केलिए ही यह कागज़ बना है ज्ञानेन्द्रपति प्र. सं. 1980

सामान्य जनता का आशंकाकुल जीवन

समकालीन कविता के केन्द्र में जन-निबड़ता है तो स्वाभाविक रूप से जनता के प्रति उसकी प्रतिक्रियाएँ शब्दबद्ध भी होती हैं । उनमें से प्रमुख है उसी जनता केलिए आशंकित होना । इसमें कविता दृष्टि भी है और कवि कर्म की भी।

ज्ञानेन्द्रपति की दृष्टि यथार्थ के दृश्यमान अंशों के परे उसकी तहों में प्रवेश करती है । अपनी अपूर्व कवि-प्रतिभा से ज्ञानेन्द्रपति ने समय की सच्चाई से साक्षात्कार किया । मानव मौजूदगी और वर्तमान मनुष्य विरोधी शक्तियों के विरुद्ध प्रतिक्रिया की गूँजें उनकी कविताओं को एक स्वायत्त पहचान देती हैं । ज्ञानेन्द्रपति केलिये कविता कवि की कथनी नहीं, करनी है । "इस सदी की कालांकित और कालजयी सिद्ध होनेवाली कविता लिख रहे ज्ञानेन्द्रपति वस्तुतः निराला और मुक्तिबोध की सजग कवि चेतना के प्रतिनिधिक कवि के रूप में उभरे हैं ।[1]" गंगातट में कवि ने मोक्ष नगरी काशी का चित्र नहीं आधुनिक बनारस का चित्र खींचा है जहाँ अभाव, गरीबी, अशिक्षा और सांप्रदायिकता के कटघरे में बन्धे आम आदमी ही नहीं धार्मिक शोषण के तले अनुष्ठानों में फंसी अभिशप्त बलात्कृत विधवायें कराहती हैं । यहाँ के मणिकर्णिका, दशाश्वमेध घाटों पर जलते शव से बढकर वहाँ जीविका की तलाश में घूमते लोगों की जठराविन जल रही है। आध्यात्म की महानगरी के अन्दर छायी पैशाचिक भयावह अवस्था को उनकी तूलिका ने खूब उभारा है । उनकी कवितायें बनारस के यथार्थ की कीचड में आपादमस्तक धंसे एक कवि के अनुभव जगत की उपज हैं । यथार्थ की सूक्ष्म तहों में घुसकर ही वे सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति करते हैं । 'खजूही कुतिया में सबसे उपेक्षित कुतिया का चित्र खींचते हुए साधारण से साधारण आदमी के उपेक्षित और वंचित जीवन की ओर उन्होंने संकेत किया है । अरविंद त्रिपाठी के शब्दों में "कवि ने बनारस की गलियों में उपेक्षित

---

1 ज्ञानेन्द्रपति का काव्य संग्रह 'गंगातट' के फ्लैप से -प्र. सं. 2000

डोलनेवाली खजुही कुतिया के पहली बार माँ बनने की घटना को मातृत्व की आदिम इच्छा जताकर एक उपेक्षित जीवन के कोने का भास्वर किया है । इस वंचित जीवन का जिस सौन्दर्यमयी आँख से कवि ने चित्रित करने की कोशिश की है वह दलित लेखन के उठे शोर में दलित सौन्दर्य शास्त्र को समझने का जीवंत साक्ष्य हैं ।[1] उस कुत्ते के उल्लास में सामान्य मानव का उल्लास झलकता है ।

निहोरे भरी आँखों से ताकती है
एकटक निहारती है
वह कुतिया-मानवी नहीं, लेकिन मानवीय-
एक माँ-वक्ष आँचल तरह फैला
उन आँखों में
मेरे आगे ।[2]

उस माँ की रचनाशीलता के आगे कवि को अपनी रचनाशीलता बिलकुल थोथी लगती है । श्रम के महत्व को ज्ञानेद्रपति ने भी अपनी कविताओं में खूब उजागर किया है । कवि की पैनी दृष्टि बनारस के गंगातट पर निरन्तर कर्मरत मल्लाहों के संघर्षशील ज़िन्दगी के रेशे रेशे को अलग करती है । "उस पार से आ रही है नाव" और भैंससर में उनकी वह संवेदना सशक्त है । श्रमरत बीरू मल्लाह के चित्रण के पीछे उनकी संघर्षरत मानसिकता वर्तमान है । मल्लाहों के जीवन संघर्ष के वे खुद अनुभवी हैं। जीविका केलिये निरन्तर नाव चलाते अपराजित मन से खड़े बड़कों में लड़का और लड़कों में बड़का मल्लाह कवि केलिये समकालीन मनुष्य है । सिर्फ यह प्रयोग कवि की उस संवेदना को खूब इजहार करता है ।

---

1 गंगातट पर अरविंद त्रिपाठी पृ.सं. 287 वसुधा 49, जूलाई-सितंबर 2000

2. खजुही कुतिया - गंगातट ज्ञानेन्द्रपति पृ.सं. 103 प्र. सं. 2000

[illegible]

बड़का में लड़का, लड़कों में बड़का

कौन कहेगा, सातवीं बार सातवीं फेल

हो रहा सहज ही

आज के वक्त का चरित-प्रतिनिधि

इस पल

समकालीन मनुष्य की मति गति का प्रत्यक्ष रूप

उस पार की ओर मुँह किए इस पार आता ।[1]

भैंससर में यद्यपि पगुराती भैंस का उल्लेख है फिर भी एक दूसरे के आगे पीछे घरमुँही चलती हुई भैंस की कतार श्रमरत आम आदमी की कतार सी लगती है । इस आपाधापी की दुनिया में ही सही ये श्रमजीवि उम्मीद भरे आगे बढते हैं ।

पगुराती बैठी रहती है भैंसें
इस आपाधापीवाली दुनिया से परे
किसी और ही समय में
निश्चित
वह प्राचीन समय है ।
लेकिन वह सुदूर भविष्य का भी हो सकता है।[2]

बच्चे अब खामोश हैं क्योंकि उनके सपने, जिज्ञासायें, बचपन सब निर्दयता से कुचल दिये गये हैं । कुमार विकल ने बच्चों की नज़रिये से खौफनाक समय को आँकने का प्रयास किया है । अरक्षित वातावरण में पिता भी जोखिम उठाने को तैयार नहीं होता । मध्यवर्गीय

---

1. उस पार से आ रही है नाव   ज्ञानेन्द्रपति   पृ.सं. 18, प्र. सं. 2000
2. भैंससर - गंगातट-ज्ञानेन्द्रपति -पृ.सं. 105 -106 , प्र. सं. 2000

खोखले संसार में बच्चे समय की बर्बर अमानवीयता के शिकार बनते हैं । आज क बच्चे खौफ़नाक समय से गुज़रते हैं । उनके ख़तरनाक प्रश्नों के सामने माँ-बाप निरुत्तर हो जाते हैं । विचित्र माहौल से गुज़रते ये बच्चे खिलौनों और कहानियों की बात नहीं करते । जानना चाहते हैं कि कर्फ्यू के वक्त भी माँ-बाप इतने दुखी क्यों है? वे इतने हताश होकर बच्चों को पीटते क्यों है? जब उन्हें यह मालूम है कि पीटना मारना किसी सवाल का जवाब नहीं ।

वे पूछते हैं
पिता
कर्फ्यू कहाँ से आता है
कितनी अच्छी चीज़ है यह कर्फ्यू
हमें स्कूल नहीं जाना पडता
और तुम्हें काम पर [1]

कुमार विकल ने दु:खों से लड़कर कविता लिखी है । उनकी कविता में दुख है। कवि ने किरोसिन तेल केलिये लम्बी कतार में खड़ी जगीरो, अकेली बूढ़ी औरत, श्वास से पीड़ित पत्नी, पियक्कड़ पिता आदि के चित्र खींचे हैं ।

एक छोटी सी बात को लेकर
मैं बहुत रोया ।
रोने के बाद बहुत सोया
सोकर उठा तो बहुत सोचा
क्या हर आदमी रोता है?
मार्क्स, एंगलस, लेनिन भी रोये थे ।

---

1 खौफ़नाक समय के बच्चे निरुपमादत्त मैं बहुत उदास हूँ - संपूर्ण कवितायें - कुमार विकल -पृ.सं. 169 प्र. सं. 2000

हाँ ज़रूर रोये थे

लेकिन रोने के बाद कभी साथ थे ।

अगर वे इस तरह साथ रहते ।

तो दुनिया के करोड़ों लोग कभी जग न पाते ।[1]

कुमार विकल की मानवीय संवेदना के भीतर अपने गाँव की ओर, परम्परा की ओर पुनःलौटने की अदम्य लालसा है । राजपथ की चकाचौंक को छोड़कर बस्ती के पुराने घर के बन्द कमरों में पुनःदीपक जलाने को आदमी आतुर हैं । राजपथ की तिलस्मी दुनिया में व्यक्ति अपने को अरक्षित और अकेला पाता है । आतंक और आशंका के कारण सुरक्षा केलिये वह घर लौटना चाहता है । यह अभिलाषा उनके जीवन-प्रसंगों से गहरी जुड़ी है । उसकी वापसी में पूरे मुहल्ले के साथ पुनः राजपथ की ओर लौटने की चाह है। क्योंकि हर आदमी केलिये अपना वर्ग सुरक्षा-कवच है । कवि कहता है ।

हर आदमी का वर्ग उसकी सुरक्षा का घेरा है

मैं भी अपने घेरे में लौट जाऊँगा

और अब

जब कभी राजपथ पर आऊँगा

अकेला नही

पूरे मुहल्ले के साथ आऊँगा ।[2]

सामान्य या निम्नवर्गीय जीवन सदर्भों के चित्र अरुण कमल और राजेश जोशी में ज्यादा हैं । काव्य चेतना और संवेदना स्वरूप की दृष्टि से उनमें समानता है । जाने-पहचाने भारतीय परिवेश और उससे गहरे जुड़े विपन्न अंगों को ही इन कवियों ने अपनी कविता का विषय बनाया

---

1. फ़र्क़ रंग खतरे में हैं संपूर्ण कवितायें कुमार विकल -प्र. सं. 123 प्र. सं. 2000
2. वापसी एक छोटी सी लड़ाई-संपूर्ण विकल -पृ.सं. 43 प्र. सं. 2000

है । अरुण कमल का खाना परोसता लड़का, थाली में हरी मिर्च रखती माँ, गर्भवती भौजी, कुबड़ी बुढिया आदि में भारतीयता की खोज और उससे जुड़े हुए रचनात्मक संदर्भ की पहचान भी है जो समकालीन कविता की मुखमुद्रा बन गयी है। "सारा लोहा उन लोगों का अपनी केवल धार"[1] पंक्ति अरुणकमल की कविताओं और कवि-व्यक्तित्व को ही नहीं जीवन दृष्टि को भी भली भाँति व्यक्त करती हैं । सर्वहारा वर्ग के पास सिर्फ धार है । उस संगठित शक्ति से वह समग्र परिवर्तन केलिये संघर्षरत है। कवि की काव्यदृष्टि जीवनानुभवों से जुड़कर उभरी है । कौर उठाते वक्त सामने थाली रखनेवाले लड़के का रुदन सुनकर कवि तिलमिला उठता है । वह छोटी सी कविता मन को कितनी गहरी छूती है ।

जैसे कौर उठाया
हाथ रुक गया
सामने किवाड़ से लगकर
रो रहा था वह लड़का
जिसने मेरे सामने
रखी थी थाली ।[2]

चरमराते मानव बिंब का एक मार्मिक मिसाल अरुण कमल की 'लौ' कविता प्रस्तुत करती है । दवा की शीशी को ढिबरी बनाती शीत में नंगे पाव चलती अभावग्रस्त औरत विपन्न भारतीय नारी का प्रतीक है । 'कुहासे में मढा उसका चेहरा' प्राकृतिक परिवेश से बढकर उसके मुख पर झलकती दीनता की स्पष्ट तस्वीर खींचता है । यह कवि की सबसे बारीक, बेहतरीन कविता है ।

रास्ता दिखाने
वह घर के बाहर आयी
दवा की खाली शीशी की ढिबरी

---

1. धार अपनी केवल धार अरुण कमल -पृ.सं. 78 तृ. सं. 1999
2. होटल अपनी केवल घार अरुण कमल -पृ.सं. 16 तृ सं. 1999

कलेज के पास लिये
पलक उठाय
वह शीत में आयी खाली पांव
कुहासे में मढ़ा उसका चेहरा
एक लौ में दमकता
डगमगाता ।[1]

'उलटा जमाना' 'खतरा' आदि कवितायें आज के ज़माने को सही परिभाषा देती हैं । कोई अगर हमारी सहायता करता है तो भी सोचना पड़ता है कि उसके पीछे लगा मकसद क्या है? लूट का माल हाथ में रखकर भी अपराधी निर्दोष बनता है । आज खूनी न होना अपराध है क्योंकि सबूत सब उसके खिलाफ हैं । आज की दुनिया निर्दोषों केलिए बड़ा खतरनाक है । वर्तमान० यवस्था के विरुद्ध संघर्षरत मनुष्य के जीवन का सबूत देखिए—

उनके खिलाफ़ कुछ भी सबूत नहीं
जो निर्दोष हैं वे ढ़ंग हैं हैरत से चुप है
शक हैं उन पर जो निर्दोष हैं क्योंकि वे चुप है ।[2]

राजेश जोशी की आशंका सामान्य जनता की निरीहता के कारण है । निरीह होना हमारे समाज में खतरा मोल लेना है ।

सबसे बड़ा अपराध है इस समय
निहत्थे और निरपराध होना
जो अपराधी नहीं होंगे
मारे जायेंगे ।[3]

---

1 लौ नये इलाके में अरुण कमल -पृ.सं. 34 तृ सं. 1996
2. सबूत सबूत अरुण कमल -पृ.सं. 65 तृ सं. 1989
3. मारे जायेंगे नेपथ्य में हँसी राजेश जोशी -पृ.सं. 35 प्र. सं. 1994

भारतीयता के कई चित्र राजेश जोशी में भी मिलते हैं । 'जन्म' विपन्न मानव-बिंबों को उभारती है । दिन-ब-दिन देश में कई अप्रत्याशित और दुखद घटनायें घटित होती रहती हैं । मनुष्य इस त्रासद अवस्था से गुज़रने का आदी हो गया है। काल की गतिशीलता से संबद्ध उनकी कवितायें गहरी मानवीय संवेदना से संपृक्त है । उनकी कवितायें तप्त दिल की अटूट व्यथा व्यक्त करती हैं । शोषित मानव बिंबों के कई चित्र उनकी कविताओं में बिखरे पड़े हैं । इनके दिल की धड़कन को निकट से समझकर सरल किन्तु प्रखर ढंग से उन्होंने उसे अभिव्यक्त किया है । 'जन्म' में बंजारन औरत के मन में छिपी छोटी छोटी खुशियों की सहज अभिव्यक्ति उन्होंने की है । उसके द्वारा हंडिया में पकाये दाल और और अखबार के टुकडे में बाँधे नमक में जीवन में बहुत कुछ हासिल करने का सा भाव निहित है । रास्ता उसके जीवन के हर कदम से जुड़ा है । उस गर्भवती बंजारन औरत ने एक छोटे से टाट की आड़ में लालटेन की मंदिम रोशनी में एक बच्चे को जन्म दिया है । प्रसूतिगृह में भी पीड़ा को न सह पाने में असमर्थ स्त्रीत्व को लज्जाती हुई उसने सड़क के किनारे टाट की आड़ में बच्चे को जन्म दिया है । कितनी निरीह मातायें और बच्चे इस अभिशाप को ढोते रहते हैं । फिरभी उन गलियों में बने ड़ेरों में वे खुश हैं । एक वर्ग के अथक परिश्रम से दूसरे खूब सुविधायें जुटाते हैं । फिर भी यह सर्वहारा वर्ग अपनी जगह अपराजेय भाव से खड़ा है । प्रस्तुत कविता में उस बंजारन औरत को कवि ने बहुत निकट से आँका है । कवि की आत्मा उसके साथ बहुत दूर चलती है ।

सड़क के किनारे, पान की गुमटियों के पीछे
एक छोटे से टाट की आड़ और लालटेन की मंदिम रोशनी में
बंजारन बहु ने जन्म दिया है अभी अभी
एक बच्चे को ![1]

---

1. जन्म नेपथ्य में हँसी राजेश जोशी - पृ.सं. 10 प्र. सं.1994

'इत्यादि' उस सर्वहारा वर्ग का चित्र है जो दुनिया को बनाने में संलग्न है । हर कार्य में 'इत्यादि' की उपस्थिति है, नारे लगाने में, मतदान करने में सरकार बनाने में, आन्दोलनों में शामिल होने में, गोली खाने में किन्तु उसका नाम सिर्फ सिरफिर कवियों की कविताओं में छपा है ।

> कुछ लोगों के नामों का उल्लेख किया गया था जिनके ओहदे थे
> बाकी सब इत्यादि थे ।
>
> इत्यादि हर जगह शामिल थे पर उनके नाम कहीं भी
> शामिल नहीं हो पाते थे ।
> इत्यादि बस कुछ सिरफिर कवियों की कविता में
> अक्सर दिख जाते थे ।[1]

आज की सबसे वड़ी त्रासदी आत्मीयता के गुम होने से बढकर आत्मीयता दिखाने की होड़ है । उस होड़ में अस्सी साल का बूढा अंदर ही रो पड़ता है । वह बचपन के दिन और बचनपन के गाँव की ओर लौटता चाहता है ताकि उसे वह आर्द्रता पुनःमिले । होड़ भरी आत्मीयता में वह ऊष्मा और तीव्रता नहीं है जो उसने वर्षो पहले पाई थी। 'नाना की साइकिल' 'नेलकट्टर' आदि में भारतीय परंपरा और पैतृक के टुटन की व्यथा है । चाहे भारतीय जिस स्थान तक पहूँच जाये पर भारतीय परंपरा का मोह उसके मन से पूर्णतया छूट नहीं जाता । हमारी हर आवाज़ में पुरखों की गूँज है। समकालीन हिन्दी कविता अपनी ज़मीन और अपनी जड़ों की कविता है । उसमें समकालीन मनुष्य की आशा आकाँक्षा, जय-पराजय, हताशा-निराशा आदि अपनी भाषिक अस्मिता के साथ मौजूद है । हिन्दी के उल्लेखनीय कवियों ने समय और समाज को लेकर अपनी निजी अनुभव दृष्टि विकसित की है । तत्कालीन

---

1 इत्यादि दो पंक्तियों के बीच राजेश जोशी पृ.सं. 13-14 प्र. सं. 2000

ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, बौद्धिक और साँस्कृतिक परिवेश से जूझकर ही उन्होंने यह दृष्टि रूपायित की है । समकालीन हिन्दी कविता के अर्थ और मूल्य महज भारतीय ही नहीं सावजनीन है । मगर उसका संवेदना-संसार और अनुभव-संसार आँचलिक भी है । भारतीयता में अपनी जडों की, अपनी बुनियाद की तलाश और पहचान है साथ ही विद्रोह और असहमति का भी स्वर बुलन्द है । "भारतीय समाज-व्यवस्था ने सहमति, विरोध और विद्रोह की परंपराओं को प्रश्रय देकर अपनी विसंगतियों को दूर करने के उल्लेखनीय प्रयास किये हैं और उनके माध्यम से अपनी निरन्तरता को बनाये रखा है "।[1] 'नेलकट्टर' में बरसों से नाखून काटते पूर्वजों से मिले नेलकट्टर के बखान में परंपरा की ओर पुनःलौटने की इच्छा है । आधुनिक जीवन की तेज़ रफ्तार में मनुष्य बहुत आगे बढ़ चुका है । मगर परंपरा की जड़ें काफी गहरी है जिसे वह तोड़ नहीं पाता । भारतीयता का अटूट संदर्भ राजेश जोशी की कविताओं में खूब मिलता है ।

हमारी आवाज़ में बची रहती है
हमारे पुरखों की गूँज ![2]

परंपरा की ओर लौटते वक्त भी तत्कालीन समय से न जुड पाने की असमर्थता उनकी कविता में है । समय की गतिशीलता के साथ कदम न रख सकने की व्यथा इन पंक्तियों में मुखरित है ।

हमारे समय के दरवाज़े पर
हमारी कोई दस्तक नहीं थी ।[3]

मंगलेश की कविताओं में महानगरीय ज़िन्दगी की संवेदना खूब मिलती है । एक जून रोटी कोलिए महानगरों में दौड़ लगाते वक्त आदमी की जड़ें बिखर जाती है। न वह गाँवों और

---

1 परम्परा, इतिहास बोध और संस्कृति - श्यामचरणदुबे पृ.सं: 32 प्र. सं. 1994
2. नाना की साइकिल नेपथ्य में हँसी - राजेश जोशी पृ.सं. 62 प्र. सं. 1994
3. हमारी कोई दस्तक नहीं राजेश जोशी पृ.सं. 30 वागर्थ - अक्तूबर 1997

कस्बा से अपनी जड़ छोड़ सकता है न नगर की तेज़ रफ्तार के बीच वह अपने को अजमा सकता है । उन जटिलताओं, यान्त्रिकताओं, व्यर्थताबोध और एकाकीपन के बीच वह तितर-वितर हो जाता है । भूख और संघर्ष की यातना को वह स्वप्न, इच्छा, ऊब और स्मृतियों से जोड़ेता है । समय के यथार्थ से टकराने की वजह से एक कारुणिक दृश्य की उपस्थिति के साथ साथ एक प्रतिरोधात्मक दृष्टि भी है । घर मानवीय संवेदना का प्रथम बिन्दु है । छूटी हुई दुनिया को, पुरानी स्मृतियों को पुनःपाने की इच्छा मंगलेश में भी है । उस छूट की बेचैनी उनकी कविता में सशक्त मात्रा में अभिव्यक्त हुई है । घर के भीतर रखे दादा के काठ के संदूक में चीथड़ों और स्वप्नों का अंधकार है । अधूरे स्वप्नों को दादा ने पिता को दिया जिसे उसने आगामी पीढ़ी केलिए संभाल कर रखा है । समकालीन संदर्भ की एक जीवन्त सच्चाई यह है कि घर की नींव हिल चुकी है । संबन्धों की घनिष्ठता और ऊष्मा आज मिट चुकी है । उस मिटती नीव पर पुनःघर बसाने के दुष्कर काम में आज का आदमी लगा हुआ है । अधूरी इच्छाओं और आकाँक्षाओं से जुड़ी आगमी पीढ़ी की ओर कवि ने इशारा किया है । इस कविता में प्रयुक्त 'अन्धकार' शब्द समकालीन मनुष्य के आशंकाकुल मनस्थिति को रेखाँकित करता है ।

इसमें काठ का एक संदूक है
जिसके भीतर चीथड़ों और स्वप्नों का
एक मिला-जुला अंधकार है
इसे पिता ने दादा से प्राप्त किया था
और दादा ने खुद कमाकर
घर जब टूटेगा बक्स तभी उठेगा ।[1]

निराशा और संत्रास में भी बेटे के लौटने की उम्मीद में बैठे बाप समय के बीतने के साथ साथ बूढा ही नहीं होता बल्कि शारीरिक और मानसिक रूप से टूटता भी है । विदेश गये

---

1. घर पहाड पर लालटेन-मंगलेश डबराल -पृ.सं. 10 द्वि. सं. 1997

बेटे की चिट्ठी की प्रतीक्षा में वह निरन्तर डाकघर जाता है । क्योंकि बेटे की चिट्ठी से ही उस बाप की सारी आशा-आकाँक्षायें जुड़ी हैं । इन्तज़ार व्यर्थ होता है तो वह मानसिक और शारीरिक रूप से टूटता है जिसकी छाया पूरे घर पर पड़ती है । पिता के टूटने से अनन्त टूटन की प्रक्रिया से पूरा घर गुज़रता है ।

दिन-भर लकड़ी ढ़ोकर माँ आग जलाती है
पिता डाकखाने में चिट्ठी का इन्तज़ार करके
लौटते हैं हाथ पाँव में
दर्द की शिकायत के साथ
रात में जब घर काँपता है
पिता सोचते हैं जब मैं नहीं हूँगा
क्या होगा इस घर का [1]

मध्यवर्गीय और निम्न मध्यवर्गीय जीवनानुभव और जीवन-संदर्भ का सघन रूप उनकी कविताओं में मिलता है । यद्यपि कवि मध्यवर्गीय मनस्थिति का ही उल्लेखन करते हैं फिर भी वे उच्च पूँजिवादी मनस्थिति पर भी प्रहार करते हैं ।

हमने नहीं सोचा था मनुष्यता का भी एक गर्त है
हमने नहीं सोचा था अत्याचारी भी कहेगा ।
मेरा चेहरा मिलता है आदमी से
हम नहीं थे इस अपराध इस पागलपन में शामिल
सोचते हुए हम देखते हैं
समाज जा रहा है तेज़ी से रसातल । [2]

---

1. हम जो देखते हैं मंगलेश डबराल -पृ.सं. 20 प्रथम संस्करण
2. दिनचर्या घर का रास्ता मंगलेश डबराल -पृ.सं. 62 प्र. सं.1983

जहाँ कविता में आशंकाएँ व्यक्त होती हैं । वहाँ कविता में जनवादी दृष्टि पुनः सशक्त होती है कविता की सामाजिकता के कारण ही उसमें जन संबन्धी आशंकाएं व्यक्त होती हैं ।

मानवीय आस्था

आस्था मनुष्य को संघर्षरत जीवन से जूझने का साहस देती है । वह आशंकाकुल जीवन में एकाध जीवों को अपराजेय भाव से जीने की शक्ति प्रदान करती है । द्विवेदीयुग में मानवीय आस्था को उदात्तीकृत किया गया था । नयी कविता में वह समन्वयात्मकता में परिणत हुई । समकालीन कविता ने मानीवय आस्था को आत्मा के रूप में स्वीकारा है । कई समकालीन कवियों ने इस आस्था को मुखरित करने का कार्य किया । आस्था में विद्रोह का भाव है । वह विद्रोह आशा और आत्मविश्वास का मिलाजुला रूप है । समकालीन कवि समग्र परिवर्तत चाहता है । आशंकाकुल जीवन के बीच आस्था एक प्रखर भाव-संपदा है । वेणुगोपाल इसी आस्था के भी कवि है ।

वेणुगोपाल की काव्ययात्रा असल में जीवन यात्रा है । उनकी कवितायें पृथ्वी पर मनुष्य के होने का परिचय देती हैं । मानवीय चेतना से संबद्ध कवि होने की वजह से उनकी कविताओं में जनवादी रूप ही अधिक उभरा है ।

हवायें
कभी चुप नहीं रहती । आगामी सुबह
के रूप बखान में मुष्तिला
वे
इस वक्त भी सक्रिय हैं । चंद
अटूट उम्मीदों में ।[1]

ये अटूट उम्मीद ही कविता में आस्था के रूप में व्याप्ति होती है ।

---

2. हवायें चुप नहीं रहती वेणुगोपाल पृ.सं. 21 प्र. सं. 1980

'सफ़ेद रात' पतंग आदि कविताये आलोक धन्वा के परिवर्तित कालबोध और दिशाबोध के मसलन हैं । 'पतंग' में बच्चों की नाजुक दुनिया का बड़ी बारीकी से उन्होंने खोला है । 'पतंग' उल्लास और बच्चों के मन की तेज़ धड़कनों की कविता है । इस नाजुक दुनिया को बचाने की सशक्त चेतावनी प्रस्तुत कविता के द्वारा वे देते हैं । उन्हें पूरा भरोसा है कि बच्चों और चिड़ियों को मारनेवालों को और उनके बंदूकों को भूमंडल से निकालनेवाला एक दिन आयेगा ।

चिड़ियाँ बहुत दिनों तक जीवित रह सकती हैं
अगर आप उन्हें मारना बंद कर दें
बच्चे बहुत दिनों तक जीवित रह सकते हैं
अगर आप उन्हें मारना बंद कर दें

बच्चों को मारनेवाले आप लोग !
एक दिन पूरे संसार से बाहर निकाल दिये जायेंगे
बच्चों को मारनेवाले शासको !
सावधान
एक दिन आपको बर्फ में फेंक दिया जायेगा [1]

यह कविता सार्थक जीवन की तलाश करती है साथ ही समय के आतंक को भी स्पष्ट करती है । जनता अपनी हैसियत समझकर एक दिन आततायियों पर कूद पडेगी । यह भी कवि की आस्था है ।

---

1 पतंग दुनिया रोज़ बनती है आलोकधन्वा पृ.सं. 13 प्र. सं. 1998

मनुष्य की पीड़ा का एक चित्र बोधिसत्व की बहुचर्चित कविता 'पागलदास' में है । यह कविता उनके काव्य-बोध और काव्य-चेतना का सच्चा इश्तहार है । 'पागल दास' अयोध्या का पखावज वादक था जिसकी मृत्यु बाबरी मस्जिद ध्वंस से जुड़कर हुई थी । साँप्रदायिक दंगे का प्रत्यक्ष चित्र इसमें कवि ने खींच नहीं है। 'पागलदास' में ही एक दूसरा पागलदास है । एक सुरक्षा चाहनेवाला है और सबसे जुड़कर भी तटस्थ रहनेवाला मध्यवर्ग का प्रतीक है। दूसरा न्याय और सत्य की रक्षा चाहनेवाला, खतरा मोल लेनेवाला विपत्तियों का डटकर सामना करनेवाला आम आदमी । दूसरे पागलदास को व्यवस्था ने दबा लिया, मार डाला । कला की वृद्धि केलिए पहले पागलदास को वाद्य बजाने छोड़ दिया गया । सत्य और न्याय की रक्षा चाहनेवालों ने उनके मन का कत्ल कर दिया । असल में इस कविता का मन सार्वदेशिक और सार्वकालिक मन है । दूसरे को न बचा पाने के संताप में उसने पखावज बजाना छोड दिया । सब कहीं एक मायूसी, एक निर्ममता छा गयी । अगर कभी मज़बूर होकर बजाता है तो भी उसमें दिल की धड़कन ही मुखरित होती है ।

बहुत ज़ोर देने पर कभी बजाने बैठते थे तो
लगता था पखावज नहीं
अपनी छाती पीट रहे हैं ।[1]

इस कविता में मानवीय आस्था का अनन्द रूप ही देखने को मिलते हैं ।

समकालीन परिवेश में व्यक्ति को उसकी समग्रता में जानते की कोशिश कुमार अंबुज की कविताओं की कूवत है ।

इस समय एक आदमी सोच रहा है
विश्व विजय का स्वप्न

---

1. पागलदास - हम जो नदियों का संगम है बोधिसत्व पृ.सं. 14 प्र. सं. 2000

एक वैज्ञानिक बना रहा है
मीठी गुदगुदी गैस
एक कम्प्यूटर पहरेदार रक्षा कर रहा है
सारे अणुबमों की
एक क्रान्तिकारी छुपा रहा है खुद को
तानाशाह की निगाहों से
और ठीक इसी समय
लिखी जा रही है
एक कविता ![1]

कुमार अंबुज की कविताओं में मंगलेश डबराल की सी मानवीय संवेदना पाई जाती है । बाप के टूटन से अन्तहीन टूटन की प्रक्रिया से गुज़रने को अभिशप्त मंगलेश के एक परिवार की कथा से किवाड कविता मेल खाती है । कविता की दृष्टि से, समकालीन कविता पाठकों को आश्वस्त करती है । समकालीन मनुष्य अपनी सभ्यता और अस्मिता दोनों को बचाने के संघर्ष में रत है । वह परिवेश, घर, समाज, व्यवस्था सबसे चुनौतियों, का सामना करता है और अपनी सुरक्षा खुद बना लेता है । कुमार अंबुज की 'किवाड़' इस बात का इश्तहार है ।

काल के विकराल मुँह से छीन लेता है एक बच्चा
अपनी अमर हँसी
इस नश्वर संसार में
जीवन अमर हो रहा है लगातार
नश्वरवादियों के शवों पर अट्टहास करता हुआ [2]

---

1. रात आधी है - किवाड कुमार अंबुज पृ.सं. 74, द्वि. सं. 1996
2. इस नश्वर संसार में किवाड कुमार अंबुज पृ.सं. 34 द्वि. सं. 1996

जनवाद वस्तुतः कविता को स्वयंसिद्ध सहजता है । जनोन्मुखता के अभाव में कविता अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकती है । कविता जब अपनी जनान्मुखता से भरी रहती है तो वह पूर्ण होती है । समकालीन कविता की यही दृष्टि रही है । जनवादिता के विभिन्न रूप इसलिए समकालीन कविता में मिलते है कि वह अपने लक्ष्य की ओर सक्रिय रूप से उन्मुख होना चाहती है । उसका यही स्वत्व है । उसका धर्म भी यही है । उसका कर्म भी यही है ।

अध्याय - तीन

समकालीन कविता में
जीवन यथार्थ के अन्तर्विरोधी पक्षों की अभिव्यक्ति

समाजिक अन्तर्विरोध और साहित्य

ऐसा प्रतीत हो सकता है कि विकास के पथ पर भारतीय समाज अग्रसर हो रहा है एक सीमा तक यह सही भी है । कई सीढियाँ पारकर वह विकासशीलता का परिचय दे रह है । परन्तु यह विकास पूर्ण नहीं है । उसका भीतरी हिस्सा कई दृष्टियों से अपरिवर्तित है । ऐ में विकास के साथ-साथ कई प्रकार के अविकास भी होते रहते हैं । यह एक अन्तरविरोध स्थिति है । अपनी विकसित अवस्था में अन्तर्विरोधी तत्व अतिरिक्त ढंग से प्रबल होने लगते हैं इसका कारण यह है कि गतिशील दिशाओं की अपेक्षा गतिहीन अवस्थायें शीघ्र ही जड़ जम लेती हैं । यही विकास और अविकास के द्वन्द का प्रेरक कारण है। यह द्वन्द्व कई स्तरों प साहित्य में दर्ज होता है । साहित्य ने इस द्वन्द को सदैव विषय बनाया है । कविता ने इ बारीकी से पकड़ने और प्रस्तुत करने का कार्य किया है । यह कविता का लक्ष्य भी है ।

समकालीन कविता की सघन सामाजिक दृष्टि इन अन्तर्विरोधों के भिन्न-भिन्न आयाम पर प्रश्नचिह्न लगाती है । पूर्ववर्ती कविता से भिन्न समकालीन कविता में यथार्थ की अभिव्यि गहन और गंभीर है । उसमें पूर्ववर्ती कविता की भाँति यथार्थ का सरलीकरण नहीं है । उसक सघन दृष्टि जीवन की विषमता के विविध पक्षों से संबन्धित है । समाज, राजनीति और संस्कृ संबन्धी जीवन सन्दर्भ समकालीन कविता का यथार्थ है । जीवन यथार्थ के पर्त-दर-प खोलते-खोलते समकालीन कविता मनुष्य के नज़दीक आ गयी है । मनुष्य के नज़दीक आ माने कविता का मानवीय संस्पर्श से युक्त होना है । यह स्थिति समकालीन कविता कवितानुभव में तब्दील होकर पुनः गहराती रहती है ।

प्रायः सामान्य जीवन में अन्तर्विरोध के कई सरल, कर्कश और विकराल रूप मिल हैं । उन अन्तर्विरोधों का सीधा संप्रेषण कविता में संभव नहीं है । इसलिए ये अन्तरविरोध क

प्रेरक तत्त्व बन जाते है । अतः कहा जा सकता है कि कविता के वस्तुपक्ष में यह प्रेरणा बलवती है । इसको समकालीन कविता अपने यथार्थ के रूप में विकसित करती है । इस कारण से कविता अन्तर्विरोधों की विराटता और विकरालता को दर्शाती है । उन अन्तर्विरोधो के प्रति कवियों की अपनी अपनी प्रतिक्रियाएँ भी हैं । प्रतिक्रिया की कई भंगिमायें होती हैं अन्तर्विरोधों की अभिव्यक्ति केलिए एक कवि व्यंग्य का सहारा लेता है तो दूसरा विद्रोह का स्वर अपनाता है । मलयज जैसे कवि शान्त लहजा अपनाते हैं तो घूमिल विद्रोही स्वर पर बल देते हैं । एकाध कवि कविता में बनावटी निस्संगता बरतता है । इन तमाम स्थितियों में पाठक कवि की सामाजिक सूझ-बूझ और इतिहास दृष्टि से परिचित हो जाता है जो उसके आस्वादन में सहायक है ।

कविता वस्तु के आधार पर समकालीन कविता में जीवन यथार्थ के अन्तर्विरोधों के तीन आयाम मिलते हैं

सामाजिक अन्तर्विरोध के विभिन्न आयाम
राजनीतिक अन्तर्विरोध के विभिन्न आयाम
साँस्कृतिक अन्तर्विरोध के विभिन्न आयाम

इन तीनों आयामों से होकर गुज़रने पर समकालीन कविता की आत्यन्तिक स्थिति का पता लग ही जाता है ।

सामाजिक अन्तर्विरोध के आयाम

यह कहा जा चुका है कि यथार्थ को भिन्न-भिन्न कवि अपने ढंग से स्वीकार करते हैं मलयज की कवितायें एक शान्त मुद्रा से शुरु होकर धीरे-धीरे यथार्थ को विकसित करती है

उनकी कविताएं सामाजिक यथार्थ के बीच रास्ता खोजती कविताएं हैं । मलयज के शब्दों म "आज के जीवन की त्रासदी और विडम्बना सिर्फ आदमी के वर्तमान से नहीं समझा जा सकत जिसकेलिए वर्तमान की तात्कालिकता से बाहर कहीं गहरे में जाना होगा उस संपूर्णता क ओर।"[1] शताब्दियों से तरह-तरह के शोषण तंत्रों के अधीन छटपटाते मनुष्य के बिंबों क उद्घाटित करके मलयज ने सामकालीन जीवन-यथार्थ को कुछ इस तरह अनावृत किया है

कैसे तू एक नाटक में अपने को खोलता मूँदता
और पाता था ।
उस नाटक में तू ही सूत्रधार था, तू ही अभिनेता,
तू ही दर्शक
एक मुजस्सिम नाटक
हर बदलते दृश्य में वही का वही
दुख के पके फोड़ों में ज़माने का ज़हर समाए
सुख के लपकते शोलों में
एक अदने घोंसले सा सुलगता हुआ
हर बार मरने में हर बार जीता पुनःपुनः
मरने और जीने केलिए
हर नाटक में
एक ही राग एक ही आत्मा को चूम
उठ उठकर गिरता पड़ता
उठता हुआ ।[2]

जीवन रूपी नाटक में सूत्रधार, अभिनेता और दर्शक तीनों की भूमिका अदा कर

---

1. अशोक वाजपेयी के नाम कुछ पत्र-संवाद और एकालाप - मलयज - पृ.सं. 92 प्र. सं. 1974
2. कवि-अपने होने को अप्रकाशित करता हुआ-मलयज पृ.सं. 13 प्र. सं.1980

केलिए आदमी मजबूर होता है । नाटक के दृश्य बदलते हैं मगर पात्र वे ही हैं सिर्फ उसके रूप बदलते हैं। दुःख के पके फोड़ों में ज़माने का जहर समाकर कवि मरता और पुनः जीता रहता है । यह शान्त लहजा मलयज की अपनी खासियत है जो उनकी प्रतिक्रिया की एक भंगिमा है । भागते दृश्यों और पल-पल बदलते जीवन-संदर्भों के बीच आदमी खून का जमा हुआ कतरा बनने को विवश है । सक्रिय होकर भी जड़ बनने केलिए मजबूर मनुष्य का यथार्थ उनकी कविता में बहुत गहरा दीखता है । "तिनके की चीख" में स्थिति के प्रति प्रतिक्रियान्वित होनेवाले तिनके का उल्लेख कवि ने किया है । मलयज के शब्दों में यथार्थ के प्रति प्रतिक्रियान्वित तिनके की चीख पूरे जंगल के सन्नाटे से भारी है । भावुक सरल लहजे के बदले शान्त गंभीर मुद्रा में वे कविता में उपस्थित होते हैं ।

दृश्य भाग रहे हैं
आदमी थम गया है खून के जमे हुए
कतरे की तरह
जलती हुई चड़मी के नीचे मरा हुआ पानी
उसमें जो आँखें तैरती हैं
वह कहीं मेरी तो नहीं ।[1]

चन्द्रकान्त देवताले भी साधारण ढंग से यथार्थ से प्रतिक्रियान्वित होते हैं । वे भारतीय समाज की विडम्बना और उसके भीतर अन्य कई कारणों से संघर्षरत असंख्य लोगों का तनावपूर्ण जिजीविषा के कवि हैं । मानव जीवन के साथ देवताले की कविता का रिश्ता सुख दुख के संगति का, जागरूकता तथा ऐन्द्रिकता का है । मलयज की ही तरह अपने अकेलेपन में चन्द्रकान्त देवताले सारे संसार को देखते हैं । "यह किसी पलायनवादी दृष्टि का अकेलापन नहीं आँखों में आँखें डालकर ऐन मौके पर अकेले ही मुकाबला करनेवाले का अकेलापन है" ।[2] उनका

---

1. तिनके की चीख-अपने होने को अप्रकाशित करता हुआ - मलयज - पृ.सं. 15 प्र. सं.1980
2. हमारे जीवन और समय का अद्वितीय कवि-उसके सपने-विष्णु खरे प्र. सं.1980

एकान्त निर्जीपन अपराध वोध में पीड़ित है। सामान्य जन से बिछुडने और अर्ध संभ्रान्त वर्ग से जुड़ने की वजह से उत्पन्न दूरी को वे पार नहीं कर पा रहे हैं। इसलिए उनमें सामाजिक अपराध वोध की तीखी अभिव्यक्ति हुई है । 'उसके सपने' कविता में कवि ने कठिन समय को पूरी तरह से आँका है । पत्नी का सपना सुनाना ही कवि को सपने से खौफनाक महसूस होता है । उसमें स्याह वक्त की मौजूदगी है जिसे अनमना सा सुनने की कवि की कोशिश बेकार होती है । क्योंकि स्याह वक्त की वह कथा उसको काँटों सी चुभती है ।

उसके सपने से अधिक खौफनाक होता है
उसका सपना सुनाना
इतना हँसते हुए इतना खुश
कोई कैसे कह सकता है उन सपनों की बाबत
जिनके पाँवों के निशान जीवन में
अभी कहीं नहीं है ।

सचमुच अजीब होते हैं उसके सपने
फटी आँखों में देखते हुए स्याह वक्त को
अनमना सा सुनता हूँ
देह पर काँटे महसूसते हुए ।[1]

देवताले की कविता जीने केलिये लड़ते मनुष्य की कविता है । कठिन समय को उन्होंने अपने दिमाग में नहीं रक्त तथा मज्जा में महसूस किया है । कवि ने जीवन के अनेकायामी पक्षों को पकड़ा है जिसमें व्यथा, संघर्ष, विद्रोह, सपने सब एक साथ समाए हुए हैं । आदमी पर होनेवाले अत्याचार के विरुद्ध सधे शब्दों से वे आक्रोश करते हैं । उनकी हर

---

1. उसके सपने -रोशनी के मैदान की तरफ चन्द्रकान्त देवताले पृ.सं. 21-22 प्र. सं. 1982

प्रतिक्रिया स्थितियों की समझ से बढ़कर स्वयं उनसे गुज़रने से उपजी प्रतिक्रिया है । वैयक्तिक धरातल से शुरु होकर एक सार्वजनीन धरातल पर ही उनकी कविता विकस्वर दीखती है ।

"थोडे से बच्चे और बाकी बच्चे" शीर्षक ही अपने अधिकारों से वंचित निचले तबके की ओर इशारा करता है । मानवीय करुणा से ओतप्रोत यह कविता शोषण के बहुस्तरीय पक्षों का चित्रण करती है । अंधकार कीचड़, धूल और गन्दगी से भरी गलियों में ये अपना भविष्य बीन रहे हैं । सौ बच्चों केलिये एक कटोरदान है मगर उसमें रखी आधी रोटी तोड़नेवाले हाथ हज़ार होते हैं । आर्थिक विपन्नता से उपजे अन्तर्विरोध का चित्र इस कविता में है ।

एक कटोरदान है सौ बच्चों केलिये
और हज़ारों बच्चे
एक हाथ में रखी आधी रोटी को
दूसरे से तोड़ रहे हैं ।[1]

आक्रोश और आत्मालोचन देवताले की कविताओं को ठोस ज़मीन पर खड़ा करके सार्थक दृष्टि प्रदान करते हैं । उनकी अधिकांश कवितायें मनुष्य की पीड़ा का बयान करती हैं । जिनकी हँसी छिन गयी, जो कुचल दिये गये, जो सपना संजोने से भी डरते हैं, उनका चित्र देवताले ने खींचा है ।आतंक और छल से युक्त अन्धेरा आज सब कहीं छाया है । भीतर ही भीतर सुलगती आग से याने यथार्थ से वे समाज को अवगत कराते हैं ।

राजेश जोशी की 'धर की याद' कविता एक बनावटी निस्संगता से यथार्थ की अभिव्यक्ति करती है । जीवन भर निर्वासन की यातना भोगने केलिए बाध्य मास्टरजी एक बनावटी निस्संगता बरतने का आदी हो जाते हैं। उस मास्टरजी की व्यथा को चिन्हित करते वक्त कवि की दृष्टि पूरे जनसमुदाय पर पड़ती है । कवि को निर्वासन अपने समय का सबसे बड़ा दुःख

1. थोडे से बच्चे और बाकी बच्चे लकड़बग्धा हँस रहा है देवताले पृ.सं. 14 प्र. सं. 1980

महसूस होता है । निर्वासन में व्यक्ति को अकेलापन अखरता है । एक प्रायमरी स्कूल क मास्टर के निर्वासन म सिर्फ अकेलापन की ही बात नहीं बल्कि तंगहाली से उत्पन्न व्यथा भी है । उसके सुबकने में लोगों को तमाशे का अनुभव होता है । मगर कवि को उस व्यक्ति के दुःख में बहुतेरे मनुष्य के बहुरूपिया दुःख का बोध होता है । मानवीय इच्छाओं, मूल्यों, स्वप्नों, आकाँक्षाओं तथा हताशाओं से जुड़ी राजेश जोशी की बहुत सारी कविताओं में घर की याद बनी रहती है । यथार्थ के वास्तविक पाठ की बात उनकी कविताओं में है । बार-बार अर्जियाँ लगाने पर भी निर्वासित रहने केलिये अभिशप्त एक मास्टरजी की फटेहाली पूरे जनसमुदाय की फटेहाली है ।

न जाने किस किसको गाली निकालता
अचानक सुबकने लगता है मास्टर
अगल बगल खड़े लोग देखते हैं जैसे
देखते हो तमाशा
बाहर आते ही कैसा बहुरूपायित हो जाता है
हमारा दुख !![1]

अन्तर्विरोधों को बिना किसी संकोच के साथ अत्मसात करने की दृष्टि हमारी है । निस्संगता को हमने मूल्य मान लिया । स्वार्थ हमें रास्ता नहीं दिखा रहा है । इसलिए कवि दुःख के विस्तार में अन्तर्विरोधों की असंख्य संभावनाएँ देखता है ।

सामाजिक यथार्थ के अन्तर्विरोधी पक्षों के प्रति अरुण कमल एक बनावटी निस्संगता अपनाता है । स्थिति की समझ से बढकर सामाजिक यथार्थ का निखरा रूप उनकी कविताओं में मिलता है । "मुक्ति" कविता के मास्टरजी पढाते हैं जीविका केलिये। मगर उनके बच्चे अभाव और अज्ञान में भटकते हैं । लाचारी और आत्मग्लानि की वजह

---

1 घर की याद - दो पंक्तियों के बीच राजेश जोशी - पृ.सं. 63 प्र. सं. 2000

से व खुद अपने बच्चों को पीटते हैं। यह एक असफल पिता का आत्मराप है । दरिद्रता और मध्यवर्गीय मजबूरी के सामाजिक अन्तर्राविरोध का इस कविता क द्वारा अभिव्यक्ति दी गयी है ।

दोष लेकिन मेरा भी क्या
मैं एक रिटायर्ड स्कूल मास्टर
जो सुबह से शाम तक घूमता है यहाँ से वहाँ
इस उसके बेटे बेटि को ट्यूशन पढाता
बैठता कैसे थोड़ी सी देर खुद अपने बेटे के पास
जब घर से निकलता, तुम सोए होते
जब लौटता, तुम सोए होते ।[1]

एक बड़े अन्तराल के बाद ही गजब प्रखरता के साथ आम आदमी की दुनिया कविता में उपस्थित हुई है । जनजीवन के वैविध्यपूर्ण और गहन जीवनानूभवों को चित्रित करने के साथ-साथ उसके अन्तर्विरोधों को भी पकड़ने की वे कोशिश करते हैं । सामाजिक जीवन में व्याप्त अन्तर्विरोध का एक जीवंत चित्र 'खुशबू रचते हैं हाथ'में उभरा है । खुशबू रचनेवाले ये हाथ गन्दगी में रहने केलिये मजबूर है । सामाजिक और आर्थिक असमानता और वर्ग वैषम्य की वजह से ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं । मास्टरजी को चित्रित करते वक्त भी ऐसे असंगत संदर्भ सामने आते हैं । सारी गंदगी के बीच रहते हाथ ही खुशबूदार केवडा, गुलाब, खस की अगरबत्तियाँ बनाते हैं । उनकी बनायी अगरबत्तियाँ देश-विदेशों में बिकी जाती हैं । किन्तु यह कितना बड़ा अन्तर्विरोध है कि खुशबू रचते ये कितनी तंग परिस्थितियों से गुजरते हैं । "गंदगी" और "खुशबू" ये दो शब्द उस कविता में जीवन की अन्तश्चेतना की परतों को खोलते हैं । ये दोनों शब्द विपरीतार्थक ही नहीं दो स्थितियों के व्यंजक हैं । उभरी नसों और घिसे नाखूनोंवाले ये हाथ कैसे अन्तर्विरोध की रचना करते हैं ।

---

1 मुक्ति अपनी केवल धार अरुण कमल पृ.सं. 37 तृ. सं. 1999

यहीं इस गली में बनती हैं
मुल्क की मशहूर अगरबत्तियाँ
इन्हीं गंदे मुहल्लों के गंदे लोग
बनाते हैं केवडा गुलाब खस और रातरानी
अगरबत्तियाँ
दुनिया की सारी गंदगी के बीच
दुनिया की सारी खुशबू
रचते रहते हैं हाथ ।[1]

फटे पुराने और गंदे झोले में सब्जी लेकर बाज़ार की सड़क पर घूमता मध्यवर्गीय अभावों का शिकार आम आदमी जीवन यथार्थ को उजागर करता है । उस चिरपरिचित चरित्र को उतारते वक्त विनोदकुमार शुक्ल की भाषा में भी अन्तर आया है । यथार्थवादी शैली में जीवन के सुपरिचित यथार्थ का ठोस और पारदर्शी रूप उन्होंने 'बाज़ार की सड़क' में उपस्थित किया है । यह मानवीय संवेदना की छोटी किन्तु चोखी कविता है जिसे ठोस सामाजिक वस्तु ने ठोस रूप प्रदान किया है । इसमें कवि की अंतर्मुखता भी व्यक्त है जिस पर कवि ने खुद व्यंग्य किया है । यह आत्मव्यंग्य भी प्रतिक्रिया की एक भंगिमा है।

बाज़ार की सड़क
व्यस्त आदमी
उसके दोनों हाथों
गंदा झोला
कहीं फटा

---

1. खुशबू रचते हैं हाथ अपनी केवल धार-अरुण कमल पृ.सं. 80-81 तृ. सं.1999

एक खाली और दूसरा भरा

जिसके अंदर

आलू भाजी गरम मसाले की पुड़िया

और मिर्च

लाल या हरा

काश ! मैं !

दस रूपयें का नोट बनकर

उसकी झोली में पनाह पाता

मैं अपनी ही झोली में घुसा हुआ था ।[1]

जीवन के सुपरिचित यथार्थ का बेसाख्ता चित्र "मैं दीवाल के ऊपर" में अभिव्यक्त हुआ है । अपना हिस्सा छीन लेने में असमर्थ मनुष्य शोषण का एक नया आयाम समकालीन कविता में जोड़ता है । आदमी अन्य पशु पक्षियों से बढकर ताकतवर और मेधावी है । किन्तु शोषणतंत्र इतना सशक्त हो चला है कि कौए से भी मनुष्य अपना बचाव नहीं कर पाता। छुटपन के दिनों से बच्चों के हाथ से कौर छीनते कौए की कथा सुनी है । वह सिर्फ बच्चों को बहलाने केलिये सुनाई जाती है । इस प्रसंग में थके हाथ से रोटी का हिस्सा छीनता कौआ दूसरों को शोषणतंत्रों में जकड़नेवाली पूँजिवादी सभ्यता का प्रतीक है । इस संदर्भ में कौआ और अपना हिस्सा न छीन पाने में असमर्थ भूखा आदमी एक भिन्न गंभीर अर्थ रखते हैं ।

मैं दीवाल के ऊपर

बैठा

थका हुआ भूखा हूँ

और पास ही एक कौआ है

---

1. बाज़ार की सड़क - वह आदमी नया गरम कोट पहनकर चला गया विचार की तरफ - विनोदकुमार शुक्ल - पृ.सं. 20 प्र. सं. 1980

जिसकी चोंच में रोटी का टुकड़ा
उसका ही हिस्सा
छीना हुआ है
सोचता हूँ
कि हाय !
न मैं कौआ हूँ
न ऐसी चोंच है
आखिर किस नाक नक्शे का आदमी हूँ
जो अपना हिस्सा छीन नहीं पाता ![1]

विनोदकुमार शुक्ल यहाँ पूरे जनसमुदाय की असमर्थता पर बल देते हैं । यह असमर्थता कभी न सुधरनेवाली स्थिति की भंगिमा है । यह स्थिति अचानक उभरी नहीं, बल्कि युगों से यह जीवन की सच्चाई रही है।

भूगोल, पृथ्वी, घर सभी के मेलजोल से बनी दुनिया को रचते कवि घर के अभाव की सूचना से पृथ्वी में अन्न केलिये तरसते भूखे जनसमुदाय की सूचना देता है । "दूर से अपना घर देखना चाहिए" कविता में समय की विडम्बना की पहचान है । बने बनाये कटघरे और चालू अवधारणाओं के बीच उनकी कविता के यथार्थ को खोजना असंगत होगा । घर की विपन्नावस्था आदमी को भी घर की तरफ लौटने को विवश करती है। यह वापसी समग्र पृथ्वी की लाचारी है। कवि एक गुणात्मक विश्वदृष्टि से यथार्थ को आँकता है । न लौट सकनेवाली दूरी से अपना घर देखने से आदमी के मन में उठनेवाली हूक में एक सशक्त समकालीन कवि की अन्तर्विारोधी स्थितियों की पहचान से युक्त मनस्थिति गुंफित है ।

---

1. मैं दीवाले के ऊपर-वह आदमी नया.....विनोद कुमार शुक्ल - पृ.सं-18 प्र. सं. 1981

दूर से अपना घर देखना चाहिए
तब घर में बच्च क्या करत होंगे की याद
पृथ्वी में बच्चे क्या करते होंगे की होगी
घर में अन्न जल होगा कि नहीं की चिन्ता
पृथ्वी में अन्न जल की चिन्ता होगी
पृथ्वी में कोई भूखा
घर में भूखा जैसा होगा
और पृथ्वी की तरफ लौटना
घर की तरफ लौटना जैसा ।[1]

यथार्थ के प्रति कवि समभाव से प्रतिक्रियान्वित होता है । यह प्रतिक्रिया भी एक नयी भंगिमा है । व्यक्ति स्वार्थ के दायरे को तोड़कर पूरे जनसमुदाय की कभी न सुधरनेवाली विपन्नावस्था का भोक्ता बनकर कवि यथार्थ को आँकता है । विकास और तरक्की के बावजूद हमारे समाज के बहुसंख्यक इस प्रकार गरीबी में क्यों भटक रहे हैं ? यहाँ कवि की सहानुभूति प्रकट नहीं होती है । यहाँ वस्तुस्थिति का चित्र ही प्रस्तुत है । अन्तर्विरोध स्वयं प्रकट होता है ।

लिंगभेद से उत्पन्न विषमता हमारे सामाजिक जीवन का बहुत बड़ा अन्तरविरोध है । नवजात बच्ची को प्यार देने की इच्छा रखते हुए भी उससे मुख मोड़ने केलिये मजबूर सामाजिक व्यवस्था पर प्रहार करने के साथ साथ पूरे परिवार की व्यथा को भी कवि ने एक नवजात बच्ची को प्यार में व्यक्त किया है । शोषणमूलक व्यवस्था की मार से कोई भी बचा नहीं है । हमारी सामाजिक व्यवस्था लड़कियों को बचाने केलिए तैयार नहीं है । उसके प्रति व्यवस्था और समाज अमानवीय होता जा रहा है । इस स्थिति में परिवर्तन असंभव सा दीखता है । स्वयं माँ भी बच्ची को प्यार नहीं दे पाती । इस मजबूरी से बचाव असंभव है । कवि अरुण कमल मनुष्य के जीवित पक्ष से जुड़े कवि हैं। वे बड़ी आस्था के साथ इस कविता को आगे बढाते हैं । ये पंक्तियाँ

---

1 दूर से अपना घर देखना-सब कुछ होना बचा रहेगा विनोदकुमार शुक्ल पृ.सं. 24 प्र. सं. 1992

बच्चियाँ कविता एक शीतल तसल्ली है । क्योंकि कवि परिवर्तनकामी भविष्य की आशा बाँधे बैठे हैं ।

> जिस दादी ने जूठन खाकर ही गुज़र दी ज़िन्दगी
> जिस माँ ने अपने पति की मार चुपचाप सही
> और जिस पिता ने देखा है तिलक दहेज का क्रूर व्यापार
> वे कैसे खुश होंगे
> लेकिन आज वही नहीं है दुनिया उतनी कठोर
> जो कल या परसों थी ।
> समय के प्रवाह में तुम्हारे ही लिए धुल रही है दुनिया
> जल्दी जल्दी बढो मेरी बच्ची
> जल्दी जल्दी [1]

समकालीन कविता यथार्थ का एक चित्र प्रस्तुत करती है । कभी-कभी उसकी ऐसी कोई विशेषता प्रथम वाचन के अवसर पर प्रकट नही हो सकती है । दूसरे या तीसरे वाचन के अवसर पर वह चित्र हमारी व्यवस्था की किन्ही अन्दरूनी स्थितियों में तब्दील होता है । फिर वह चित्र इन स्थितियों की तह में निहित मानवीय पीड़ा, व्यथा, कसक, संघर्षशीलता, कहीं न पहुँच पाने की अवस्था और असंख्य विडंम्बनाओं को व्यक्त करने लगता है । तब कविता में वह चित्र भर नहीं है । वह एक गतिशील हादसा बन जाता है । उसमें से जीवन स्फुरित होता है । वस्तुतः ऐसी कविताएँ सिर्फ एकायामी समस्याओं की तरफ इशारा भर करनेवाली कविताएँ नहीं हैं । वे सामाजिक मूल्य विघटन से उत्पन्न अकारुणिक स्थिति की अभिव्यक्ति है ।

समकालीन कविता में राजनीतिक अन्तर्विरोधों की अभिव्यक्ति

समकालीन कविता ने राजनीतिक अन्तर्विरोधों की जाँच-पड़ताल भी बड़ी गहराई से की

---

1 एक नवजात बच्ची को प्यार अपनी केवल धार अरुण कमल पृ.सं. 44 प्र. सं. 1980

RAJ

है । छद्म जनतंत्र, साम्राज्यवादी दुष्चक्र, शोषण, दमन, उत्पीड़न पर आधारित व्यवस्था आदि समकालीन कविता के मुख्य विषय हैं। समकालीन कवि ने राजनीतिक और सामाजिक प्रतिबद्धता को नये सिरे से परिभाषित करना शुरू किया । समग्र मानव की मुक्ति चाहनेवाले और यातना झेलते मनुष्य को एकजुट होकर व्यवस्था के विरुद्ध खड़े होने की ताकत दिलवाने की कोशिश पुरानी पीढी के नागार्जुन, त्रिलोचन जैसे कवियों ने की जिसे आज की सक्रिय पीढी ने खूब मुखरित किया। आपातकाल की घोषणा के बहुत पहले ही लोकतन्त्र के नकाब में छिपकर बैठी तानाशाही शक्ति को नागार्जुन ने पहचाना और उसे बेनकाब करते हुए घोषणा की-

कार्तूसों की माला होगी, होगा दृश्य अनूप
हथगोला-पिस्तौल-स्टनगन-सज्जित चंड़ीरूप
अबकी अष्टभुजा का होगा खाकी वाला भेष ।
श्लोकों में गूँजेंगे अबकी फौजी अध्यादेश[1]

परिवर्तन की तीव्र इच्छा उन्होंने अपनी पंक्तियों के द्वारा व्यक्त की है । विद्रोह का यह स्वर कवि की प्रतिक्रिया की भंगिमा है । एक सीमित दायरे के भीतर भी वह सार्वकालिक बनती है । सुविधाभोगी सत्तावर्ग के विरुद्ध अपनी फैंटसी के माध्यम से मुक्तिबोध प्रतिक्रियान्वित हुए तो धूमिल ने अस्वीकार और विद्रोह का लहजा अपनाया । असल में दोनों अपने अपने तरीके से मनुष्य विरोधी शक्तियों के विरुद्ध लड़ते रहे ।

कविता में राजनीति की अभिव्यक्ति महज दलगत राजनीति की अभिव्यक्ति नहीं । उसका सरोकार गहरा है । कविता में वह सत्ता और शोषण का प्रतीक है । निष्क्रियता भी शोषण का एक तरीका है । राजनीति आज अधिकार और उसके व्यापक वर्चस्व का पर्यायवाची है । दिन-ब-दिन उसका अधिकार बढ़ता है । इसलिए वह जनतंत्र के नाम से काफी

---

1. चुनी हुई रचनायें नागार्जुन - पृ.सं. 15 प्र. सं. 1985

कुछ कर सकता है । प्राय: उसका कार्य जनहित में कम और जनविरोध में अधिक बल देता है । इसलिए राजनीतिक कारवाईयों में अन्तर्विरोधों का रहना स्वाभाविक है । यह बात हमारे औसत जीवन को, हमारी सामान्य मानसीकता को इस कदर बाधित करती है कि आदमी अपने को एकदम अमानवीय वातावरण के अधीन में महसूस करने लगता है । समकालीन कविता में इस तरह के जीवन यथार्थ का बाहुल्य है ।

हत्यारों को राजपाट से सम्मानित करनेवाली आज की राजनीति की पेंतरेबाजी के प्रति कवि अरुण कमल ने शान्त किन्तु व्यंग्यात्मक लहजा अपनाया है । समय के दबाव का असर समकालीन कवियों पर गहरा पड़ा है । अनुभव और राजनीति को अरुण कमल ने कविता में मिलाया है जो बड़ी पैनी बन गयी है ।

देखो हत्यारों को मिलता राजपाट सम्मान
जिनके मुँह में कौर, माँस का उनको मगही पान ।[1]

राजनीति और समाज के अपराधीकरण के प्रति अरुण कमल की प्रतिक्रिया यथार्थवादी संवेदना से संपृक्त है ।

"खबर" में राजनीतिक अन्तर्विरोध की तीखी अभिव्यक्ति हुई है । इसमें मानवीय यथार्थ और राजनीति का साजिश चित्र कवि ने उकेरा है । समकालीन कविता मज़दूरों, किसानों, आदिवासियों और अभावग्रस्तों की दैन्य और लाचारी को यथार्थ के धरातल पर आँकने की कोशिश करती है । अरुण का मानववाद इस गुणात्मक अर्थवत्ता से जुड़ा है जिसमें वक्तव्यबाजी और शुष्क संवेदना नहीं बल्कि आम आदमी की संपृक्ति है । आदमी को समाज की विसंगतियों और राजनैतिक अन्तर्विरोधों की जानकारी देनेवाला अखबार समाज का अपरिहार्य अंग है । मगर उसमें राजनैतिक साजिश की वजह से प्याज के गुण-दोष, युवराज

---

1. उत्सव सबूत - अरुण कमल पृ.सं. 62 प्र. सं. 1989

के कंगाल्ला में केवल बाँटने और राजनेता के दाढ़ी मुंडाने की बात ही आती है। समाज में अखबारों की भूमिका की अपनी अलग हैसियत है फिर भी बहुसंख्यक नेताओं की खोखली बातों को ही प्रसवाले छापते हैं । जीवन के हर क्षेत्र पर पूँजिवादी वर्चस्व काम करता है । भ्रष्ट व्यवस्था को चुनौती देनेवाली कोई भी बात अखबारों में छापने की अनुमति नही दी जाती । अपने अधिकारों केलिये लड़ते नक्सलबन्दियों को आपातकाल में दी गयी सज़ा की कहीं भी कोई खबर नही थी । राजनीतिक अन्तरविरोध के इस सशक्त पक्ष को यह कविता बेपर्द करती है ।

एक खबर जो कहीं नहीं थी।
किश्ता गौड को फाँसी हो गयी ।
एक खबर जो खबर नहीं थी
भूमैया को फाँसी हो गयी ।[1]

किश्ता गौड़ और भूमैया आंध्रा प्रदेश के नक्सलबन्दि थे जिन्हें आपातकाल के दौरान फाँसी दी गयी थी । उन्होंने एक विशेष समुदाय केलिये नहीं सर्वहारा वर्ग केलिये लडाई की थी । यद्यपि उन्होंने कठोर नीति अपनाई फिर भी मकसद एकदम साफ था । ज़मीन्दारी प्रथा की हीनता के सामने ये नक्सलबन्दी बेकसूर नहीं तो भी कम दोषी हैं ।

सरकारी तन्त्र से आदमी खूब ड़रा हुआ है । बच्चों की हँसी, थोड़ी सी आहट और पत्नी का करवट बदलना तक आदमी को ड़राता है । व्यवस्था के खिलाफ षड़यन्त्र रचने के नाम पर दो निरपराध बच्चे पकड़े गये । शक्ति के नशे में सुस्त शाहंशाह मैंकबेथ की भाँति बेलाड़िलाव पंतनगर में गोली चलाती है । व्यवस्था की उस क्रूरता के विरुद्ध अरुण कमल व्यंग्यात्मक ढंग से प्रतिक्रियान्वित होते हैं । आज देश आत्मनिर्णय का साहस दिनों दिन खो रहा है । एक ओर बाज़ार की आक्रामक चमक दमक है तो दूसरी ओर हिंसक बर्बरता ।

1. खबर -अपनी केवल धार अरुण कमल - पृ.सं. 15 तृ. सं.1999

असहमति प्रकट करने का परिणाम मृत्यु है । सामान्य जन की सुरक्षा हेतु बनाई गई जनतान्त्रिक व्यवस्था हत्यारों की हिमायती करती है । फिर भी कवि अरुण कमल को पूरा विश्वास है कि इस अमानुषिक राजनीतिक अन्तर्विरोध का ध्वंस होगा ही । क्योंकि आज जनता सरकारी षडयंत्र के खिलाफ लड़ने लगी है । "हर हाल में प्रथमतः और अन्तिम रूप में कविता जीवन को बहत्तर बनाने केलिये संघर्षरत, हर अन्याय और अत्याचार का प्रतिकार करते, लड़ते हुए आदमी के पक्ष में बोला गया शब्द है ।"[1]

शाहंशाह मैंकबेथ अब तुम बचोगे नहीं
आदमी बढा आ रहा है
आदमी
आदमी जैसे बर्नम का जंगल [2]

यहाँ कवि ने यथार्थ को एक विकासमान प्रक्रिया के रूप में देखा है ।

सर्वहारा वर्ग और राजसत्ता की टकराहट राजनैतिक क्षेत्र की टकराहट है । अरुण कमल की बहुत सारी कविताओं में वह टकराहट अभिव्यक्त हुई है । शोषण, दमन और उत्पीड़न को छिपाने केलिये पूँजिवादी सरकार जनतंत्र के नाम पर दोयम राजनीति का प्रचार करती है । "अरुण की कविताओं में व्यक्त राजनीति पूँजिवादी राजनीति के खिलाफ मेहनतकश जनता की राजनीति है ।[3] "जाल" कविता में उन्होंने सरकार की दायित्व हीनता और जनविरोधी चरित्र पर व्यंग्य किया है । "हाथ" कविता में कवि ने दुनिया के हर कारनामे के पीछे स्थित पूँजिवादी व्यवस्था का निषेध किया है । "सरकार" और "ईश्वर" शब्द का प्रयोग उन्होंने पूँजिवादी व्यवस्था के प्रतीक के रूप में किया है । ईश्वर को हर क्रिया-कलाप का सूत्रधार माननेवाली निरर्थक मनस्थिति का उन्होंने विरोध किया है । "हाथ" शब्द राजनैतिक

---

1. कविता साँस लेने का संघर्ष है-राजेश जोशी पृ.सं. 31 - प्र. सं. 1978
2. शाहजहां मैंकबथ - अपनी केवल धार – अरुण कमल पृ.सं. 87 तृ. सं. 1999
3. कविता का वर्तमान- खगेन्द्र ठाकूर पृ.सं. 216-प्र. सं. 1988

क्षेत्र के अन्तर्विरोध का सशक्त चित्र खींचता है । अपने अधिकारों से वंचित, किन्तु अधिकारों केलिये लड़नेवाले जनसमुदाय को हाथ शब्द व्यंजित करता है । जीवन की हर यातना को नियति मानने की मूर्खता अब जनता नहीं करती । प्रस्तुत कविता में राजनीति के दोगलेपन पर उन्होंने भारी प्रहार किया है । "सब में कम्युनिस्टों का हाथ है" कहकर सर्वहारा वर्ग को देखने की मनस्थिति पर कवि ने व्यंग्य के माध्यम से प्रतिक्रिया व्यक्त की है।

सरकार का कहना है
कारखाने में गोली चली, उसमें ट्रेड यूनियन का हाथ है,
मारे गये मुसहर उसमें भी
किसान सभाओं का हाथ है,
विद्यार्थियों के हंगामें में
छात्र-संगठनों का हाथ है
और राज्य में जो गड़बड़ी है
सबमें कम्यूनिस्टों का हाथ है
हुजुर ने ठीक फरमाया
इस दुनिया के पीछे भी ईश्वर का हाथ है ।[1]

कुमारेन्द्र पारसनाथ की कविताओं का मूल स्वर व्यवस्था विरोध का है । जब नेता आज़ाद मुल्क में ऐशो-आराम का जीवन बिताता है तब सामान्य आदमी अन्न केलिये तरसता है । "इत्तेफाक" कविता में कुमारेन्द्र ने इस बात का उद्‌घाटन किया है कि मुल्क में जो घटित होता है वह सुनियोजित ढंग से होता है, इत्तेफाक से नहीं । दूसरे देशों में होनेवाले अत्याचारों पर आँसू बहाकर ये नेता अपने देश में गुप्त ढंग से हिंसा का नाटक रचते हैं । जहाँ नेताओं की सहूलियत स्वागत, शान-शौकत की खातिर अरबों रूपये खर्च किये जाते हैं वहाँ आम

---

1. हाथ अपनी केवल धार-अरुण कमल पृ.सं. 43-44 तृ. सं. 1999

आदमी एक वक्त का अन्न ही नहीं दवा तक नहीं खरीद पाता । आज की तानाशाही व्यवस्था के फलस्वरूप ऐसी स्थितियाँ उपजती हैं । अपने अधिकारों केलिये लड़ते मानव जाति के संघर्ष को उन्होंने अपनी इस कविता में दर्ज की हैं ।

एक ओर जहाँ इस हमसुखन चिरई के उतरने केलिये
ज़मीन तैयार करने में
हज़ारों नहीं, लाखों नहीं, करोडों नहीं, अरबों का
वारान्यारा हुआ
वहाँ तुम्हारी खांसी केलिये दवा की एक टिकिया
नहीं ला सका ।[1]

राजनैतिक अन्तर्विरोध का एक दूसरा पक्ष "एक सूरज माँ केलिये" कविता में खुलता है । मुल्क की आज़ादी केलिये बहुतों ने दम तोड़ लिया । आज़ादी मिली तो खुलकर साँस लेने की नौबत ही हाथ से छूट गयी । ज्ञान-विज्ञान के हर माध्यम को जनतान्त्रिक व्यवस्था ने अपने हाथ की पुतली बना दी । आज़ादी ने सपनों को तोड़ा । स्वतंत्र भारत एक आतंक भरे वातावरण से गुज़रने लगा । तत्कालीन वातावरण से उपजे आतंक ने हर आदमी को झकझोरा जिसका गहरा असर कुमारेन्द्र की कविताओं में मौजूद है ।

बड़े घरों के ड्राइंग रूमों को
सजाने केलिये
फूलों की चमड़ी उतार ली जाती है
और तितलियाँ
इस ड़र से छिपती फिरती है कि उनके पंख

---

1. इत्तेफाक-इतिहास का संवाद -कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह -पृ.सं.15 प्र. सं. 1979

कतर कर पर्दे में नहीं लगा दिये जाये ।

अब तितलियों के पंख पर्दा के काम

आने लगे हैं ।[1]

राजनीति के अन्दर शोषण के भिन्न भिन्न रूप वर्तमान हैं । राजेश जोशी मानव संवेदना के कवि है । उनकी कविताओं में राजनीतिक संकट की हकीकत बरकरार है । 'मिट्टी का चेहरा' तत्कालीन कलाप्रदर्शनियों के खोखलेपन का चित्र उपस्थित करने के साथ साथ राजनैतिक अन्तर्विरोध के प्रति भी प्रतिक्रियान्वित होता है । मिट्टी की मूर्ति जो प्रदर्शिनी में रखी थी उससे मिट्टी तड़क गयी है । वह टूटी हुई बड़े बड़े मिट्टी की दाँतवाली प्रतिमा तत्कालीन वक्त के प्रति कवि की प्रतिक्रिया है । तानाशाही मनोवृत्ति अचानक उभरी हुई मनोवृत्ति नहीं है । जीवन के शुरुआती दौर से वह भिन्न रूपों में समाज में बरकरार है । उसका प्रतिरोध करने पर भी वह दिन ब दिन एक अजेय शक्ति सी समाज को निगल रही है । "मिट्टि का चेहरा" कविता में तत्कालीन राजनीतिक संकट दर्ज हुआ है । वह अधटूटी प्रतिमा शताब्दियों पहले दफनाये गये जर्जरित तानाशाह का बिंब उतारती है । यह चित्र समकालीन समाज पर व्यंग्य करता है ।

वह मिट्टी का चेहरा

हमारे वक्त पर

जैसे कोई तत्कालीन प्रतिक्रिया !

शताब्दियों पहले दफनाया जा चुका

कोई तानाशाह

अपनी टाँग और जूते कब्र में भूलकर

हड़बड़ी में जैसे आ गया हो

आधा बाहर ![2]

---

1. एक सूरज माँ केलिए इतिहास का संवाद - कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह पृ.सं.20 प्र. सं. 1979
2. मिट्टी का चेहरा - राजेश जोशी पृ.सं. 15 प्रथम संस्करण

सत्ता धर्मी वर्ग और सर्वहारा वर्ग के समग्र परिवर्तन कालिये वेणुगोपाल क्रान्ति चाहते हैं । व्यवस्था की असलियत वेणुगोपाल की कविताओं में उद्घाटित हुई है । सर्वव्याप्त विपन्नता, शोषण, दमन आदि एक आक्रामक मुद्रा में वे "हाथ होते हैं" की कविताओं में अभिव्यक्त हुए हैं । इनमें वस्तुस्थिति की तीखी पहचान हुई है । वे अक्सर विद्रोहात्क रवैया अपनाते हैं । कवि को मालूम है कि उनकी कलम कभी खून की लकीर नहीं खींच सकती। यह भी उन्हें मालूम है कि स्याही जीवन के हर यथार्थ को कविता में दर्ज नहीं कर सकता । खून और स्याही के फर्क से अनभिज्ञ सर्वहारा वर्ग को वे इससे अवगत कराना चाहते हैं कि उसके हाथ में अदृश्य पड़ी तीली की लपट में वह अंधेरे के पार की नंगी सच्चाईयों से साक्षात्कार किया जा सकता है । आज़ाद भारत की हर योजना-पद्धति, क्रान्ति आदि पर समाजवाद का मलबा छाया हुआ है । सिर्फ एक क्रान्ति की चिनगारी सबको भस्म कर एक नवलोक का निर्माण करेगी । तब समग्र परिवर्तन होगा । इस आशा के दरमियान सत्ता की छंछूदरों की निष्क्रियता का एहसास उन्हें काटता है । राजनीतिक संकट से देश को उभारने की अदम्य लालसा यहाँ व्यंजित है।

लोग जब नींद में होते हैं
तब भी सत्ता की छंछूदर तो बिस्तरों
के चक्कर काटती ही रहती हैं ।[1]

प्रभात त्रिपाठी मनुष्य की अन्तरंगताओं को आकार और आवाज़ देते हैं । वे अपनी निजता को आतंकमयी सार्वजनिकता से जोड़ते है । वे अपनी ज़मीन और तासीर नहीं तजते हैं। वर्ग संघर्ष की वर्तमान स्थिति से कवि अपने को अलग नहीं कर सकते । उनकी कविता वर्ग संघर्ष और राजनीति के प्रतिरोध में प्रत्यक्ष भूमिका अदा करती है। अपने को जनता का सेवक कहते मुख्यमंत्री का अजब भाषण सुनकर सेवकराम हँसता रहा । मुख्यमंत्री की सेवकाई के

---

1. सिर्फ एक तीली -और-वे हाथ होते हैं -वेणुगोपाल पृ.सं. 74 प्र. सं. 1970

तले समग्र गाँव एक तकलवर अजनबी शेर से खींचा जा रहा था । वह पूरा का पूरा उजड़ता जा रहा था । मुख्य मंत्री की सेवकाई का भाषण सुनने के बाद अपने समगोत्रियों की जमात में लौटते कवि बाहर की विड़म्बना और उससे अनभिज्ञ औरत की भीतरी विड़म्बना के बीच दुविधा में पड़ते हैं । बाहरी कटुता ने उस औरत को कमज़ोर नहीं निर्विकार बना दिया है । इसलिए पति के इंतज़ार में वह बेगम अख्तर की ठुमरी सुन रही हैं । घर और बाहर के प्रति निर्मम कवि कोई संवाद की स्थिति कविता में स्थापित नहीं कर सकते । "जो कवि इस विड़म्बना को जितना अधिक झेलेगा, दो विषम स्थितियों के खिंचाव के बीच जितना निर्णयहीन रहेगा वह उतना ही परिपूर्ण होगा भीतर से टूटेगा तो भी ।[1]

जाओ अपने समगोत्रियों की जमात में
वहाँ रस भीगी बरसात में
बेगम अख्तर की ठुमरी सुन रही होगी
तुम्हारी औरत
तुम्हारे इंतज़ार में ।[2]

समकालीन कविता में साँस्कृतिक अन्तर्विरोधों की अभिव्यक्ति

उपनिवेशवादी संस्कृति का व्यापन

भारतीय समाज में आज अपसंस्कृति का पक्ष काफी प्रबल है जिससे साँस्कृतिक संकट उपस्थित होता है । बाज़ारवाद और आधुनिक तकनीकी संस्कृति इस संकट को काफी गहराती हैं । पूँजिवादी मनस्थिति सारे प्रगतिशील मूल्यों के बावजूद समाज में गतिशील है । साँस्कृतिक, राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से देश की स्थिति उस शुरुआती दौर की है । भारत अब जिस वातावरण से गुज़र रहा है वह अजमाया हुआ है क्योंकि अंग्रेज़ों ने उपनिवेशवादी

---

1. हिन्दी कविता में यथार्थवाद - अजय तिवारी - पृ.सं. 32 दस्तावेज़ जुलाई -सितंबर 1990
2. मुख्यमंत्री का भाषण-सड़क पर चुपचाप -प्रभात त्रिपाठी पृ.सं. 63, प्र. सं. 2000

शासन शुरू किया था । वह पीढ़ियों और वर्षों के बाद भी ज़ारी है। गुलामी के युग में औपनिर्वाशक शासन के तले पूँजिपति, सामन्त सब गुलाम थ । गुलामी का युग अब बीत गया है । किन्तु उस औपनिवेशिक शासन की चिनगारियाँ अब और प्रज्वलित होती रहती हैं । उसने आज कार्यविधान का एक अलग परिधान धारण किया है। हम पर सार्वभौम रूप से शासन के व्यापन से जीवन परिवेश और मनुष्य की मनस्थिति भी काफी बदल गयी है । जीवन और संस्कृति का विकास हो रहा है । किन्तु हमारी संस्कृति का विकास एक गलत दिशा में हो रहा है । उपभोगवादी संस्कृति ने जीवन को तनावपूर्ण बनाया है । यद्यपि इसने सभी तबके के जीवन को प्रभावित किया है भले ही फिर भी ऊपरी हिस्से का जीवन बहुत शान्त दीखता है किन्तु उसकी तह में साधारण जनता बहुत कुछ खो रही है । संस्कृति की इस मूल्यच्युति को हिन्दी कवियों ने भी महसूस किया और शब्दबद्ध करने की कोशिश की ।

ज्ञानेद्रपति ने 'गंगातट' काव्य संग्रह की कई कविताओं में साँस्कृतिक परिवेश को उकेरने का प्रयास किया है । साँस्कृतिक अन्तर्विरोध का एक स्पष्ट रूप उनकी कवितायें उपस्थित करती हैं । वे हिन्दी के ठेठ जातीय प्रकृति के कवि हैं । उन्होंने हमारे समय की क्रूरता, शोषण, मूल्यक्षरण, अंधउपभोक्तवाद, बाज़ारवाद, साँप्रदायिकता जैसे अनेक संदर्भों और उनके भिन्न भिन्न स्तरों को अपनी कविता में रेखाँकित किया है उनकी कवितायें सामाजिक और साँस्कृतिक विमर्श की कवितायें हैं । उनकी दृष्टि स्थिति की वस्तुनिष्ठता पर ही अधिक पड़ती है । भिन्न-भिन्न साँस्कृतिक मोड़ों से गुज़रने पर भी उनकी कवितायें अन्त में आकर टकराती है मानव मौजूदगी से ही । सभ्यता समीक्षा का मार्मिक शिनाख्त देनेवाली कई कवितायें उन्होंने लिखी है । साँस्कृतिक परिप्रेक्ष्य के भीतर उपस्थित करुण जीवन संपृक्ति "गंगास्नान" "खजुही कुतिया" "गंगातट शुरू-रात की बेला" आदि में है ।

नये जूते की नोंक पर जो एक तारा दिपता है ।
वह ध्रुवतारा से बड़ा है और ज्यादा चमकीला
वे तुम्हारी इच्छाओं और रुचियों के नियंता
तुम्हारे भीतर ज़रूरतें ही ज़रूरतें जगाते ।[1]

उपनिवेशवादी सभ्यता के अन्तर्विरोधों को चन्द्रकान्त देवताले ने निकट से महसूस किया है । सामाजिक व्यवस्था आज इतनी विकृत हो गयी है कि वच्चों के समाने एक खौफनाक भविष्य के अलावा कुछ भी नहीं है । बच्चों के खौफनाक भविष्य को उकेरने से बढकर अभाव में पिसकर जीविका केलिये खाली पेट स्कूल आती अध्यापिका का चित्र कहीं गहरा छूता है। भीतर की धड़कन को दबाकर बाहर की घड़ी के मुताबिक सारी कक्षा को सात का पहाड़ा दहाड़ने का आदेश देती अध्यापिका आज की सामाजिक व्यवस्था की अभागा सदस्या है । वे कक्षा की सारी आवाजों से बेखबर सपना नहीं संजो रही है बल्कि सड़क की गर्द गुबार में अपना चेहरा खोजती रहती है । व्यवस्था चाहे सामाजिक हो या साँस्कृतिक उसकी मार से पीड़ित मनुष्य का चित्र 'प्राथमिक स्कूल' में उभरा है ।

अध्यापिका के भीतर की घड़ी में
यह अपने घर पड़े बच्चे को
दूध पिलाने का समय होता
पर वह बाहर की घड़ी के मुताबिक
पूरी कक्षा को सात का पहाड़ा
दहाड़ने का आदेश दे
सारी आवाज़ों से बेखबर

---

1. शुरु-रात की बेला - गंगातट ज्ञानेन्द्रपति पृ.सं. 14, प्र. सं. 2000

खिड़की के बाहर

सड़क पर गद गुबार म

अपना कोई चहरा ढूँढती रहती[1]

शिक्षा के क्षेत्र में आए मूल्यविघटन को गंभीरता पूर्वक देखने की आवश्यकता है । बाज़ारवाद ने शिक्षा को विक्रय वस्तु के रूप में परिवर्तित किया है । इसका समाजशास्त्रीय पक्ष जितना गहरा है उतना ही उसका साँस्कृतिक पक्ष भी गहरा है । कारण स्पष्ट है कि वह एक पीढी को नहीं बल्कि कई पीढियों को बिगाड़ रहा है ।

दुर्गन्ध मारते लिजलिजे आलू की तरह

दिमागवाले लोगों के बीच

कविता नहीं

चलता है नौकरी की तरक्की

परीक्षा काम के पैसों का व्यापार

वह उच्च स्तरीय राजनीति के नाम पर

छोटी मशीनों के खिलाफ

बड़ी मशीन के कान भरता है

वह मुस्कुराता है

कमीशन बटोरने की चालाकी भरी

धूर्त सस्ती मुस्कान [2]

दिन व दिन प्रगति की ओर अग्रसर दुनिया का साँस्कृतिक दृष्टि से पतन होता जा रहा है । दरवाज़ा खटखटाने की आवाज़ केलिये हर आदमी आतुर है । किन्तु उस खटखटाहट में इंतज़ार नहीं दहशत भरा है । अनिश्चिय की अवस्था से गुज़रती आज की पीढी का भविष्य

---

1. प्राथमिक स्कूल-दीवारों पर खून से-चन्द्रकान्त देवताले पृ.सं. 86, प्र. सं. 1975
2. पत्थरों का राजगढ - दीवारों पर खून से -चन्द्रकान्त देवताले पृ.सं. 81 प्र. सं. 1975

अन्धकारपूर्ण है । कल जो पीढ़ी तैयार होगा उसके सम्मुख महज कालिमा ही होगी । आज देश की स्थिति इतनी खतरनाक है कि आदमी किसी भी वक्त डर से मुक्त नहीं है ।

दरवाज़ा खुलते ही
स्टेनगन लिए हत्यारे घुस आते हैं ।
और एक एक को मारकर चले जाते हैं ।
ऐसा बहुत होने लगता है ।
फिर भी दरवाज़े के खटखटाने पर
कोई भी दौड़ पड़ता है
और दरवाज़ा खटखटाये जाने पर
दरवाजे बार बार खोल दिये जाते हैं ।[1]

असुरक्षा की भावना से त्रस्त मनुष्य समुदाय ही आज की दुनिया की सबसे बड़ी संपदा है । एक अज्ञात भय ने मानव जाति के विकास को कुंठित कर दिया है । मनस्थिति की यह विरूपता समकालीन दुनिया की देन है जिसे कवि ने हकीकत से चित्रित किया है । परस्पर हाथ बंटाने या बचाने की मनस्थिति लुप्त होती जा रही है । मात्र अपनी सुरक्षा की मनस्थिति खूब बुलन्द हुई है । आज्ञात भय से मनुष्य खुलकर कुछ नहीं कर पाता। गोली लगने के भय से वह बन्द चौहद्दी से बाहर नहीं निकलता । मानवीयता आज एक मृत अनचाही चीज़ बन गयी है । मनुष्य बचने और ज़िन्दा रहने का बराबर आदी हो गया है ।

मैं ने कभी नहीं की निशानेबाजी
बचने और ज़िंदा रहने का बराबर है अभ्यास
किसी को बचाने की भी तो नहीं की
थोड़ी बहुत कोशिश
मैं नहीं मरा [2]

---

1. ऐसे छोटे बच्चे से लेकर -सब कुछ होना बचा रहेगा विनोदकुमार शुक्ल पृ.सं. 37 प्र. सं. 1992
2. वह आदमी नया गरम कोट पहनकर चला गया विचार की तरफ - विनोद कुमार शुक्ल - पृ.सं. 37 प्र. सं.1981

मंगलेश डबराल की एक कविता-"पागलों का एक वर्णन" आज की स्थिति के एक सशक्त पक्ष का उद्घाटन करती है । आज लोग निरन्तर एक तनावपूर्ण वातावरण से गुज़रते हैं। एक दृष्टि से नहीं तो दूसरी दृष्टि से सब पागल हैं । पागलपन का कोई विशेष निमय नहीं है । आज सभ्यता ने मनुष्य को अद्वितीय तरीके से पागल होने केलिए मज़बूर किया है । एक स्वस्थ मानसिकता आज किसी को भी हासिल नहीं होती। पागलों के बीच से गुज़रते स्वस्थ मस्तिष्कवाले भी उनकी आँखों में झाँककर सहम जाते हैं। क्योंकि उन्हें अपने ही जीवन का कोई अंश, अपनी ही कोई आग अपने से अलग होकर भटकती सी महसूस होती है । यह रुग्ण मनस्थिति उपनिवेशवादी सभ्यता की ही देन है ।

तरह तरह के इशारे करते पागलों के बीच से
अकसर गुज़रते हैं स्वस्थ मस्तिष्क के लोग
उनकी आँखों में थाड़ा-सा झाँककर
एकाएक सहमते हुए आगे बढ जाते हैं
जैसे झटक देते हो अपने जीवन का कोई अंश
अपना कोई क्रोध कोई प्रेम कोई विरोध
अपनी ही कोई आग
जो उनसे अलग होकर अब भटकती है
व्यस्त चौराहों और नुक्कड़ों पर
कपडे फाडे बाल बिखराये सूखी रोटियाँ संभाले हुए ।[1]

मंगलेशजी की कवितायें अद्यन्त राजनैतिक और साँस्कृतिक सत्ता का विरोध करती हैं । उनमें मानवीय विवेक की पुकार भरी हुई है । समय के हाशिये और यथार्थ की सतहों से परे जीवन और विचार के एक नये प्रतिसंसार की रचना करने की कोशिश उन्होंने अपनी कविताओं में की है ।

---

1 पागलों का एक वर्णन -आवाज़ भी एक जगह है-मंगलेश डबराल पृ.सं. 22 प्र. सं. 2000

इस कठिन और चुनौतीपूर्ण समय से गुज़रते मनुष्य ने उसका सामना करना सीखा है। उपनिवेशवाद ने मध्यवर्गीय मनस्थिति पर गहरा असर डाला है । अपनी सुरक्षा हेतु वह चारों ओर के जलन को अनदेखा करता है । स्वरक्षा की मध्यवर्गीय मनस्थिति सामाजिक संवन्धों से उसे अलगाती है । अपने घर की सुरक्षा के सम्मुख पराये घर से आते जलने की गन्ध को वह अनदेखा करता है । बोधिसत्व मध्यवर्ग की सभी कमज़ोरियों से परिचित समकालीन कवि हैं। उनकी 'गंध'-कविता छोटी है फिर भी उपनिवेशवादी सभ्यता से उपजी मनस्थिति का सशक्त मसलन है । सवेरे से कवि को कुछ जलने की गन्ध अनुभव होती है । घर के कोने कोने छान ड़ालने पर उन्हें मालुम हुआ कि वह पूर्णतः सुरक्षित है । रात में सोने तक वह गन्ध लगातार आ रही थी । अपने घर को सुरक्षित पाकर अपनी सुरक्षा हेतु पराये घर के मामलों में दखल देना उन्हें अनुचित लगा ।

हमारे घर में
मैजूद थी कुछ जलने की गंध
पर खुशी थी हमें, हमारे यहाँ आग नही लगी थी

जनोन्मुखी अन्तर्दृष्टि रखनेवाली बोधिसत्व की कवितायें एक नये संसार को रचती हैं । भारतीय संस्कृति के अछूत कोनों से गुज़रकर कविता में एक नये साँस्कृतिक व्यक्तित्व की वे रचना करते हैं । "मज़दूर औरतें" यथार्थ के भिन्न-भिन्न कोणों को तलाशती है । उपनिवेशवादी सभ्यता की मार ऊपरी तबके की औपचारिकता के पर्तों को मज़बूत करती है । निचले तबके के लोग भिन्न-भिन्न कठिनाईयों में जकड़कर एक निर्मम वातावरण से निर्मम अन्दाज़ से गुज़रते हैं । मज़दूरा औरतें भी पुरुष सी बीड़ी पीती है । वहाँ स्त्री के अतिस्वातंत्र्य या अपथ चलन की बात नहीं उठती बल्कि पुरुष के समान बोझ उठाने केलिये बाध्य औरत ने आज परिवेश के प्रति निर्ममता बरतना सीखा है । इन यातनाओं से गुज़रने की वह आदी हो गयी है । मानसिक तौर से परिस्थितियों के दबाब में पडकर आज वह आत्मबल खोती नहीं, आत्मबल पाती है ।

---

1. गंध - हम जो नदियों का संगम है बोधिसत्व पृ.सं. 25 पृ. सं. 2000

मज़दूर औरत
मजे से पीती ह वाड़ी
बीड़ी की आग
मज़दूरा औरतों की छाती
एक राख
दूसरी आग की कोठरी ।[1]

"माँ को पत्र" बोधिसत्व की एक छाटी सी कविता है । इसमें कड़ी मेहनत करके बच्चे केलिये रुपया भेजती माँ का चित्र बहुत दर्दनाक लगता है । पुत्र माँ को अपने सपने का बखान करता हुआ पत्र लिखता है । यद्यपि वह उसके सपने का परामर्श मात्र है फिर भी वह पूर्णतः उस समाज का यथार्थ है जिसके हम सब सदस्य हैं । आटा पीसती, धान कूटती, सानी पानी करती, फटी धोती सीती माँ ही ड़ाक से बच्चे को कपड़े सिलाने के लिये रुपये भेज रही है । उपनिवेशवादी सभ्यता के तले आर्थिक स्थिति कैसी खौफनाक अवस्था में पहुँच गयी है । इसका बेसाख्ता चित्र 'माँ को पत्र' में उभरा है ।

मैं ने सपना देखा माँ
तुम धान कूट रही हो
तुम आटा पीस रही हो
तुम उपले पां थ रही हो
तुम बासन मांज रही हो

तुम उधरी फटी धोती सी रही हो
तुम मुझे ड़ाक से
कपड़े सिलाने केलिये
रुपये भेज रही हो ।[2]

1. मज़दूरा औरतें सिर्फ कवि नहीं-बोधिसत्व पृ.सं. 67 प्र. सं. 1991
2. माँ को पत्र-सिर्फ कवि नहीं बोधिसत्व पृ.सं. 64 प्र. सं. 1991

सॉस्कृतिक अन्तर्विरोध का एक प्रबल पक्ष यहाँ प्रस्तुत हुआ है । महानगरीय जीवन और समय की भयावहता को जोड़कर साँस्कृतिक अन्तर्विरोध का एक अलग रूप कई समकालीन कवियों ने प्रस्तुत किया है । काल की अमानवीयता को साँस्कृतिक पतन से संबद्ध करके उन्होंने देखा है ।

साँस्कृतिक अमानवीयता को कई समकालीन कवियों ने पहचाना और रचनाओं के ज़रिये स्पष्ट किया है । औसत जीवन पर पड़ते विकराल आतंक का रूप कई समकालीन कविताओं में भिन्न-भिन्न स्तर पर अभिव्यक्त हुआ है । इस नवउपनिवेशवादी युग में मनुष्य पर भय और आतंक सवार है । रात में गूँजती मोटर साइकिल की आवाज़ आनेवाली किसी विकराल आपत्ति की सूचना सी लगती है । एक के बाद एक होकर कोई न कोई दारुण घटना नगरों में घटित होती है । नगरवासी एक दूसरे से जुड़ा नहीं । उपनिवेशवादी सभ्यता ने ऐसी एक स्थिति में मनुष्य को पहुँचा दिया है । इस आतंक भरे वातावरण को "होटल कमरे में रात कों" में कवि प्रयाग शुक्ल ने चित्रित किया है ।

कौन है जो भगाए ले जा रहा है
मोटर साइकिल रात को
सड़कों पर
सोया है शहर जब ।
क्या है भगोड़ा वह
या फिर गया था वह छोड़ने या
लेने को किसी को स्टेशन ![1]

---

1. होटल कमरे में रात को -बीते कितने बरस -प्रयाग शुक्ल पृ.सं. 4 प्र. सं. 1993

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने भी ऐसे आतंक भरे माहौल के कई चित्र अपनी कविताओं में खींचे हैं। "लोग गायक हो रहे हैं" में ध्वंस के एक भिन्न पक्ष का कवि ने उद्घाटन किया है । काल की गतिशीलता और विकासमान प्रक्रिया के बीच सुस्थिर खड़ा भाव आतंक का है । महानगरीय सभ्यता का विकराल रूप कवि ने इसमें प्रस्तुत किया है ।

लोग ऐसे भाग रहे हैं
कि लगता है कुछ ही घंटों में
खाली हो जाएगी कनॉट प्लेस
सबको आशा है
कि सबको मिल जाएगी गाड़ी
सबको भय है
कि सबकी छूट जाएगी गाड़ी । [1]

इस आतंक भरे वातावरण में ड़रते ड़रते उसने आत्मबल खोया नहीं पाया है । असुरक्षित वातावरण में भी वह आशा बाँध बैठा है । जीवन के अपरिहार्य अंग असुरक्षित वातावरण को मनुष्य ने आज अपने आप में पचाया है । इस विलयन की वजह से निर्मम ढंग से झुलसते सत्यों से जूझना उसने सीखा है ।

मलयज की तूलिका समष्टि चेतना को समग्रता से पकड़ती है । आज की दुनिया जटिल ही नहीं संश्लिष्ट भी है । समकालीन कविता उस जीवन-संदर्भ को खोजने का सर्जनात्मक प्रयास है । इसलिए समकालीन कवि मलयज की कविताओं में मनुष्य के संघर्ष की दहशत भरी दुनिया की छटपटाहट की बहुआयामी दिशायें चिन्हित हुई हैं । उनकी बहुत सारी कवितायें क्रूर मानसिकता और दहशत भरी चुप्पी का आकलन करती है । छपे हुए

---

1 कनॉट प्लेस -आखर अनन्त-विश्वनाथ प्रसाद तिवारी पृ.सं. 9 प्र. सं. 1991

आतंक रूपी किताब के हिले हुए पन्ने से बिखरे पड़े अक्षरों को एकत्रित करके वे पुनः कविता को संभव करते हैं । निजी परिवेश में लगातार जख्मी होकर छटपटाती आत्माओं को मुक्ति दिलवाने की चाह मलयज की कई कविताओं में है । तमाम दुनिया में आतंक छाया हुआ है । उस माहोल से स्वयं कवि भी ड़रा हुआ है । उनके हाथ की जड़ तूलिका भी उस तनावयुक्त वातावरण को रचना संदर्भ नहीं बना सकती । क्योंकि ड़र हवा की तरह सब कहीं व्याप्त है । प्रकाश और अन्धाकर तक आतंक से मुक्त नहीं । सूरज के डूबने के पहले की शेष रोशनी में ड़र अलिखित शब्द की तरह कैद हो गया है । सबसे फिसलकर वह शब्द भागने की कोशिश करता है तो भी मलयज की ड़री हुई तूलिका उसे पकड़ती ही है । उस आतंक भरे माहौल को मलयज की यह छोटी कविता सफलतापूर्वक आकलित करती है ।

मेरे हाथ में कलम
ड़र हवा है
डूबने के पहले सूरज
पल भर थमकर
दहलीज पर अंधेरे के बढे हुए हाथ से
हाथ मिलाता है
उँगलियों की लम्बी छायाएँ
पोंछ देती हैं आंखों में ड़ब ड़ब
रोशनी के बचे खुचे रूप
मेरा ड़र जिनमें कैद है अलिखित शब्द की तरह
उछलकर भागता है वह शब्द
और कलम का आखेट हो जाता है ।[1]

---

1. डर हवा है-अपने होने को अप्रकाशित करता हुआ - मलयज पृ.सं. 29 प्र. सं. 1980

समकालीन कवियों की रचनाधर्मिता आलोचना से संपृक्त होकर आगे बढती है । काल को सपाट कहकर उन्होंने सरलीकृत नहीं किया है । अपनी रचना यात्रा में इन कवियों ने गतिशील किन्तु बीहड़ काल का इतिहास से जोड़कर परिभाषित किया है । युवा कवि वीरेन डंगवाल ने इस बीहड काल को इतिहास में स्थान दिया है । उन्होंने मनुष्य को वर्णाक्षर से, पोथी-पतरा से ऊँचा स्थान दिया है । उपनिवेशवादी सभ्यता से जीवन में निर्ममता छायी है । मनुष्य भला बनने केलिये अधिक औपचारिक होता है । तब कई आयाचित स्थितियाँ पैदा होती हैं। मनुष्य को सरकस के जानवरों की भाँति भला बनना पड़ता है । उस सतही बुनावट से परे निचले तबके के जीवन में कई अन्तरंगतायें हैं जिनकी ओर वीरेन डंगवाल ने इशारा किया है । मानव-संबन्धों की अर्थवत्ता को वे उसी अर्थ में ही पहचानना चाहते हैं । सरकस के बने बनाये जानवर से बढकर फौजी रामसिंह से पूछा गया सवाल वर्तमान व्यवस्था की नृशंसता से पूछा गया सवाल है । गाँव और नगर से जुड़ी कई स्मृतियाँ इसमें है । एक ही जीवन में दो तरह की ज़िन्दिगी जीने केलिये अभिशक्त आदमी की अन्तरंगतायें वीरेन डंगवाल की "रामसिंह" कविता में चिन्हित हैं । साँस्कृतिक अन्तर्विरोध की ऐसी स्थितियाँ उनकी कई कवितओं में मयस्तर हैं । "वीरेन डंगवाल की कविता कल के विपर्यय से, काल की अयाचितता से अपना कालबोध निर्णीत करती है जिसे एक समकालीन कवि का काल-सापेक्ष रचनात्मक दायित्व समझना चाहिए ।"[1] छुट्टी पर अपने घर जाते रामसिंह से पूछे गये सवालों में अपनी मिट्टी की सोंधी गन्ध है । साँस्कृतिक अन्तर्विरोध का एक गहरा पर्त यहाँ खुलता है ।

कहाँ की होती है वह मिट्टी
जो हर रोज़ साफ करने के बावजूद
तुम्हारे भारी बूटों के तलवों में चिपक जाती है ?
कौन होते हैं वे लोग जो जब मरते हैं

---

1. समकालीन हिन्दी कविता डॉ.ए अरविन्दाक्षन पृ.सं. 78 प्र. सं. 1998

तो उस वक्त भी नफ़रत से आँख उठाकर तुम्हें देखते हैं ?
आँख मूँदने से पहले याद करो रामसिंह और चलो ।[1]

'धौलगिरी' भारतीय संस्कृति की सुरक्षा का प्रतीक रूप हिमालय की एक चोटी है । उस धौलगिरी को देखने के बाद विनोदकुमार शुक्ल की मानसिकता बदलती है । क्योंकि पूर्वजों का उन्होंने सिर्फ चित्र देखा था । इस चोटी के दर्शन के बाद उनके मन में अनदेखे पूर्वजों की याद आने लगी । चारों ओर की पदार्थमयता के ऊपर मंड़राते हुए एक और लोक को भी वे अपनी कविता में प्रस्तुत करते हैं । यह उस समय की याद दिलाती है जब पृथ्वी वीरान थी। मनुष्य की इच्छा, आशा और अर्थमयता की शाश्वत संरचना से युक्त उस असामान्य लोक की भी पहचान वे इस दुनिया में करते हैं । एक ऐसे समय में जब अनेक शक्तियाँ हमें सिर्फ एक ही दुनिया तक महसूद और मज़बूर रखने का षड़यन्त्र सा कर ही है, ऐसी कविता का गहरा मानवीय मूल्य है, क्योंकि वह हमें अपनी अपर्याप्तता और घटित के व्यक्त न होने की विवशता का बोध कराते हुए शाश्वत और अनंत को भी हमारी पकड़, हमारे पड़ोस में लाती है ।"[2]

लेकिन धौलगिरी को देखने के बाद
मैं अपने पूर्वजों के चित्र नहीं
पूर्वजों को याद करता हूँ ।[3]

'अहिंसा और भीख माँगते बच्चे' में अरुण कमल ने दो अन्तर्विरोधी चित्रों को मिलाया है । जिस महावीर तीर्थंकर ने अजेय अहिंसा का उपदेश दिया था इसी की शान्ति पत्थरों में बंधी है । उन जैनों के भव्य मंदिर के बाहर भूखे और नंगे बच्चे चील की तरह एक दूसरे पर झपट मारते हैं । मारवाड़ी बहु सिक्के लुटाती हैं । गहन अन्तर्विरोधी चित्र कवि ने इसमें प्रस्तुत है ।

---

1. रामसिंह -इसी दुनिया में -वीरेन डंगवाल पृ.सं. 19 प्र. सं. 1991
2. सब कुछ होना बचा रहेगा की भूमिका से अशोकवाजपेयी-प्र. सं. 1992
3. धौलगिरी-सब होना बचा रहेगा-विनोद कुमार शुक्ल पृ.सं. 15. सं.व 1992

मंदिर के बाहर खड़े हैं भिखमंगे, भूखे नंगे बच्चे
जैसे ही अन्दर से शान्त पवित्र हो बाहर आप रखते हैं
कदम कि बिलकुल चील की तरह झपट्टा मारते हैं बच्चे
भगवान महावीर के नाम पर मारवाड़ी बहुओं ने
लुटायें हैं सिक्के खुले हाथ, खनखनाये कंगन
और एक दूसरे पर गिरते भहराते लूटने दौड़े हैं बच्चे ।[1]

'यात्रा' कविता में छुट्टी बिताकर कलकत्ते लौटने केलिये मज़बूर पंजाबी नौकर का चित्रण अरुण कमल ने किया है । उसकी तलुवों में मुल्क से बहुत दूर होने पर भी पंजाब की धूल बाकी है । अपनी मिट्टी की महक को पुनः सृजन का केन्द्र बनाने की एक हूबहू चाह समकालीन कवियों में है । उपनिवेशवादी सभ्यता के भीतर के बदलते परिदृश्य को भी कवि ने खूब पहचाना है । दूर नगर की भीड़ से गुज़रते वक्त भी मनुष्य के भीतर मातृदेश की याद बनी रहती है । छुट्टी बिताकर लौटने में देरी होती तो मालुम नहीं किनकी छँटनी हुई होगी या किन किन के रिक्त स्थानों की पूर्ति हुई होगी । आज अमरिका जैसे विकसित देशों में देखते देखते बड़े बड़े आहदेवालों की छँटनी हो जाती है । तब अविकसित देशों की अवस्था क्या होगी । एक मुसाफिर द्वारा सुलगायी माचिस मज़दूरों के चेहरे के उस तनाव को दिखाकर बुझ जाती है ।

तलहथियों की आड़ में बगलगीर मुसाफिर ने
सुलगायी माचिस
और उधारती गयी लौ चेहरे के अनगिनत रहस्य
कलकत्ते के कारखाने में बहाल

---

1. अहिंसा और भीख माँगते बच्चे अपनी केवल धार -अरुण कमल पृ.सं. 47 तृ. सं. 1999

जलन्धर का एक मज़दूर
जा रहा है वापस फिर काम पर,
छूट गया है मुल्क बहुत दूर
बस तलवों में बाकी है
थोड़ी सी धूल पंजाब की ।[1]

सत्ता और ताकत आज अत्याचारो के पास ही बची है । हत्यारा आज खुले आम गलियों और सड़कों में धूम रहा है । उसके विरुद्ध कोई भी उँगली नहीं उठा सकता । भय ने भी आज मुखौटा लगा दिया है । सांप्रदायिकता और धर्मनिरपेक्षता के साहचर्य और द्वद्वं ने हमारी संस्कृति, इतिहास, राजनीति और जीवन पद्धति तक को आक्रान्त कर रखा है । भारतीय राष्ट्रवाद आज एक संकीर्ण अवस्था में है । धर्मान्धता ने सारे देश को दारुण अवस्था में पहुँचा दिया है । बाबरी मस्जिद की घटना के पश्चात देश की अवस्था खूब विकराल बन गयी है । धर्मान्धता ने मनुष्य को बर्बर बना दिया है। इस संदर्भ में कवि राजेश जोशी को आज की बर्बरता पहले से ज्यादा भयानक और खतरनाक लगती है । आज बर्बरता ने भी एक नयी तकनीक बना ली है । हर पल यहाँ साँप्रदायिक दंगे की आग जलती रहती है । मालूम नहीं किस पल यहाँ बम गिरेगा कर्फ्यू का ऐलान करती गाड़ी घूमेगी । हर क्षण मनुष्य केलिये खतरनाक बन गया है । जब तक एक अपील लिखी जाती है तब तक दूसरी अपील लिखने योग्य दूसरा दंगा फूट पड़ता है । वस्तुस्थिति को बहुत कम शब्दों के ज़रिये राजेश जोशी आकलित करते हैं ।

जब तक मैं एक अपील लिखता हूँ
आग लग चुकी होती है सारे शहर में

---

1. यात्रा-अपनी केवल धार -अरुण कमल पृ.सं. 12 तृ. सं. 1999

हिज्जे ठीक करता हूँ जब अपील के
कर्फ्यू का ऐलान करती घूमने लगती है गाड़ी ।[1]

देवी प्रसाद मिश्र परम्परा सजग के कवि हैं । जीवन के पक्ष में कविता लिखते समय देवीप्रसाद मिश्रा आत्मसजग ही नहीं परम्परा की सजगता के कवि भी हो जाते हैं । समकालीन जीवन के हाशिये से परिचित कवि ने परम्परा को सही माने में पहचानकर उसे काव्य पाठ में बनाये रखने की कोशिश की है । परम्परा से एक नया संवन्ध जोड़ने केलिये वे उत्सुक है । वे अतीत और समकालीनता को उनकी अनिच्छिन्नता और द्वद्वात्मकता के साथ रचनात्मक संदर्भ देनेवाले एकाध कवियों में से हैं । भारतीय मनुष्य की पीड़ा और प्रतिरोध को पूरी अंतरंगता और इतिहासोन्मुखता के साथ कवि व्यक्त करते हैं । इसलिए एक ऐतिहासिक परिदृश्य में रखकर ही उनकी कविताओं की आलोचना करनी चाहिए । उनके काव्यादर्श में शब्द की बड़ी प्रासंगिकता है । वे कविता और मनुष्य के साथ के अपने संबन्ध को इस प्रकार परिभाषित करते हैं ।

जैसे सिर झुकाये आदमी अनिवार्य रूप से
आनेवाले कल के बारे में सोचता है
जैसे समय अगली सदी में बेहत्तर आदमी के उद्‌भव केलिये बीतता है
जैसे संकट में आदमी साथी का हाथ थाम लेता है
ऐसा ही मेरा और कविता का नाता है ।[2]

"आदिमता और समकालीनता के बीच एक तरह का नाता भरा रिश्ता खोजते हुए उसके अनुरूप वे बहुत दूर तक अपनी विचारधारा और काव्यात्मक कल्पना को रूप या आकर

---

1. जब तक मैं एक अपील लिखता हूँ दो पक्तियों के बीच राजेश जोशी पृ.सं. 95 प्र. सं. 2000
2. नाता -प्रार्थना के शिल्प में नहीं -देवी प्रसाद मिश्र पृ.सं. 125 प्र. सं. 1989

दे पाते हैं । परम्परा के भीतर रहते हुए भी समय की त्रासदी और जटिलताओं की पूरी शिनाख्त उन्होंने पाई । उन्होंने अपनी एक कविता में लोहे को जिजीविषा-सूत्र माना है। युग की इस बर्बरता से गुज़रने पर भी जिजीविषा मनुष्य से छूटी नहीं है । हर स्थिति के प्रति निर्ममता बरतने योग्य मनस्थिति वह हासिल करता है । हर स्थिति से लोहा लेने की मनस्थिति ही मनुष्य की जीजीविषा है ! "लोहयुग" आकार में छोटी है फिर भी वह मनुष्य की उस इच्छा की पूरी शिनाख्त देती है ।

आदमी अपने रास्ते के
पहाड़ तोड़ रहा है लोहा ।
देह पसीने से लथपथ है
हथेली से खून चू रहा है
रिसाव रोकने केलिये और
जख्मों को गर्म राहत देने केलिये वह
हथेली से टपकते खून को
जीभ से चाटता है
आदमी अपने भीतर का
लोहा महसूस करता है ।[2]

समकालीन कविता दरअसल मनुष्य को ही केन्द्र में रखती है । उसकी विस्थापित साँस्कृतिक अवस्था पर उसका अधिक ज़ोर है । इससे दो प्रकार के कार्य संपन्न होते हैं; एक- कविता अपने दायित्व का निर्वाह करती है । दो- कविता में सदैव समय के सरोकारों के बिम्ब उभरते रहते हैं । साँस्कृतिक विघटन किसी व्यक्ति या जीवित समाज की समस्या नहीं है । उसे

---

1 जीवन के पक्ष में कविता - कविता का अर्थात्-परमानंद श्रीवास्तव पृ.सं. 224 प्र. सं. 1999

2. लौह युग प्रार्थना के शिल्प में नहीं - देवी प्रसाद मिश्र पृ.सं. 12 प्र. सं. 1989

व्यापक परिदृश्य में देखना अनिवार्य है सांस्कृतिक विघटन हमारे समय की सबसे ज्वलंत समस्या है जिसे समकालीन कवि विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से उभराते रहते हैं । वास्तव में समकालीन कविता की जीवन्तता का यही कारण है । इसके अभाव में समकालीन कविता जड़ और अवरुद्ध अवबोध-की कविता हो जायेगी।

अध्याय - चार

समकालीन कविता में नारी मुक्तिवादी स्वर और स्त्री कवितायें

भारतीय नारी मुक्तिवाद और उसकी साहित्यिक अभिव्यक्ति

भारतीय नारी मुक्तिवाद के दो रूप मिलते हैं । एक उसकी सक्रिय भूमिका से संबद्ध है । इसका क्षेत्र समाज है । सामाजिक क्रिया-कलाप के पक्ष के रूप में इसे देखा जाना चाहिए । स्वतंत्रता संग्राम के विस्तृत इतिहास में उन क्रिया-कलापों का स्थान है । नारी मुक्तिवाद का दूसरा रूप साहित्यिक है । साहित्य में दर्ज नारी के स्वर के माध्यम से भी नारी मुक्तिवाद शब्दबद्ध हुआ है । एक तथ्य इसमें से उभरता है । सक्रिय सामाजिक क्रियाकलाप के अभाव में कोई भी आन्दोलन लक्ष्य प्राप्त नहीं करता है । इसलिए नारी मुक्तिवाद का सीधा संबद्ध उन क्रियाकलापों से ही जोड़ा जा सकता है । लेकिन साहित्य उसकी संवेदनात्मक स्थिति की अभिव्यक्ति है । विभिन्न साहित्यिक विधाओं में विभिन्न प्रकार की मुक्ति की आकांक्षा दर्ज मिलती है । साहित्यिक अभिव्यक्ति को प्रेरणा देनेवाली स्थिति वस्तुतः सामाजिक क्रियाशीलता ही है ।

द्विवेदी युग की नारी

कविता वस्तुतः स्त्री की संवेदना के बहुत निकट है । लेकिन बहुत कम स्त्रियाँ ही इस क्षेत्र में कार्यरत हैं । स्त्री पुरुष के प्रति प्रतिद्वंदी मनोवृत्ति नहीं रखती बल्कि उसका संघर्ष नारी शोषण, असमानता, नारी अत्याचार और अर्थिक परतंत्रता के विरुद्ध है । नारी की इस विपन्न अवस्था पर विरले ही कवियों की दृष्टि गयी है । सौन्दर्य, प्रेम, अध्यात्म पक्ष आदि के पोषक के रूप में नारी सम्माननीय रही है । किसी ने उसे मानवी रूप नहीं दिया था । मैथिलीशरण गुप्त ने उपेक्षिता नारियों को ऊपर उठाने का प्रयत्न किया था । ऊर्मिला, यशोधरा, विष्णुप्रिया जैसी नारियों के त्याग को सभी ने अनदेखा किया था । मैथिलीशरण गुप्त ने नारी को अपनी पूरी गरिमा के साथ अपने खण्डकाव्यों में प्रस्तुत किया । द्विवेदी युग की नारी को कवियों ने उदासीकृत किया है । परन्तु यशोधरा का स्वाभिमानी नारी रूप अलग शिनाख्त रखती है ।

छायावादी युग की नारी

छायावाद म स्त्री का महिमा मंडित रूप ही अधिक मिलता है । फिर भी स्त्री को बन्धनों से मुक्त रखने की प्रवृत्ति भी मिलती है । पंतजी ने लिखा-

मुक्त करो नारी को मानव, चिर वंदिनी नारी को
युग की निर्मम कारा से जननी, सखी, प्यारी को ।[1]

नारी मुक्ति का प्रखर स्वर निराला की कविताओं में उपलब्ध है । 'तोड़ती पत्थर' में उन्होंने नारी का प्रगतिवादी रूप ही प्रस्तुत किया है । इसमें नारी यथार्थ के केन्द्र में पहचानी गयी । कर्मरत औरत को कवि ने प्रस्तुत किया है । सड़क के किनारे कड़ी धूप में भारी हथौड़े से पत्थर तोड़ती औरत श्रमरत नारी की प्रतिनिधि है । विपन्न अवस्था से गुज़रती मज़दूरिन औरत निराला के अनुभव क्षेत्र से जुड़ी है । यह कविता सिर्फ नारी मुक्ति से संबद्ध नहीं समग्र मानवता की मुक्ति से संबद्ध है । समय की जटिलताओं का एहसास उनके हर पात्र को ठोस और जीवंत बनाता है ।'तोड़ती पत्थर' वर्ग - चेतना का अहसास करानेवाली कविता है । वर्ग चेतना और उच्चवर्गीय व्यवस्था पर प्रहार करनेवाली यह कविता स्त्री के अनवरत श्रम के महत्व का भी उद्‌घाटन करती है । उसके सारे सपने दबा दिये गये हैं। पूरी व्यवस्था को चुनौती देती हुई यह कविता शब्दों के बाहर भी एक गूँज पैदा करती है ।

कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार
श्याम तन, भर बंधा यौवन,
नत नयन, प्रिय कर्मरत मन

---

1. सुमित्रा नंदन पन्त

गुरु हथौड़ा हाथ

करती वार -वार प्रहार

सामने तरुमालिका,, अट्टालिका प्राकार !

निराला की नारी छायावादी युग की चिर वन्दिनी नारी नहीं कर्मरत औरत है । उसमें एक अपराजेय भाव है । वह अपराजेय भाव पूर्ववर्ती कविता में नहीं है । जीवन यथार्थ के सामने निराला की नारी हार नहीं खाती ।

प्रगतिवादी युग में नारी मुक्ति की आवाज़

आर्थिक स्वतंत्रता जीवन की अनिवार्यता है । आर्थिक रूप से स्वावलंबी नारी ही पुरुष की बाराबरी कर सकती है । मार्क्सवाद ने मातृत्व को विशिष्ट माना फिर भी कालान्तर में यह महिमामंडन मात्र रह गया । प्रगतिवादी रचनाकार मार्क्सवाद से प्रभावित है । नागार्जुन ने स्त्री संबन्धी कई कवितायें लिखी हैं। उन्होंने यथार्थवादी दृष्टि से स्त्री को आंका है । स्त्री को एक शक्ति के रूप में देखा है । उनकी स्त्री कर्मरत औरत है । स्त्री के प्रति, उन कोमल भावनाओं के प्रति उन्होंने एक स्वस्थ दृष्टि हासिल की है । उनकी स्त्री बाल-बच्चों को एक वक्त का खाना जुटाती श्रमरत औरत है । उसका मुख सिर्फ चुल्हे की आग से दीप्त हो उठता है । राशन के चावल से कंकड अलग करती गर्भवती पत्नी का चित्र कवि ने यो खींचा है

राशन के चावल से कंकड़ बीन रही पत्नी बेचारी

गर्भभार से अलग शिथिल है अंग अंग

मुँह पर उसके मटमैली आभा

छप्पर पर बैठी है बिल्ली ।[2]

---

1. वह तोड़ती पत्थर अपरा निराला पृ.सं. 26 द्वि. सं. 1997 (छात्र संस्करण)
2. जयति जयति जय सर्व मंगला - चुनी हुई रचनायें नागार्जुन पृ.सं. 85 प्र. सं. 1985

त्रिलोचन ने भी नारी संबन्धी कई कविताएं लिखी है । उन्होंने नारी के कोमल भावों को गहराई से अपनी कविताओं में उभारा है । त्रिलोचन ने नारी को सहचरी और सहधर्मिणी माना है । यद्यपि त्रिलोचन की कविताओं में नारी मुक्ति की आवाज़ बुलन्द नहीं है फिर भी परिवार में और समाज में स्त्री की विभिन्न भूमिकाओं को वे मानते हैं । स्त्री मूल्य के पक्षधर कवि ने लिखा है

सहधर्मिणी सहचरी और न जाने क्या क्या
तुम हो
मेरे मन का सारा शून्य भरा है
तुमने अपनी सुधि से ।[1]

प्रगतिवादी कवियों ने समाज में स्त्री की विशिष्ट भूमिका मानी है । उनकी समाजोन्मुखता से ही स्त्री की भूमिका को मान्यता मिली है ।

नयी कविता में नारी मुक्ति का स्वर

नयी कविता पूर्ववर्ती कविता का विकसित रूप है । उसमें अधिकतर एक समन्वयात्मक दृष्टिकोण ही दिखाई पड़ा । अज्ञेय, धर्मवीर भारती जैसे कवियों ने प्रेम को अपनी कविताओं में केवल भाव नहीं माना है । उसे एक निजी अनुभव मानकर व्यापक परिप्रेक्ष्य दिया है । प्रेम की तन्मयता के क्षणों में "कान्ह मेरा कौन है" प्रश्न करती राधा भारती की भावुक उदात्त नायिका है । समाज से जुड़कर नारी का चित्र खींचने की कोशिश अज्ञेय और धर्मवीर भारती ने की है । अज्ञेय ने 'हरी घास पर क्षण भर' में तर्क करती, प्रश्न करती नारी का चित्र खींचा है । उसमें भावुकता का स्तर ही अधिक है । संघर्षपूर्ण नारी जीवन उसमें उतरा नहीं है । यद्यपि अज्ञेय और भारती ने नारी के कोमल पक्ष को ही उतारा है फिर भी उनमें नारी मुक्ति की पक्षधरता है ।

---

1. आज मैं कहीं और तुम कहीं फूल नाम है एक त्रिलोचन - पृ.सं. 32 प्र. सं. 1985

बढ़ जाता है जब सीमा से अधिक तुम्हारा मादक हास,

समझ तुरत जाता हूँ मैं कि घड़ी विदा की आयी पास ।[1]

भारतभूषण अग्रवाल की 'अग्निलीक' नारी के अपराजिता-रूप को प्रस्तुत करती है । पुरुष की महत्वाकाँक्षा की रक्षा केलिये कुचली दी जानेवाली स्त्री की यह दर्दनाक कहानी है । इसमें सीता स्वाभिमानी स्त्री के रूप में परिकल्पित है । इसकी सीता निर्मम सत्य से अवगत, अपमान के सामने भी अपराजेय भाव से खड़ी साहसी स्त्री है । पूर्ववर्ती कृतियों में सीता के त्याग, पातिव्रत्य जैसी बातों को खूब उभारने की कोशिश की थी । परन्तु भारत भूषण अग्रवाल ने स्त्री की मुक्ति पर खूब ज़ोर दिया था । अग्निलीक की सीता का हर शब्द सटीक है जो पुरुष प्रधान समाज पर कठोर प्रहार करता है । सीता अपने अधिकारों को पहचानकर उसके लिये समग्र समाज से, संघर्ष करती है जो आज की नारी क्रान्ति की स्पष्ट पथप्रदर्शक है । अश्वमेध यज्ञ केलिये राजा को पत्नी सहित विराजित होना है । इसलिए राम ने अन्त में सीता को बुलावा भेजा तो वह उबल पडी । वह दुबारा किसीके सामने अपनी पवित्रता सिद्ध करने केलिये तैयार नहीं थी । उसने वाल्मीकि से कहा कि वह पागल नहीं बल्कि पूरे होश में ही बताती है कि नारी के आँसू अंगारे हैं ।

ये आँसू नहीं है गुरुदेव, ये अंगारे हैं

यह मेरे जीवन की आग है

जो मेरे भीतर धघक रही है ।[2]

इसमें कवि ने राम को अपने अन्तर्विरोधों के साथ प्रस्तुत किया है । आज नारी अपनी स्वतंत्र सत्ता की स्वीकृति चाहती है । भारत भूषण आग्रवाल की सीता ने वर्षों पहले अपनी आँखों से झूठ का पर्दा उठा दिया था । पुरुष सत्ता की अमानवीयता का उसने ड़टकर सामना किया था । सीता कहती है

---

1. हरी घास पर क्षणभर अज्ञेय - पृ.सं. 25 प्रथम संस्करण
2. अग्निलीक - भारत भूषण अग्रवाल - पृ.सं-44 प्र. सं. 1976

आज मेरी आँखों से झूठ का पर्दा उठ गया है।,

मुझ निर्मम सत्य दिखायी दने लग गया है ।

राम ने तो मुझ बहुत पहले ही छोड़ दिया था

आज मैं भी राम को छोड़ती हूँ ।

अब मैं स्वतंत्र हूँ, मुक्त हूँ,

अपने आप में पूर्ण हूँ,

आप अपनी निर्देशिका, आप अपनी कर्त्री और आप अपनी भोक्ता हूँ ।[1]

रघुवीर सहाय ने स्त्री के मातृत्व से जुड़ी हुई कई कवितायें लिखी हैं । वे स्त्री- जागरण के पक्षपाती थे । वे नारी को बंदिनी कहकर उस पर व्यंग्य नहीं करते बल्कि उसे उस कारा से मुक्त करना चाहते हैं । भावुक धरातल से उन्होंने स्त्री को यथार्थ के धरातल पर लाकर खड़ा किया था।

वे उन्हें इन्सान का पद देना चाहते थे। जीवन में नारी की अदाकारी साबित करने को वे आतुर थे । भीड़ में अकेलापन नारी को बहुत तंग करता है । वह खोकर भी पुनः पाने की प्रतीक्षा में दिन व्यतीत करती है । रघुवीर सहाय ने नारी को उसी के नज़रिये से देखने की कोशिश की ।

लक्ष्मि, करुणावनी थी तुम, विलासी था मैं

किन्तु धिक् मेरी व्यथा को

जो और अधिक दया ही माँगती रही

बन्दिनी नारी की दया जो केवल तन का समर्पण है ।[1]

रघुवीर सहाय की नारी संबन्धी कवितायें स्त्री मुक्ति से जुड़ी मानवमुक्ति की संभावना को दर्शाना चाहती हैं । स्त्री का कारुणिक दृश्य उपस्थित करना 'नारी' के द्वारा उनका उद्देश्य नहीं । एक

---

1. अग्निलीक - भारत भूषण अग्रवाल - पृ.सं-55 प्र. सं. 1976
1. धिक मेरी व्यथा को - सीढियों पर धूप में -रघुवीर सहाय पृ.सं. 125 प्र. सं. 1960

अवांछित स्थिति में स्त्री को फिट करने की पुरुष मानसिकता पर चोट करने के साथ स्त्री का समग्रता में अंकन करना भी उनका ध्येय रहा है ।

नारी बिचारी है
पुरुष की मारी है
तन से क्षुधित है
मन से मुदित है
लपककर झपककर
अन्त में चित है ।[1]

नयी कविता में स्त्री की व्यथा और तज्जन्य सामाजिकता को उतनी प्रमुखता नहीं मिली थी । लेकिन यह ज़रूर है कि जहाँ कविता में यह विषय बनती है वहाँ वह आरोपित भी नज़र नहीं आती है । तब स्त्री संबन्धी सामाजिकता को पूरी प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करने का कार्य किया गया है । इसका कारण संभवतः यही है कि नई कविता व्यक्ति केन्द्रित संवेदना को अधिक बल देने वाली कविता रही । उसमें आन्तरिक विस्तार हमें मिलता है लेकिन जीवन के बहुकेन्द्री तथ्यों और उसकी सामाजिकता पर उसका बल कम ही रहा है । इस कारण से नारी की प्रामाणिक अवस्था की सूचनायें और उसकी कविताई की उपस्थिति के बावजूद स्त्री उपस्थिति एक मुख्य विषय नहीं है । जब कि समकालीन कविता में स्त्री कविता अपनी मौजूदगी का सही -सही परिचय दे रही है। यह प्रसंग वस्तुतः कविता दृष्टि के इतिहास से भी संबन्धित है ।

समकालीन कविता में नारी मुक्ति का स्वर

समकालीन मानव-समाज निस्संग, तटस्थ, पक्षहीन होता जा रहा है । इस समाज के हर एक को दूसरों की आपत्ति निजी महसूस नहीं होती । इस परिवेश में सारे मानवीय संबन्ध

---

1. नारी- सीढियों पर धूप में रघुवीर सहाय पृ.सं. 172 प्र. सं. 1960

अमानवीय बनते जा रहे हैं । जोखिम उठाने से भी आदमी कतराता है । ऐसे खौफनाक समय को और समाज का समकालीन कविता समग्रता से पकड़ती है । इस माहौल में स्त्री की अदाकारी भी समग्रता से पहचानी जाती है । स्त्री और उससे जुड़े कई प्रसंग समकालीन कविता के विषय बनने लगे हैं । समकालीन कवियों ने नारी मुक्ति संबन्धी कई कवितायें लिखी हैं । नारी की विपन्न, शोषित अवस्था पर ही नहीं उसके स्वत्व की पहचान पर भी उनकी दृष्टि पड़ने लगी है । पूर्ववर्ती कविता में नारी की बहुत कम छवियाँ ही अंकित हुई है । यह नारी केलिए आश्वस्ति है कि समकालीन कवि ने स्त्री स्वत्व को उसी की दृष्टि से पहचानने और उसे मुक्ति पथ पर अग्रसर कराने का प्रयत्न शुरू किया है । अरुण कमल, आलोक धन्वा आदि कवि स्त्री-मुक्ति का स्वर कविता में बुलन्द करते है । ये कवितायें नारी मुक्ति आन्दोलन को प्रबुद्ध करने का महज एक माध्यम नहीं हैं । इसका संबन्ध नारी मुक्ति से ही है । उनकी कवितायें नारी की विपन्नावस्था का चित्र ही नहीं खींचती बल्कि उसके प्रति प्रतिक्रियान्वित भी होती हैं । उनकी कविताओं को नारी मुक्ति पक्षधरता की कविता माननी चाहिए । पूर्ववर्ती कविता से भिन्न समकालीन कविता में स्त्री-स्वत्व की पहचान स्पष्ट और स्तरीय अवबोध है ।

समाज में प्रगतिवादी विचारों के होते हुए भी नारी पारिवारिक दायरे में बन्द है । समकालीन दौर के अरुण कमल, राजेश जोशी, आलोक धन्वा, बोधिसत्व आदि कवियों ने स्त्री को उसकी विपन्नावस्था से ऊपर उठाने और मुक्ति दिलवाने की कोशिश की है । 'एक नवजात बच्ची को प्यार' कविता में अरुण कमल ने एक नन्नी-नन्नी बच्ची के प्रति होनेवाली अवहेलना का चित्र खींचा है । बच्ची होने के नाते किसीने उसे चूमा तक नहीं । एक और शापग्रस्त जीवन को देखकर माँ मुँह फेरकर रोती है । पिता बाहर ही बाहर रहे और किसीने उसे बधावा तक नहीं दिया । कविता के अन्त तक आते-आते कवि समग्र नारी-वर्ग का ठाठस बंधाते हैं कि दुनिया बदल रही है । समय के प्रवाह में नारी केलिये ही यह दुनिया धुल रही है । इसलिए वे

नारी को तेज़ कदमों से आगे बढ़ने का आह्वान देते है ।

आज वही नहीं है दुनिया उतनी कठोर
जो कल या परसा थी
समय के प्रवाह में
तुम्हारे ही लिए धुल रही है दुनिया
जल्दी जल्दी बढो मेरी बच्ची
जल्दी जल्दी ।[1]

डोल हाथ में टाँगे नल पर पानी भरने जाती गर्भवती भौजी की संकल्पना अरुण कमल के शब्दों में जीवंत हो उठी है । आर्थिक लाचारी से विपन्न असहाय नारी केवल सहानुभूति का पात्र नहीं । इन चित्रों के द्वारा उभरी करुण संवेदना वर्तमान व्यवस्था के अर्थिक और सामाजिक पहलुओं को उजागर करती है । अन्तर्विरोधों से भरी वर्तमान व्यवस्था ही इस सत्य केलिये जिम्मेदार है । नारी मुक्ति की आवाज़ को बुलन्द करनेवाली इस कविता में सर्वहारा वर्ग की मुक्ति की ही अधिक प्रासंगिकता है । क्योंकि नारी मुक्ति सर्वहारा की मुक्ति से गहरी जुड़ी है ।

भौजी, ड़ोल हाथ में टाँगे
मत जाओ नल पर पानी भरने
तुम्हारा ड़ोलता है पेट
झूलता है अन्दर बँधा हुआ बच्चा

तुम गिर जाओंगी
और बउआ..... [2]

---

1. एक नवजात बच्ची को प्यार - अपनी केवल धार-अरुण कमल पृ.सं. 49 तृ. सं. 1999
2. धरती और भार अपनी केवल धार अरुण कमल पृ. सं. 20 तृ. सं. 1999

राजेश जोशी की कविताओं का मुख्य सरोकार मनुष्य ही है । वर्तमान दुनिया और उसमें जीवित मनुष्य का संघर्ष ही उनकी कविताओं का केन्द्रविन्दु है । कवि की प्रतिबद्धता सदैव सताय हुए आदमी के पक्ष में है । उनकी कविताओं में उभरता व्यंग्य जीवन संदर्भों से उपजा व्यंग्य है । इस व्यंग्य और करुणा के बीच का संबन्ध बहुत गहरा है । सताये हुए मनुष्य की मुक्ति की आकाँक्षा में उनकी नारी मुक्ति की कामना बुलन्द है । नष्ट होती स्मृतियों और चीज़ों के बहाने दुनिया को बचाये रखने का संघर्ष उनकी कविताओं में मिलता है । "औरत की हथेलियों की ओट में काँपते दिये की लौ और बूढी औरत की कमज़ोर आवाज़ में सुरक्षित गीत, विश्वास, उम्मीद और विरासत की रक्षा ही नहीं करती बल्कि उनमें धरोहर को बचाने का संघर्ष भी ध्वनित है ।"[1]

एक औरत हथेलियों की ओट में
दिये की काँपती लौ को बुझने से बचा रही है
एक बहुत बूढ़ी औरत कमज़ोर आवाज़ में गुनगुनाते हुए
अपनी छोटी बहू को अपनी माँ से सुना गीत सुना रही है ।
बची है यह दुनिया
कि कोई न कोई, कहीं न कहीं बचा रहा है हर पल[2]

नारी के नारीत्व की उद्घोषण करने के साथ ही अपनी अनुपस्थिति में भी उपस्थिति, चुप्पी में भी प्रखर वाचालता दिखाती 'प्रतिध्वनि' की नारी आज की जाग्रत नारी का प्रतीक है । अपना बातूनीपन और सपने खोकर परछाई की तरह पुरुष के हर वाक्य के अन्तिम शब्द को दोहराती पीछे चलती नारी में आगामी पीढी को रूपायित करने की अपूर्व क्षमता है । उस अजेय शक्ति को अनदेखा नहीं किया जा सकता । कवि ने औरत की इस शक्ति को खूब माना है ।

---

1. वैचारिक निष्ठा की कवितायें हेमंत कुकेरती पृ. सं. 87 उद्भावना -फरवरी 2001
2. बचाना दो पंक्तियों के बीच-राजेश जोशी पृ सं 66 प्र सं 2000

मुझे कई बार लगता है
स्त्रियाँ भी अगर पुरुषों की तरह कम बोलतीं
तो कितनी सुनी लगती यह धरती
और बच्चे कितनी देर से सीख पाते बोलना[1]

आलोक धन्वा की कवितायें सामाजिक परिप्रेक्ष्य को खूब प्रधानता देती है । "भागी हुई लड़कियाँ" कविता व्यक्ति के विभक्त व्यक्तित्व की ओर संकेत करती है फिर भी उसका दायरा गहरा और व्यापक है । मध्यवर्गीय मानसिकता से जुड़ी कविता होने पर भी यह कविता भिन्न भिन्न कालों और आयामों का भी उद्घाटन करती है । यह कविता पुरानी शती और सामन्ती मनस्थिति के अंकन के बावजूद भी नारी मुक्ति से संबद्ध है । नारी मुक्ति के पक्षधर कवि ने मध्यवर्गीय घरों की लड़कियों के भाग जाने का बखान करके कविता खतम नहीं की है। इसे वे नारी की मज़बूरी कहते हैं । संस्कार प्रिय मानसिकता का दावा करने पर भी भारतीय समाज उस रूढिवादी मनस्थिति से मुक्त नहीं है । हमारी हर संवेदना पर इस मनस्थिति की छाया पड़ी है । यह कविता स्त्री के आज़ाद व्यक्तित्व की तरफदारी ही करती है । क्योंकि सिर्फ बच्चों को जन्म देना ही स्त्री होना नही हैं । उसके परे भी नारी का एक स्वत्व है, अहमियत है, एक विशाल संसार है । वह महज भोगलित्सा से संबद्ध बात नहीं है । मध्यवर्गीय परिवारों में वह भागना 'कुलीनता की हिंसा है। "प्रस्तुत कविता का प्रमुख थल संस्कार के नाम पर स्वीकृत संस्कारहीनता, पारम्परिकता के नाम पर स्वीकृत जड़ता है । हमारे नागरिक बोध में ही नही, बल्कि हमारी सूक्ष्म संवेदनाओं में इस जड़ता का समावेश है ।"[2] यह कविता समाज में व्याप्त परम्परागत स्त्री संबन्धी विचार और नारी उत्पीड़न के विरुद्ध गहरी प्रतिक्रिया व्यक्त करती है । पुरुष वर्चस्ववाली समाज की जड़ता पर यह कविता प्रहार करती है । उस जड़ता को तोड़ने में आज नारी सक्षम हो गयी है । उसके भागने के पीछे और भी कई जीवन प्रसंग जुड़े हुए हैं।

---

1. प्रतिध्वनि-दो पंक्तियों के बीच-राजेश जोशी पृ सं 48 प्र सं 2000
2. यथार्थ की तलाश की कविता -ड़ॉ ए अरविन्दाक्षन पृ सं 24 प्र सं 2001

कई दूसर जीवन प्रसंग है
जिनके साथ वह जा सकती है
कुछ भी कर सकती है
सिर्फ जन्म देना ही स्त्री होना नहीं है ।[1]

स्त्री अपने हर रूप में व्यक्तित्व की ही खोज में भटकती है । पत्नी, प्रेमिका और वेश्या सभी रूपों में वह स्वत्व पाना चाहती है । जब वह भटकती है तो एक ओर वह स्वयं आतंकिता है दूसरी ओर पूरे समाज को भी आतंकित करती है ।

कितना आतंकित होते हो
जब स्त्री बेखौल भटकती है
ढूँढती हुई अपना व्यक्तित्व
एक ही साथ वेश्याओं और पत्नियों
और प्रेमिकाओं में ।[2]

"माँ का नाच" में बोधिसत्व ने स्त्री जाति की अनंत और असीम पीड़ा को शब्दबद्ध किया है । वह विधवा माँ रोती, बिलखती, गाती हुई नाचती है । उसके हर कदम और हर लय में उसकी कसक की अनुगूँजें हैं । किन्तु वह सब कुछ भूलकर आगे बढ़ती है । यह अपराजेय भाव ही नारी मुक्ति आन्दोलन की नींव है ।

वह नाचती रही बिलखते हुए
धरती के इस छोर से उस छोर तक
सब भरे थे उनकी नाच की धमक से
सब में समाया हुआ था उसका बिलख़ता हुआ गाना।[3]

---

1. भागी हुई लड़कियाँ - दुनिया रोज़ बनती है आलोक धन्वा पृ सं 43-44 प्र सं 1998
2. भागी हुई लड़कियाँ दुनिया रोज़ बनती है आलोक धन्वा - पृ सं 45 प्र सं 1998
3. माँ का नाच-हम जो नदियों का संगम है बोधिसत्व पृ.सं.87 प्र. सं. 2001

"विधवा माँ का नाच, जिसने अपनी आँखों से देखा है उन्हें यह कविता स्त्री-जाति की आखिरी चीख की तरह लग सकती है और जिन्होंने नहीं देखा वे महसूस कर सकते हैं एक माँ के असीम दुःख को ।"[1]

समकालीन कविता की स्त्री-रचनात्मकता

अभी तक नारी मौजूदा सामाजिक व्यवस्था के तहत अपने अधिकारों केलिए लड़ रही थी । धीरे धीरे वह इस बात से वाकिफ हुई कि औरतों को उनकी मौलिक स्थिति का बोध-कराए बिना नारीवाद मंज़िल तक नहीं पहूँचेगा । इसलिए नारी खुद अपने को सिखाने लगी । इस दौरान वह सामाजिक व्यवस्था और उसकी विरोधी ताकतों को भी पहचानने लगी । समकालीन कविता में स्त्री संघर्ष अपने आप में एक विषय है ।

आजकल स्त्री-लेखन को खूब स्वीकृति मिल रही है । लेखिकाओं ने स्त्रीत्व की दृष्टि से अपने वर्ग की मानसिक जटिलताओं को विश्लेषित करना शुरू किया है । सुनीता जैन के शब्दों में "आज नारी आमंत्रित करने और अपमानित करने योग्य एक क्रय वस्तु बन गयी है ।[2] स्त्री की उपलब्धि पर पुरुष-समाज इस कदर तक ईष्यालू हो गया है कि उसे दोयम दर्जे का घोषित करने की उन्मुखता सी दीखती है । यद्यापि मनोवैज्ञानिक स्तर पर स्त्री को समान दर्जे का मानने तक पुरुष समाज सुधरा नहीं है फिर भी स्त्री रचनायें उस मान्यता को तोड़ने में काफी हद तक सक्षम हुई हैं । स्वीकार और निषेध के बीच भी नारी साहित्य के ज़रिये अपने को और अपने जीवन को पुनः परिभाषित करने लगी है । साहित्य पहले स्त्री केलिये कवच था, फिर आत्मान्वेषण की राह और अब हथियार है । साहित्य के सृजन से आज उसकी अस्मिता पहचानी जाती है, निजता की रक्षा होती है और वरण की स्वतंत्रता भी मिलती है ।"आज के

---

1. संगम के मुहाने पर दर्द का सैलाब-हीरालाल नागर पृ.सं. 313 पल प्रतिपल सितंबर 2000
2. शायद ही कहीं ऐसा रुग्ण मानस हो-सुनीता जैन पृ.सं.10 संचेतना 1999

लेखन में औरत पात्र अपनी स्थिर निष्क्रियता को तोड़कर अपने पक्ष में गवाही देने में समर्थ बन रही है ।"[1] यह अपराजेय भाव ही आज नारी का सुरक्षा कवच है ।

निचले तबके के लोगों पर होनेवाले अत्याचारों के विरुद्ध प्रगतिवादी कविता का रुख विद्रोहात्मक था । समकालीन कविता ने एक भिन्न ढंग से उसे परिभाषित किया । वह समग्र मनुष्य विरोधी शक्तियों के विरुद्ध प्रतिक्रियान्वित हुई । आग्नेय ने कविता को सशस्त्र क्रान्ति का हथियार माना । आज कविता इतनी बदल गयी है कि उसमें सांस्कृतिक स्वत्वान्वेषण की ही प्रासंगिकता है । आज के संदर्भ के अनुसार समकालीन कविता में कर्म, भूमंडलीकरण, निजीकरण और उदारीकरण की ही खूब प्रासंगिकता है । सबसे मुख्य बात यही है कि आम आदमी ही समकालीन कविता के केन्द्र में है । परिवेश के बदलने के साथ-साथ जीवन के सारे के सारे मूल्य बदले और विघटित हुए । इसमें स्त्री शोषण का पक्ष काफी सशक्त है । नारी का विद्रोह पिता या पति से नहीं बल्कि हर दृष्टि से अपने को निचले तबके में रखनेवाले पुरुष स्वत्व से है । सार्वकालिक और सार्वभैमिक दृष्टि से इस बात का महत्व है । संस्कृति, सभ्यता, शिक्षा, अर्थ सभी दृष्टियों से विकास के पथ से गुज़रने पर भी नारी के प्रति भारतीय समाज का दृष्टिकोण आज भी रूढिग्रस्त है । आज भी लड़की बोझ समझी जाती है और प्रौद्योगिक विकास का दुरुपयोग करके स्त्री भ्रूण की हत्या तक की जाती है । भारतीय समाज आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से उसे कभी स्वतंत्र होने नहीं देता । जिस समाज में स्त्री दोयम दर्जे की सदस्य है, अपने अधिकारों और अपनी हैसियत के प्रति सचेत नहीं है, वह शोषण का शिकार बनी ही रहेगी । इस साजिश से नारी वर्ग को मुक्त करने के लिये आज नारी की ओर से खूब प्रयास हो रहा है । नारी को अपनी हैसियत से अवगत कराने केलिये कात्यायनी, अनामिका, अर्चना वर्मा, सुमन राजे जैसी कई कवयित्रियाँ रचनारत हैं । पुरुष के साथ रहकर, सारे

---

1. स्वतंत्रता की कीमत चुकानी पड़ती है कमल कुमार पृ.सं. 13 संचेतना 1999

अन्तर्द्वन्द्वों को झेलते हुए ऊपर उठने का प्रयत्न व करती रहती है । इस प्रयत्न में उन्होंने स्त्री-लेखन की अपनी एक अलग भाषा भी गढ ली है ।

समकालीन स्त्री कविताओं में विभिन्न स्वर उभरते हैं । विश्लेषण की सुविधा केलिए इन्हें तीन शीर्षकों में बाँट सकते हैं ।

अवसाद का स्वर

उम्मीद का स्वर

प्रतिरोध का स्वर

अवसाद का स्वर

"एक चौकोर आँगन में बड़े भारी संसार को अंटाने की जिद था फिर एक बड़े भारी संसार में एक चौकोर आँगन को फैला देने का संकल्प स्त्री का है। इस क्रम में धीरे धीरे तय होते हैं प्रतिरोध और पक्षधरताएं"[1] अर्चना वर्मा की कविताओं की दुनिया आत्यंतिक रूप से स्त्री की दुनिया है ।

नारी के हाथ से सब फिसल जाते हैं । प्यार, पति का साथ सब । माँगे बिना उसे जो जीवन मिला है उसे वह ढोती रहती है । चाह और तृप्ति दोनों आपस में गूँथे हैं । वह चौकोर आँगन के भीतर बड़े संसार को समेटकर उसमें अदृश्य होकर समाना चाहती है ।

मेरे पास तो एक सिर्फ आँगन है चौकोर
यहाँ कहाँ अँटेगा इतना बड़ा संसार
जिसमें अदृश्य होकर
मैं समाना चाहती हूँ
इधर से समेटूँ,

---

1. लौटा है विजेता के फ्लैप से अर्चना वर्मा प्र. सं. 1993

उधर से निकल जाएगा यहाँ कहाँ फुरसत कि
सोचूँ, तुमसे मुझे क्या चाहिए
बिना कुछ चाहे, अतृप्ति के जंगल में
खो जाना चाहती हूँ ।[1]

स्त्री को अब भविष्य का मुकाबिला खुद करना पड़ेगा । उस केलिए जीवट अर्जित करने का वक्त आया है ।'लौटा है विजेता,' की कविताओं के मुखपृष्ठ पर उन्होंने लिखा है ।

उँगली छुड़ा लेने का
वक्त अब करीब है । ड़रती हूँ ।
तैयारी कभी पूरी नहीं होती
भविष्य से मुकाबिले की ।[2]

अर्चना वर्मा ने अपनी कविताओं में 'तुम' और 'मैं' शब्द का प्रयोग आद्यन्त किया है जो पुरुष और स्त्री का प्रतिनिधित्व करते हैं । पुरुष के मूँह से निकलती हर वाणी वह चुपचाप सह लेती है । सबेरे से लेकर रात लेटते तक का उसका हर कार्य घर गृहस्थी से जुड़ा है । हथकड़ियों और बेड़ियों को पहनाये बिना पुरुष ने स्त्री को एक बन्द संसार दिया है । वैद्यानिक ढंग से और हर दृष्टि से स्वतंत्र होकर भी नारी पुरुष की इजाज़त से ही साँस लेती है । पुरुष के जीवन में होनेवाले हर दुर्भाग्य के लिये पत्नी अपनी जन्मपत्री को ही दोषी ठहराती है । उसके भीतर हर पल अवसाद का समुद्र उमड़ता रहता है । काम के बाद बदतमीज़ नज़रों, बेबाक फिकरों के दरमियान अपनी सुहाग का तमगा संभालकर वह रसोई केलिये कई चीज़ें खरीद लायी । अपनी थकावट और दीनता को छिपाकर पुरुष की गलती को उसने कभी गलत नहीं कहा । औरतों को बेअक्ल स्थापित करने के पुरुष समाज के दंभ पर चाहते हुए भी उसने

---

1. न कुछ चाहकर भी लौटा है विजेता - अर्चना वर्मा पृ.सं. 52 प्र. सं. 1993
2. कविताओं में इन दिनों माँ - लौटा है - विजेता - अर्चना वर्मा पृ.सं. 52 प्र. सं. 1993

प्रहार नहीं किया । अपने थके हारे देह को उसने पति के सामने समर्पित किया स्त्री संसार के यथार्थ का एक नया आयाम इसमें खुलता है ।

आज भी उसने
थकी हारी देह को
स्वागत में सजाया
आज भी
इस दैनिक धिक्कार पर
कर्तव्य और अधिकार [1]
और प्यार का
ठप्पा लगाया
फिर एक बार बचाया
भूकंप से अपना संसार ।

दमन की पीड़ा से उबरने के मोह के रहते हुए भी समझौते के नाम पर, परिवार की सुरक्षा हेतु स्त्री चुप्पी साधती है । स्त्री की दिनचर्या कभी बदलती नहीं । इसलिए वह हर वक्त एक तनाव भरे वातावरण से गुज़रती रहती है । अर्चना वर्मा की कवितायें वहाँ से शुरु होती है जहाँ अस्वतंत्रता की जकड़ स्त्री के व्यक्तित्व को समुचित ढंग से विकसित होने नहीं देती ।

अपनी ज़िन्दगी दूसरों पर
अहसान में बदलकर वह
खुद अपनी आँखों में ऊँची उठ जाती है

---

1. दिनचर्या-लौटा विजेता है - अर्चना वर्मा - पृ.सं. 15-16 प्र. सं. 1993

टूटन के मोह से
छूट नहीं पाती है ।

वर्तमान जीवन की विड़म्वनाओं की अभिव्यक्ति के साथ-साथ मानव संवन्धों की ऊष्मा भी उनकी कविताओं में दर्ज हुई है । आज की बदलती अवस्था को पूरी असलियत से कवयित्री आंकती हैं । मातृत्व और प्यार जैसे स्त्री सहज गुणों को गरिमा देते हुए उन्हें परम्परा के बने-वनाये घेरे से वाहर लाती हैं । जीते-जागते मनुष्य को वुत वनानेवाली व्यवस्था की बुतपरस्ती पर उन्होंने व्यंग्य किया है । अर्चना वर्मा की कवितायें महज स्त्री कवितायें नही बल्कि उस पर थोपी गयी रूढियों का अतिक्रमण करने की कोशिश की कवितायें हैं । 'दर्रा' कविता अर्चनाजी के कविता संसार को समग्र रूप से परिभाषित करती है । मौन की परिभाषा उन्होंने चतुर असहमति बताई है ।

मौन हमेशा सहमति नहीं होता । चतुर
असहमति मौन होती है ।[2]

इस स्त्री मौन के भीतर उनके अवसाद और सदियों से संघर्षरत नारी की मुक्ति की कामना बरकरार है ।

अर्चना वर्मा की कविताओं में एक गहन और प्रौढ विचार छाये मिलते हैं । उनका स्त्री लेखन मौकापरस्ती के लिये नहीं बल्कि स्त्री के असली संसार से समाज को अवगत कराने के लिये है । अति भावुकता के जगत को तोड़कर तार्किक और बौद्धिक ढंग से इन्होंने स्त्री दुनिया को परखने की कोशिश की है । 'समबन्ध' में कवयित्री ने कहीं भी नारी का उल्लेख नहीं किया है । मगर कविता की अन्तसत्ता नारी से जुड़ी है । उसे गाय की तरह रस्सी में बाँधकर खुला छोड़ा है । बार बार धूमने पर भी उसे खूँटे की और लौटना पड़ता है । नारी ऐसी वापसी केलिये

---

1. सबूत -लौटा है विजेता अर्चना वर्मा - पृ.सं. 25 प्र. सं. 1993
2. दर्रा -कुछ दूर तक- अर्चना वर्मा - पृ.सं. 80 द्वि. सं. 1994

मज़बूर है । संबन्ध में जोड़ तोड़ न होने पर भी गाँठें पड़ती हैं

न जोड़ा न तोड़ा । गाँठें
तो फिर भी थीं । एक
खूँटे में अड़ी थी । दूसरी
गर्दन में पड़ी थी । [1]

एक दूसरे के वीच के अन्तराल को भरने की कोशिश में नारी का अन्दर रीत जाता है । जीवन को अर्थ देने और उसे पूरा का पूरा जी लेने की कोशिश में नारी आहत होती है । उस रीतेपन की अभिव्यक्ति में स्त्री के अवसाद का स्वर मुखरित है ।

और अब
अन्तराल को सेतु, दिनान्तों को रंग,
क्षण को बीतने का अर्थ दे कर
बीती, रीति, आहत
मैं आकाँक्षाओं के जंगल में [2]
राह भूल
भटक रही हूँ ।

आज की रचनाशीलता पर उपभोक्त संस्कृति का गहरा असर पड़ा है जिससे कविता में एकरसता आ गयी है । इस एकरसता को तोड़कर कविता को एक रागात्मक और बौद्धिक आयाम देने में कवयित्रि अनामिका सक्षम हुई है । स्त्री के अधिकारों केलिये लड़ती अनामिका की नारी-चेतना अर्चना वर्मा की तरह प्रौढ ओर गंभीर है । वे भी अपनी कविताओं में स्त्री-जीवन के गहन अर्थ तलों को खोजती रहती हैं । अर्चना वर्मा की तारह स्त्री की त्रासदी और यातनायें अनामिका की कविताओं में दर्ज हुई है । स्त्री-लेखन की जानी पहचानी रूढ़ियों से

---

1. समबन्ध कुछ दूर तक - अर्चना वर्मा पृ.सं. 33 द्वि. सं. 1994
2. भटकाव - कुछ दूर तक - अर्चना वर्मा - पृ.सं. 42-43 द्वि. सं. 1994

हटकर दुःख और अन्तर्दाह झेलने का जीवट वे दिखाती हैं । एक संयमित तार्किक चिन्तन परक धारा ही उनकी कविताओं से उभरती है । चारों ओर के समाज की यातना भरी चीख उनकी कविताओं में गूँजती है । निजी अनुभव और लोकानुभव को आपस में गूँथकर समय की विड़म्बनापूर्ण त्रासदी से पाठकों का साक्षात्कार कराने में ये कवितायें सक्षम निकली हैं ।

'स्त्री' में नारी की अदम्य शक्ति से उन्होने पाठकों को परिचित कराया है । नारी की तुलना उन्होने 'पृथ्वी' से की है । स्त्री की दिनचर्या कभी नहीं बदलती । वह हर दिन सबेरे सूरज में और अपने में नया उत्साह जगाकर, नई थाह फेंककर पृथ्वी सी नई रोटी बेलती है । पृथ्वी सूरज के हाथ में रखी गई लोई है जिसे वह इच्छानुसार बेल या पका सकता है । स्त्री भी पुरुष के हाथों बेलने और पकाने केलिए नियुक्त सदस्या है । चौका बर्तन के बाद चुल्हे की राख बुझने के बाद वह खुद को ही सानती रहती है । फिर भी वह पृथ्वी सी खुश है । अपने वजूद की आँच में वह स्वयं जलती रहती है । उनकी कविता की गहराई खूब अर्थवान है । एक वाचन में शायद उनकी कवितायें दुरूह लगेंगी । पुनर्वाचन में उन कविताओं का गंभीर गहन अर्थ खुलता है। सारा ताप झेलती पृथ्वी सी अपने वजूद की आग को सहती हुई वह परिवार केलिये स्वयं को गूँधकर सानती है । यह महज सर्वमसहा दृष्टि से पृथ्वी से तुलना नहीं । इसमें स्त्री स्वत्व की पहचान के लिये संघर्षरत नारी की तड़प भी गुंफित । यह नारी को जगाने का रचनात्मक उपक्रम है ।

धुल चुके हैं सारे चौकों के वर्तन ।
बुझ चुकी है आखिरी चुल्हे की राख भी,
और वह
अपने ही वजूद की आँच के आगे
औचक हडबड़ी में
खुद को ही सानती

खुद को ही गूँधती हुई बार-बार
खुश है कि रोटी बेलती है जैसे पृथ्वी [1]

अनामिका की 'गंध' कविता में माँ की छाती के ताप का उल्लेख है । माँ के हृदय में रीतेपन की गंध भरी है जब उसके नाखूनों से बेसन की हल्की सी खुशबू आती है । घर गृहस्थी केलिये समर्पित स्त्री स्वयं एक खाली बटुआ बन जाती है । उस रीतेपन से मुक्त होने की चाह स्त्री छोड़ नहीं सकती । उस स्वत्व की चाह पर पश्चिमी नारीवादी आन्दोलन का मुहर लगाना कवयित्रियों के प्रति अन्याय होगा ।

माँ के नाखूनों से आती थी
बेसन की हल्की सी खुशबू
आँखों से
'मानस' की जर्जर प्रति से उठती
हल्की सी खनिज गंध

उसकी नरम नरम छाती से
जनमतुआ बच्चे के वालों का [1]
मीठा सा ताप !

अनामिका के काव्य संग्रह के वक्तव्य में बताया कि सृजन के क्षण एक गहरे एकान्त बोध की उपज है । उनकी कवितायें भी गहन एकान्त बोध की उपज है जिसमें विड़म्बनाओं से जूझने के बाद की एक निस्संग दृष्टि वर्तमान है ।

अनामिका की दृष्टि नारी - जीवन की टूट-फूट, बिड़म्बनाओं और उससे उत्पन्न दरार तक जाती है। "अनामिका के कविता संसार के भीतर स्वीकार और यातनाभरा निषेध दोनों हैं ।

---

1 स्त्री बीजाक्षर अनामिका -पृ.सं. 26 प्र. सं. 1993
2. गंध - बीजाक्षर अनामिका -पृ.सं. 59 प्र. सं. 1993

उनकी कवितायें नारी लेखन का एक नया आयाम उपस्थित करती हैं जो उस लेखन के प्रति गहरी सृजनात्मक तुष्टि प्रदान करती हैं ।"[1] वे मनुष्य के सूक्ष्मतम भावतरंगों और सुख दुःखों से जुड़ना चाहती हैं । इस कठिन समय में सबकी आपसी पकड़ छूट गई है समष्टि से व्यष्टि की, देह से मन की समय से स्थान की, आत्मा से आत्मा की पकड़ छूट गई है । यह आपसी पकड़ ही जीवन की सृजनात्मकता का आधार है । अनामिका में भी ऐसी एक गहन चिन्ता धारा वर्तमान है जिसके द्वारा वे नारी जीवन के कई अनावृत पक्षों को खोलती हैं । "स्त्रियाँ विश्व - भर की स्त्रियाँ एक अलग नवोदित राष्ट्र सरीखी धीरे-धीरे जगती हुई उत्कृष्ट साहित्य रच रही हैं और एक ऐसी दृष्टि जिसे सारी सृष्टि ही परमाणु के नाभिकीय बंध के भीतर नाचती हुई दिखाई दे।[2] "बहिनाबाई इक्कीसवीं सदी" में कवयित्री ने नारी जागरण और स्त्री के अन्दर नाचते एकान्त की ओर संकेत किया है । बहिनाबाई और माधव के बीच के रागात्मक संबन्ध को समकालीन संदर्भ दिया है । कवयित्री ने ज़िन्दगी को तन्मय एकान्तों का महारास माना है । बहिनाबाई साक्षी को भी इस महारास का अंग मानती है । संवाद और प्रश्नोत्तर के रूप में कवयित्रि ने इस लम्बी कविता की योजना की है । साक्षी कहती है ।

हाँ मानती हूँ कि शामिल है इसमें हर स्त्री !
हर हलचल -चहल-पहल के बीच भी-
एक एकांत लगातार नाचता है हर स्त्री के भीतर.....[3]
और कई एकान्त मिलकर कर लेते हैं एकान्तिक ईश्वर की सृष्टि !
सब कुछ करती धरती वह मग्न रहती है उसमें ही !
एक किसी धुन पर लगातार नाचते ।

आनामिका की कुछ कवितायें लोक-जीवन को गंभीर अर्थ-संकेत देती है । "दादी" कविता इस दृष्टि से खूब महत्वपूर्ण है । दादी के बहाने पुरानी पीढी की स्त्री की आस्था के प्रश्न

---

1. अनामिका का कविता संग्रह अनुष्टुप के फ्लैप से केदारनाथसिंह - प्र. सं. 1998
2. वक्तव्य अनुष्टुप -अनामिका -पृ.सं. 8 प्र. सं. 1998
3. बहिनाबाई इक्कसवी सदी-अनुष्टुप -अनामिका -पृ.सं. 136 प्र. सं. 1998

का व्यापक और गहर परिप्रेक्ष्य में आंका है । दादी का पूजाघर उनका कोपभवन भी है जहाँ वे अपने पुराने सपनों से खेलती है । वृद्धा औरत केलिये पूजा जाने का बहाना मात्र है । पूजाघर के अन्दर वे न जाने किन किन अतीत की बातों से जुड़ती होगी । अतीत के गर्द को झाड़ने के एकान्त स्थान की खोज में वे पूजाघर में जाती हैं । यह ईश्वरीय अवधारण की अवहेलना नहीं नारी स्वत्व की खोज है । ज़िन्दगी को बीहड़ कवायद ना माननेवाली कवयित्री को दादी के इधर उधर पड़ते पाँव अच्छे लगते हैं ।

अच्छे होते हैं वे पाँव
जो इधर उधर पड़ते हैं
और ज़िन्दगी को नहीं मानते
एक बीहड़ कवायद[1]

मामूली वस्तुयें अनामिका के काव्य क्षेत्र में गंभीर स्थान पाती हैं । सेफ्टी पिन बहुत मामूली सी चीज़ हैं मगर वह नारी की आपात्कालीन स्थितियों को संभालने योग्य एकमात्र साधन है । उसी के बलबूते नारी अटल बेबाक घूमती है । जीवन के हर संकट में वह नारी की मददगार बना रहता है । जीवन की सारी तकलीफें, उम्मीदें, आस्थायें और बगावतें इसी सेफ्टी पिन से जुड़ी है । उसके संसार का एकमात्र ईमानदार साथी यह जंग लगा हुआ सेफ्टी पिन है ।

तकलीफें उम्मीदें
आस्थाएँ और बगावतें
इसी बड़े सेफ्टी पिन में गुँथी हुई
झूलती हैं इसके इजारबंद से धीरे धीरे
देती हुई दस्तक
इसकी बहुत गहरी
और भंवर सी अतल नाभि पर ।[2]

---

1. दादी - अनुष्टुप - अनामिका -पृ.सं. 63 प्र. सं. 1998
2. सेफ्टी पिन अनुष्टुप - अनामिका -पृ.सं. 61 प्र. सं. 1998

अनामिका और गगन गिल ... पुरुष दृष्टि के बदले स्त्री दृष्टि से ही हर बात को विश्लेषित करने का प्रयास किया है । गगन गिल में भी एक गहन तार्किक मनोभाव मौजूद है । दुनिया का, जीवन के अनुभवों को बहुत नज़दीक से देखने और समझने का प्रयास गगन गिल ने किया है । एक नई समझ और सूझबूझ के साथ जीवन के बारीक तलों की ओर वे अपनी कविताओं के द्वारा पाठकों को ले जाती हैं । गगन गिल की कवितायें एक युवा मानस की यातनादीप्त अभिव्यक्ति हैं । "एक दिन लौटेगी लड़की" काव्य संग्रह में काल की नृशंसता और भयावहता के बीच लड़की के स्वप्न और इच्छाओं को दुस्वप्न में तब्दील करनेवाले समय को सच्चाई के साथ उन्होंने साक्षात्कार किया है । भावुकता को छोड़कर बड़े आत्मसंयम के साथ दुनिया की बेरहमी का आकलन उन्होंने अपनी कविताओं में किया है । किन्तु गहन भावबोध को अभिव्यक्त करते वक्त भी स्त्री सहज कोमलता, प्रेम, आकाँक्षा और चाहत को कहीं भी क्षति नहीं पहुँचाई है । उपर्युक्त संग्रह की कविताओं की केन्द्रबिन्दु लड़की है । इन कविताओं के द्वारा कवयित्रि अपने को एक व्यापक स्त्री शोषण का सहभागी बनाती हैं । उनके शब्द में पीड़ा और प्रेम का संगम है । आज की भयावहता, झुलसते हुए सपने, अनसुलझे अन्तर्द्वन्द्व और युवा मानस की अभिव्यक्ति में इतनी तीखापन और ताज़गी है कि पाठकों को सहभागीपन और अपनापन अनुभव होता है । नारी अपने दुःख, कारुण्य, सुख और संताप की संवेदनशील मानसिकता के साथ उनकी कविताओं में उपस्थित है । लड़कियों के अन्तहीन दुःखों को मनोविज्ञान के विस्तृत अनुभव बोध के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने सहेजा है । लड़कियों को दुस्वप्नों की दहशत भरी दुनिया की ओर ढकेलती आज की व्यवस्था के विरुद्ध गगन गिल ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है । उस प्रतिरोधी स्वर में नारी के अवसाद का स्वर गुंफित है । स्त्री को देवी की मान्यता देने का दावा करते वक्त भी शताब्दियों से स्त्री शोषित पीड़ित है । सामाजिक बन्धनों में जकड़ी स्त्री की विपन्न अवस्था को बारीकी से प्रस्तुत करने का उपक्रम उन्होने किया है । "गगन गिल की कविताओं में लड़कियों के त्रासद और कारुण्यपूर्ण सच को लेकर व्यक्त की गयी प्रतिक्रियायें सिर्फ समकालीन काव्य रूढि का निर्वाह नहीं है, बल्कि एक विकासशील

समाज में एक दुःखद प्रसंग की तरह "बिखरा सच्चाई को सामने लाने की कोशिश है।"[1] पारिवारिक तादात्म्य और जीवन के सुख दुःख एवं भौतिक आपदाओं को वे जीने की परिपूर्णता मानती हैं । लड़कियों के भीतर के रंग बिरंगे सपने काल के बीतने के साथ रंगहीन बनते हैं । तब एक उदासी और रीतेपन की छाया उसके अन्दर और बाहर पड़ती है जिसकी कारुणिक अभिव्यक्ति उन्होंने अपनी कविताओं में की है । समय की अमानवीयता ने लड़की के जीवन को दुस्सह बना दिया है ।

घर में कहीं छुपकर
रोएगा एक दुख
लड़की बार-बार जाएगी उसका मुँह ढाँपने
बार बार लौटेगी
गूँगी हताशा लेकर ।[2]

स्वतंत्रता के इतने दशकों के पश्चात भी स्त्री आज़ाद नहीं है । दुःख और पराधीनता की चहारदीवारी में बन्द स्त्री की मुक्ति की कामना गगन गिल की कविताओं को अलग पहचान देती है । नारी को सदैव यातनाओं से टकराना पड़ता है । गगन गिल की कवितायें इन वास्तविकताओं से टकराती हैं । नारी को आधार मानकर लिखी इन कविताओं में नारी मुक्ति की कामना के साथ स्त्री चेतना की रचनाधर्मिता भी बरकरार है । स्त्री वाद का एक सशक्त आयाम उनका 'एक दिन लौटेगी लड़की' काव्य संग्रह प्रस्तुत करता है ।

कामकाजी लड़कियों का चित्र उतारते वक्त उनकी मज़बूरियों का खूब जायजा लिया है । "दफ्तर में ऊँघती हैं लड़कियाँ" में दिन भर की उनकी ऊब और थकावट को वाणी देने की सफल कोशिश गगन गिल ने की है । थककर भी अनथके बैठने केलिये मज़बूर कामकाजी औरतों की अभिशप्तता को कवयित्री ने पूरी सूझ-बूझ के साथ उतारा है । इच्छाओं और संभावनाओं को कामकाजी लड़कियाँ कभी तोलती नहीं । मगर इच्छाओं के पिटारे पर वे खूब

---

1. एक दिन लौटेगी लड़की-ओम निश्चल -पृ.सं. 61 दस्तावेज 55 अप्रैल - जून 1992
2. बहन होगी उसकी तब भी चुपं - एक दिन लौटेगी लडकी-गगन गिन -पृ.सं. 20 प्र. सं. 1989

जमकर बैठी रहती हैं । सूरज की चमक, मौसम का बदलाव, हवा, धूप सभी से वे बेखबर हैं । दफ्तरों में कैद ये लड़कियाँ घर के कामकाज और दफ्तर के दायित्वों के बीच खुद को भूल जाती है । अकाल में ही उनके बाल पकते हैं ।

सूरज चमकता है उनके दफ्तरों के बाहर
मौसम बदलते हैं उनकी खिड़की से दूर
हवा नहीं छूती उन्हें कितने ही साल
पकते हैं बाल धूप के बिना ही
दफ्तरों में कैद लड़कियों के[1]

"गगन गिल की राय में लड़की हँसी के बारूद पर बैठी है । उसकी हँसी में स्मृति या कारण नहीं एक अन्धकार का ड़र समाया हुआ है । उस अन्धकार को एक निरीक्षक की हैसियत से वे प्रस्तुत करती हैं । तब उसकी तमाम भीषणताएँ संयम भरे, तटस्थ शब्दविन्यास से प्रकट होती हैं"[2] । लड़की को हर कीमत पर रुलाने को तुले लोगों के सामने न रोने की जिद करके वह बैठी रहती है । इसलिए उसकी हँसी में वह दबाया हुआ अवसाद है साथ ही एक प्रतिरोधी हिंसा-वृत्ति भी । अन्तिम पंक्तियाँ कविता की अन्तश्चेतना को उभारती हैं । हँसी और हिंसा दोनों परस्पर विरोधी तत्व हैं । उन दोनों को एक साथ पिरोने की कवयित्री की कोशिश के पीछे नारी की दबायी हुई मनस्थिति वर्तमान है । नारी-वर्ग के भीतर शताब्दियों से जलती वह मुक्ति की चाह इस कविता में बखूबी से मिलती है । जीवन यथार्थ का अन्तर्विरोध बेबाकी से प्रस्तुत कविता में उद्‌घाटित होता है ।

कुछ रोने थे जो लड़की ने कभी नहीं रोए
कुछ रोने थे जिन्हें न रोने की ज़िद थी उसमें

---

1. दफ्तर में ऊँघती हैं लड़कियाँ - एक दिन लौटेगी लड़की -गगन गिल -पृ.सं. 25 प्र. सं 1989
2. समकालीन कविता में स्त्री का स्वत्व विघटन - समकालीन हिन्दी कविता डॉ. ए. अरविन्दाक्षन -पृ.सं. 131 प्र. सं. 1998

कुछ थे जो उसे हर कीमत पर
रुलाना चाहते थे
उसकी हँसी ने जगा दी है सबके भीतर की हिंसा
सो गई है थककर
हँसनेवाली लड़की। [1]

लडकी की इच्छाओं की ड़ोर दहेज के सिक्कों से वन्धी है । वैवाहिक मामलों में अभी भी लड़कियाँ स्वतंत्र फैसले नहीं ले सकती । वह सिर्फ चुनी जाती है । खुद चुनने केलिये आज भी पूर्णतया स्वतंत्र नहीं । 'एक दिन लौटेगी लड़की' हिंसा और बलात्कारजन्य पीड़ा से गुज़री युवती की मानसिक प्रतिक्रिया व्यक्त करती है । लड़की को हर दृष्टि से अन्धे कुएँ में ढ़केलते समाज की ओर उन्होंने इशारा किया है । सपने में नारी यह प्रश्न करती है कि जो कुछ होना था हो चुका है । फिर भी लड़की अंधे कुएँ में क्यों बैठी है ? नारी की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि बहुविध संकटों से गुज़रने के बावजूद भी वह उसकी अभिव्यक्ति नहीं दे पा रही है । भूलकर भी वह जीवन में जबान के बारे में नहीं सोचेगी ।

वह यह सब सोचेगी लेकिन सिर्फ सपने में
दिखने में तो बाहर से वह खुश मिजाज होगी ।
मुँह उसका जबान बिना आदी
अँखें उसकी दृश्यों से दूर
रंग उसके चेहरे में गडड़मड़ड़
जबान के बारे में वह कभी नहीं सोचेगी [2]
भूलकर भी नहीं ।

उम्मीद का स्वर

नारी जागरण के समकालीन परिदृश्य में कवयित्री चम्पा वैद भी रचनारत हैं । चम्पा

---

1. लड़की बैठी है हँसी के बारुद पर एक दिन लौटेगी लड़की गगन गिल -पृ.सं. 27 प्र. सं. 1989
2. एक दिन लौटेगी लडकी -गगन गिल -पृ.सं. 29 प्र. सं. 1989

वैद की कविताओं में स्त्री जन्म के प्रति एक उत्कट प्रश्नाकुलता है । अशोक वाजपेयी के शब्दों में चम्पा वैद की कवितायें हमारे समय में असाधारण और अप्रत्याशित उद्रेक की रचनायें हैं ।[1]

दकियानूसी परम्परा से स्त्री-जाति को मुक्त करने की चाह चम्पा वैद की कविताओं को अलग पहचान देती है । स्त्री के लिये निर्धारित सभी नियमों को वे तोड़ना चाहती हैं । उनकी प्रथम कविता 'अपने पिता से' स्त्री के दबाये हुए क्रोध और ड़र की अभीव्यक्ति है । किन्तु वह महज बडबोलेपन नहीं । पितृसत्तात्मक समाज की क्रूर शासन नीति के विरुद्ध उपजी प्रतिक्रिया है उसमें मौजूदा स्थिति को परिवर्तित करने की आशा है । जब पिता जीवित थे तब पत्नी और बच्चे ही नहीं घर के जड़ बर्तन तक उनसे ड़रते थे । सलाखों को तोड़ने की इच्छा रखते बहुत से कैदियों में वे भी एक थीं। वे अपने सारे क्रोध मन में दबाती थी । पिता की मृत्यु के बाद कविता के द्वारा वे उस आत्मा से प्रश्न करने का साहस दिखाती है । साक्षात्कार के अवसर पर उन्होंने बताया कि यह कविता पूर्णतः उनकी ज़िन्दगी के उतार चढाव से जुड़ी है । पुरषसत्ता के अधीन चरमराते स्त्री-कैदियों की अभिव्यक्ति काफी सशक्त और मार्मिक बन पड़ी है ।

तुम्हारी हंसी में छिपे थे
बहुत-से कैदी
सलाखों को तोड़ने का यत्न करते
माँ ओर मैं भी उसी में
कैद हो जाती थीं
घर के बर्तन ड़रते थे तुमसे
मां बोलने की
हिम्मत करती थी

---

1. 'अब सब कुछ' के फ्लैप से अशोक वाजपेयी - चम्पा वैद का काव्यसंग्रह प्र. सं. 1993

मैं क्रोध और डर में

अन्दर ही अन्दर

बड़बड़कर

चुप हो जाती थी ।[1]

उम्र भर कोशिश करने पर भी पिता बेटे बेटी के अन्तर से कभी ऊपर नहीं उठ सके । इस पुरुष सत्तात्मक समाज की भागीदार माँ पति के अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने की हिम्मत न कर सकी । पिता का कहना मानने से बढकर स्त्री जीवन का कोई अर्थ नहीं । पिता की मुत्यु के बाद कविता के माध्यम से वे पितृसत्ता पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं । इसका मतलब पितृ-सत्ता को नकारना नहीं उस दकियानुसी परम्परा को तोड़ना है जिसमें नारी युगों से कैद है । भारतीय परिदृश्य में लड़कियों को खुलकर आगे बढ़ने का अधिकार नहीं । किन्तु कवयित्री के घर में लड़कियों को सोचना तक मना था । स्वप्नों को बुनते इस वय में लड़की के सपनों को कुचलते हुए उन्हें सोचने तक का अधिकार न देनेवाले समाज के प्रति वे प्रतिक्रिया व्यक्त करती हैं ।

माँ की आवाज़ें

सुनने लगती हूँ

अभी बहुत काम पड़ा है

खड़ी-खड़ी समय को नष्ट कर रहीं हो

ओर पिता कहे जा रहे हैं

मन्त्र उच्चारों तो बुरे खयाल नहीं आते

मानो कह रहे हों

लड़की हो

कुछ सोचो मत। [2]

---

1. अपने पिते से अब सब कुछ चम्पा वैद -पृ.सं. 33 प्र. सं. 1993
2. लड़की हो कुछ मत सोचो-अब सब कुछ चम्पा वैद पृ.सं. 31 प्र. सं. 1993

बचपन से लेकर लड़कियों पर पाबंदियाँ लगाते परिवार और समाज के प्रति चम्पा वैद ने अपनी कविताओं के माध्यम से आक्रोश व्यक्त किया है । कवयित्री के बचपन में लड़कियों पर कई प्रतिबंध लगाते थे । उन्हें ड़राते और धमकाते थे । ये प्रतिबंध लड़की के व्यक्तित्व विकास को अवरुद्ध करते हैं । लड़की का काम खाना बनाना, सब कुछ सहना और कहना मानना है । माँ ने चम्पाजी के सामने 'मत' की एक बडी सूची लटका दी थी जिससे वे कई दर्दनाक अनुभवों से गुज़री हैं ।

माँ कहती थी
लड़की हो
नंगी मत नहाओ
लड़कों के संग मत खेलो
उनकी आँखों में देखोगी तो
गर्भ ठहर जाएगा
अकेली मत जाओ कही
मित्र के भाई से मत बोलो ।[1]

कवयित्रि नीलेश रघुवंशी की कविताओं में घर परिवार से जुड़े कई अछूते और ओझल प्रसंगों की अभिव्यक्ति हुई है । निरंजन क्षोत्रिय ने नीलेश की कविताओं को बोल्ड कवितायें कही हैं क्योंकि "इनका लक्ष्य हमारी सामाजिक संरचना की गहरी पड़ताल के साथ उसे भेदना भी है" ।[2] कवयित्री की कविता कोमल भावोच्छवास् के बदले सुविचारित तर्क पद्धति है । ये सवालों की लम्बी कतार कविता में खड़ी करके प्रतिरोध के स्तर तक पहुँचती हैं । परम्परा के प्रति नीलेश जी का विद्रोह भावावेग नहीं बल्कि एक गंभीर चिन्ता है । 'संतान साते' की मां थाल में सात पुए और पूड़ियाँ नौ चूड़ियों के साथ सजाकर बच्चों केलिये दुआ माँगती हैं । एक

---

1. माँ की सीख कुछ मत सोचो चम्पा वैद पृ.सं. 10 प्र. सं. 1993
2. स्थूल प्रसंगों के मर्म का उदेघाटन - निरंजन क्षोत्रिय पृ.सं. 112 प्र. सं. 1998

गंभीर चुभता चिन्ता ही प्रस्तुत कविता से उभरती है । माँ जब पेड़ की परिक्रमा कर रही हैं तब पराये शहर में उनकी दो बेटियाँ भूखी बैठी हैं । माँ के उन अनथके पैरों से उसके आठ बेटियों और एक बेटे की इच्छायें और ज़िन्दगी जुड़ी हैं । पूजा में मशगूल माँ बच्चों की तंगहाली और अभाव से बेखबर है । जब माँ ईश्वर को पूजा के लिये पकवान इकट्ठा करती है तब भूखी बेटियाँ खाने की अपनी इच्छा को दबाती है । प्रार्थनाओं से मानसिक संतोष संभव है किन्तु पेट पूजा की सामग्री इश्वर की भेंट करते वक्त बच्चों को निरन्तर भूखा रहना पड़ता है । भूख के सामने अभाव के सामने सब बेकार हैं । बहुविध शोषण तंत्र के नीचे नारी हृदय तड्पती रहती है ।

माँ परिक्रमा कर रही होगी पेड़ की
हम परिक्रमा कर रहे हैं पराये शहर की
जहाँ हमारी इच्छायें दबती ही जा रही हैं ।
माँ नही समझ सकी कभी
जब मांग रही होती है वह दुआ
हम सब थक चुके होते हैं जीवन से ।[1]

स्त्री के संघर्ष से तपा चेहरा उनकी कई कविताओं में भिन्न भिन्न प्रसंग और स्तर पर उतरा है । परम्परा के समानान्तर चलती हुई उसके भीतर जलती समस्याओं को परखने की कोशिश उनकी कविताओं में है । नीलेश की कवितायें स्त्रीवादी मुद्दों पर आकर रुकती नहीं है । कवयित्री ने पिता के दिल की धड़कन को भी पहतचाना है । उनकी कवितायें आन्तरिक संघर्ष और द्वन्द्र सें उपजी विसंगतियों से घायल चेहरे की भी शिनाख्त करती है । बेटे की शादी से जुड़ी रस्म में माँ की एक बड़ी अदाकारी है । घर-निकासी कविता में इस रस्म की पूर्ति के लिये निकली माँ का चित्र जीवंत हो उठा है ।

---

1. संतान- साते घर निकासी नीलेश रघुवंशी पृ.सं. 13 प्र. सं. 1997

आई अंतिम रस्म
माँ के कानों अंतरों छिपी
जानती हो जैसे अंतर की बात ।
पूजा माँ ने कुआँ
देखा बेटे की ओर
आई बेला घर निकासी की ।
रखा माँ ने पाव
कुएँ की मुँड़ेर पर ।[1]

भारतीय समाज में स्त्री की सापेक्ष स्थिति, शोषण एवं अन्तरद्वन्द्व को नीलेश ने 'कविता लिखनेवाली लड़की" के माध्यम से उजागर किया है । भारतीय परम्परा के भीतर लड़की को बहसों में भाग लेने की इजाजत नहीं दी जाती है । उन सबके परे शब्द बुनने या कवि बनने की कोशिश लड़की केलिये फिजूल खर्ची है । इस कविता में वे रूसी कवयित्री मारीना त्स्वेतायेवा की याद करती हैं कि उन्होंने भी अपने जीवन में शायद ऐसा संघर्ष किया होगा । वे कविता में उनसे प्रश्न करती हैं क्या तुमने भी लड़की होकर कई ताने सुने हैं ? बहुत परेशान हुई है ? फिर भी इन सब पर जीत पाकर तुमने शब्द बुने हैं । कवयित्रि उनसे प्रेरणा पाकर एक दृढ़ संकल्प चेतना के साथ आगे बढती है । यह कविता नीलेश रघुवंशी की संकल्प धर्मी चेतना के मुखरित करती है ।

ओ मारीना
तुम्हारी ही तरह
मैं भी बनूँगी कवि
मशीन पर सिलते हुए कपड़े सिलूँगी कविता

---

1. घर निकासी घर निकासी नीलेश रघुवंशी -पृ.सं.26 प्र. सं. 1997

बुनते हुए स्वेटर बुनूँगी शब्द
खुले आसमान के नीचे बैठकर करूँगी बातें
तुम्हारी कविताओं पर ।[1]

चम्पा वैद की 'माँ की सीख' कविता से यह कविता मिलती है । उन्होंने अपने चारों ओर के सामान्य निम्न मध्यवर्गीय जीवनानुभवों को ही कविता में अपनाया है । समय के भौतिक और मानसिक अन्तरद्वन्द्व से जुड़कर ही वे कवितायें करती हैं । संकल्प धर्मी चेतना नीलेश की बुनियादी काव्य दृष्टि है जो कविता लिखनेवाली लड़की में खूब उजागर हुई है ।

ढलती उम्र में भी डरती स्त्री का रूप कवयित्री के शब्दों में खूब जीवत हो उठा है । प्लेटफार्म पर खड़ी औरत में कवयित्रि को माँ की सूरत नज़र आती है । उम्र के पड़ाव पर भी स्त्री घबराती है क्योंकि वह अपने स्वत्व से अवगत नहीं है । पुरुष चालित समाज उसे अपने पैरों पर खड़े होकर बातों से जूझने की हिम्मत नहीं देता ।

मेरी मां की तरह
ओ स्त्री
उम्र के इस पड़ाव पर भी घबराहट है
क्यों, आखिर क्यों ।[2]

स्त्री की दुनिया हमेशा औरों में तलाशी जाती है । एकान्त के सिवा उसकी अपनी कोई दुनिया नहीं है । 'सत्रह साल की लड़की' में नीलेश ने लड़की रूपी उजास के खामोशी में बदलने का बखान किया है । 'सत्रह साल की लड़की' के स्वप्न में उठारह होने और घर बसाने के सिवा और कोई इच्छा नहीं है । क्योंकि प्रकृति का सौन्दर्य, फुदकती चिड़िया की सी मनस्थिति, नृत्य की थिरकन सब उसकेलिए मना है । काल के बीतने के साथ लड़की के पैंरों में उत्साह

---

1. कविता लिखनेवाली लड़की-घर निकासि नीलेश रघुवंशी -पृ.सं.24-25 प्र. सं. 1997
2. माँ-घर निकासि नीलेश रघुवंशी -पृ.सं.15 प्र. सं. 1997

के बदले खामोशी छा जाती है । एक खामोशी से वह घर के सारे काम संभालती है । यह खामोशी स्त्री के जीवन का एक अपरिहार्य अंग है । उस खामोशी के आगे लड़की के व्यक्तित्व का विकास इस समकालीन संदर्भ में भी संभव नहीं । स्त्री शोषण के बारीक परतों को समग्र परिवेश के साथ उन्होंने अपनी कविता में प्रस्तुत किया है ।

लड़की ने तलाशा सुख
हमेशा औरों में
खुद में कभी कुछ तलाशा ही नहीं
सिखाया गया उसे हर वक्त यही
लड़की का सुख चारदीवारी के भीतर है
सोचती है लड़की
सिर्फ एक घर के बारे में ।
लड़की जो घर की उजास है
हो जायेगी एक दिन खामोश नदी ।[1]

जीवन यथार्थ के सशक्त, मार्मिक और दिलचस्प वर्णन की दृष्टि से नीलेश की कवितायें नितान्त भिन्न हैं । वे मन के कई अनछुये परतों को छूकर एक टीस सी पैदा करती हैं । शब्दों के परे एक अकथनीय अवस्था की ओर वे पाठकों को ले जाती है । उनकी कवितायें नारीवादी करघटे के परे जीवन यथार्थ के कई तहों को छूती है । 'ढाबा' कविता में नारी के दिल की धडकन अवश्य मुखरित है । मगर वह एक भिन्न ढंग की अनूठी कविता है जो ढाबा से संबन्ध कई अनुबूझे ओझल प्रसंगों को उद्‌घाटित करती है । ढाबे पर रोटी सेंकती लड़कियों का जीवन उन रोटियों की महक और सब्जी की भाप से चलता था । वे भाप और महक उनके जीवन से जुड़े हैं । दूसरों के पेट की आग बुझाता ढाबा उनकी भूख कभी नहीं बुझाता । नारी

---

1. सत्रह साल की लड़की घर निकायी नीलेश रघुवंशी -पृ.सं.20 प्र. सं. 1997

चेतना से संपृक्त यह कविता बिलकुल अलग किस्म की है । क्योंकि पितृसत्ता की दीनता से भी यह कविता गहरी जुड़ी है । निम्न मध्यवर्गीय परिवार के पिता की त्रासदियों की दृष्टि से यह कविता खूब महत्व रखती है । तमाम जिम्मदारियों और पदों के बावजद एक सहज मनुष्य के स्तर पर ही उन्होंने पिता को उकेरा है । घर -परिवार से संबद्ध उनकी कवितायें मानव संबन्धों को नये ढंग से परिभाषित करती हैं । 'ढाबा' के पिता का कारुणिक चेहरा उनके संघर्ष में पाठकों को भी सम्मलित करता है । ढाबे को केन्द्र में रखकर हिन्दी में शायद इससे पहले कोई कविता नहीं लिखी गयी और उसकी आग और रोटियों से जुड़े हुए जीवन को नीलेश इतने अनुराग और एद्रिकता से उभारती हैं कि इसे हिन्दी की युवा कविता की उपलब्धियों में गिना जा सकता है ।[1]

ढाबे पर सिंकती रोटियों की महक
और तपेले से उठती सब्जी की भाप से चलती थीं हमारी सांसें
बने इसी भाप से बच्चों के खिलौने
तपते थे आग में हमारे चेहरे
थकते थे पावों के साथ साथ कंधे [2]
पानी से भरे वर्तनों के बोझ से ।

समकालीन स्त्री जागरण के प्रसंग में शुभा की अदाकारी भी उच्च स्तर की है । नारी के अधिकारों से अवगत होकर उनकी उन्नति केलिये ये रचनारत हैं । चारों ओर के चहल-पहल से मुक्त होकर वे स्वस्थ मन से सोना चाहती हैं । चोला बदले बिना, जीवन मरण के चक्र में पड़े बिना वे नया जनम लेना चाहती हैं । उस चाह के पीछे उनकी संकल्पधर्मी चेतना विद्यमान है ।

"सुने, देखे बिना स्वतंत्र वह सोना चाहती है ।
नौ महीने तक गर्भस्थ शिशु बनकर चैन से रहना चाहती है ।"[2]

---

1. घर निकासी काव्यसंग्रह के फ्लैब से - मंगलेश डबराल प्र. सं. 1997
2. ढाबा - घर निकासी - नीलेश - पृ.सं100 प्र. सं. 1997

'प्रेम की इच्छा' एक अलग किस्म की कविता है । स्त्री-स्वत्व पहले से अधिक विघटित है । उस विघटित स्वत्व के परे वह अपना स्वत्व चाहती है । साधारण लड़की के भीतर खलबली मचाती एक असाधारण लड़की के स्वत्व की माँग ही कवयित्री सदैव करती रहती हैं । यह असाधारण लड़की नारी के भीतर रहनेवाली अस्मिता या स्वत्व है । घास, पानी की धार, हवा का झोंका सबके सब मामूली वस्तुयें हैं जिनके भीतर रहते असाधारण चेहरे को कवयित्रि पहचानने की कोशिश करती हैं । सभी में एक रहस्य की तरह निहित अभाव के बारे में वे जानना चाहती हैं । उसे मालूम है वह दुनिया के लाखों करोड़ों रूपों से भिन्न है । स्त्री को खुद अपनी जड़ता से मुक्त होना है; आज़ादी हासिल करनी हैं । मनीषी आदमी भला मनुष्य बनकर जीना और प्रेम पाना चाहता है । इस प्रेम की इच्छा का समकालीन दौर में एक व्यापक परिप्रेक्षय है ।

भला मनुष्य बनने की इच्छा
जाग रही है मुझमें
जो ले जाएगी मुझे मेरे दुःखो [1]
और मेरी कुर्बानियों तक ।

जीवन की अंधेरी गहराईयों में कवयित्री सपनों की जड़े खोजती रहती हैं ।

स्त्री जीवन के कठिन और संघर्षशील पक्ष को गगन गिल ने मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है । "दुःख को दुख की जगह रखना लेकिन भूलना नहीं । तकलीफ को सहना लेकिन उसे सब कुछ सौंपना नहीं, चीखकर प्रतिरोध करने के बजाय चुप्पी में अपना अस्वीकार बुनना- यही गगन गिल की काव्यदृष्टि की कुंजी हैं ।"[2] 'चींटियाँ' कविता मामूली अन्दाज से शुरू होती है । अन्तिम पंक्तियों तक आते आते वह एक गहन दृष्टि को पकड़ती है । पृथ्वी के एक सिरे

---

1. प्रेम की इच्छा - शुभा -वर्तमान साहित्य कविता विशेषाँक - पृ. सं.166 अप्रैल - मई
2. अंधेरे में बुद्ध - गगन गिल - के प्रथम फ्लैब से प्र. सं. 1996

से दूसरे सिर तक चींटियाँ अदृश्य आटे की खोज में जाती हैं । उनके चलने से पृथ्वी के दुख हल्के होने लगते हैं । मगर उनका दुःख कोई नहीं जानता । कविता की अन्तिम पंक्ति में उन्होंने चींटी को स्त्री का प्रतीक माना है । शताब्दियों से दुःख की आँच में तपती और स्वत्व की खोज में भटकती नारियों की मुक्ति कामना इन पंक्तियों में खूब बुलन्द है ।

चींटियाँ अपने घर का रास्ता भूल गयी थी ।

उनके चलने से पृथ्वी के दुख इतने हल्के होने लगते
कि दिशाएँ धूमने लगती, भ्रमित हो ।
ध्रुव बदलने लगते अपनी जगह ।
चींटियों का दुःख लेकिन कोई न जानता था ।
बहुत पहले शायद कभी वे स्त्रियाँ रही हों ।[1]

समकालीन कविता में स्त्री जागरण का मुद्दा काफी तेज़ है । कवयित्री के अन्तिम संग्रह में उन्होंने प्रेम पक्ष का उल्लेख किया है । साथ ही यह भी बताया है कि समय बदल गया है । इस संग्रह की तमाम कविताओं में प्रेम, आकाँक्षा आदि की ललक मौजूद है । कवयित्री नारी जागरण को बड़ी आशा बाँधी बैठी हैं । नारी की पीड़ा के खत्म होने, उसके मुक्त होने की आशा में वे बैठी हैं ।

एक दिन वह झाँकेगी स्वस्थ होकर दर्पण में और
मर जायेगी विस्मय से ।
घाव के बिना ही वहाँ बँधी होगी पट्टी एक ।
चोट जिसे लगना होगा, अभी होगी बहुत दूर ।
किसी भविष्य में ।[2]

---

1. चींटियाँ - अंधेरे में बुद्ध - गगन गिल -पृ.सं. 98 प्र. सं. 1996
2. एक दिन वह जोगी यह आकाँक्ष समय नहीं - गगन गिल -पृ.सं. 83 प्र. सं. 1998

स्त्री-संघर्ष को कवयित्रियों ने सामान्यीकृत नहीं किया है । बहिरंगतः शान्त होने पर भी स्त्री कविताय मूल स्वर को रेखांकित करती है ।

प्रतिरोध का स्वर

कात्यायनी समकालीन दौर की एक सशक्त कवयित्री हैं । वे परिस्थितियों के विरुद्ध महज आक्रोश नहीं करती सक्रिय विद्रोह करती हैं । उनकी कवितायें संघर्षशील स्त्री की मुक्ति की कोशिशों का दस्तावेज हैं । वे अपनी कविताओं के माध्यम से स्त्री-लेखन के एक नये और संघर्षशील आयाम को खोलती हैं । नारीकेन्द्रित होने पर भी परिवर्तनकामी सर्वहारा वर्ग की यातनाओं से उनकी कवितायें जुड़ी हैं । क्योंकि उन्हें मालूम है कि सर्वहारा की मुक्ति के बिना नारी मुक्ति संभव ही नहीं है । असल में उनका नारीवाद नारिवाद और मार्क्सवाद का रचनात्मक मेल है । उनके नारिवाद में प्रतिबद्ध और परिवर्तनकामी राजनीतिक चेतना इस कदर रची-बसी है कि वह हर तरह के उत्पीड़न के विरुद्ध एक भाषिक कारवाई का रूप ले लेती है उनकी लंबी कविता में मातृभूमि की रक्षा केलिये लड़ते लड़ते शहीद हुए कुर्स्क के कैप्टेन के दिल की बेसुर धड़कन सुनाई देती है । उस घड़कन के साथ उनकी प्रिय पत्नी अलग के दिल की धड़कन की बेसुर आवाज़ भी मिली हुई है । प्यार करने और प्यार पाने के कैप्टन की आतुरता के पीछे कवयित्री की नारी चेतना ही खूब उजागर हुई है । इसमें कात्यायनी ने कई भावों को एक साथ मिलाया है । स्त्री बौद्धिक और वैचारिक दृष्टि से एकदम नगण्य मानी गयी है । किन्तु कवयित्री ने प्रखर ढंग से वैचारिक, राजनीतिक और सामाजिक प्रसंगों को इस कविता में प्रस्तुत किया है ! यह कविता प्रखर व्यक्तित्ववाली औरत की प्रखर संवेदना है । कुर्स्क सबसे उन्नत आणविक पनडुब्बियों में एक है । उस डूबते जहाज़ के भीतर दमघुटकर देश की रक्षा केलिये मरे कैप्टेन और उनके सांथियों का तनाव भरा परिप्रेक्ष्य इस कविता में खूब जीवंत हो उठा है । सोवियत संघ के टूटन के साथ इस जहाज़ के टूटन को जोडकर कविता को एक नया आयाम उन्होंने दिया है ।

हमारा यह भारी भरकम कुर्स्क
उसी तरह डूबा
जैसे टूटा था 1990 में सोवियत संघ का ढाँचा [1]

समाज ने स्त्री को शरीरिक स्वत्व की दृष्टि से ही स्वीकारा है । मानसिक-स्वत्व के निषेध से पीड़ित नारी आज कविता में निजत्व के साथ प्रस्तुत होने लगी है । कात्यायनी अपनी कविताओं के द्वारा निजत्व और स्त्री स्वत्व का अन्वेषण भी करती है । पुरुष नारी को सदैव अपनी छायात में रखना चाहता है । क्योंकि छाया के नीचे नये अंकुर का फूटना असंभव है । पुरुष निर्धारित स्त्री-मूल्य पर कात्यायनी चोट करती है । उसके संशोधन केलिऐ भी समाज को प्रेरणा देती है । निजत्व की प्राप्ति केलिये स्त्री एकान्त को बुलाती है । उस एकान्त को छूकर वह सोचती है । नारी के वैचारिक स्तर को पुरुष गौण मानता है वह उसे कभी नतीजे पर पहुँचने नहीं देता । मगर आज नारी ने उस बेड़े को भी पार किया है । कात्यायनी की तमाम कविताओं का व्याकरण स्त्री रचित है । भाषा उन्होंने स्त्री की कोख से ली है । इसलिए उनकी कविता की भाषा में स्त्री की गंध है, जो साधारण पुरुष की वासना को - भभकाने केलिये नहीं अपितु अपने में प्रफुल्लित होने केलिये हैं"[1]

जैसे ही
वह सोचती है
एकान्त में,
नतीजे पर पहुँचते से पहले ही [1]
खतरनाक
घोषित कर दी जाती है !

---

1. कुर्स्क के कैप्टेन की अंतिम चिट्ठी पत्नी के नाम - कात्यायनी - पृ.सं. 48 हंस मार्च 2001
2. इस पौरुषपूर्ण समय में - कात्यायनी पृ.सं. 20 प्र. सं.1999

हाकी खेलती लड़की को योग्य वधू या पत्नी के रूप में देखने की कदर तक समाज विकसित नहीं हुआ है । क्योंकि पुरुष की दृष्टि से खेल में नारी की अदाकारी नहीं के बराबर है या धृष्टता है । शादी के प्रस्ताव के वक्त वधु पसंद न आयी तो पुरुष वह संबन्ध अस्वीकार कर सकता है । लड़का पसंद न आया तो लड़की भी अपनी असहमती प्रकट कर सकती है । फिर भी उसे लड़की की धृष्टता माननेवाले एक स्तर तक ही हमारा समाज विकसित हुआ है । यह एक सांस्कृतिक रूढिवादिता है जो तमाम विकासों के बावजूद स्त्री-समाज को गुलाम बनाती रहती है । आज लड़कियाँ इस रुढ़िवादिता को तोड़ने में सक्षम हो गयी हैं । वे आज निर्द्वन्द्व और निश्चित होकर रात तक घूमती रहती हैं । ज़िन्दगी के आन्तरिक तोड-फोड़ से अपरिचित निर्भीक हँसती - दौड़ती लड़कियों को देखकर वर पक्ष के लोग पैर पटकेंगें । क्योंकि उनकी दृश्टि में स्त्री परिवार की चहारदीवारी का उल्लंघन कर ही नहीं सकती । अंधेरे में अवास्तविक सपनों की दुनिया से गुज़रने केलिये वह मज़बूर हो जाती है ।

सब सो जायेंगे
लड़कियाँ घूरेंगी अंधेरे में
खटिया पर चित्त लेटी हुई
अम्मा की लम्बी साँसें सुनती
इन्तज़ार करती हुई
कि अभी वे आकर उनका सिर सहलायेंगी [1]

'सात भाइयों के बीच चम्पा' स्त्री की दुर्दमनीय शक्ति का स्पष्ट मिसाल है । सृष्टि की जननी स्त्री की अवहेलना ही होती रहती है । ओखली में कूटने, कूड़ें पर फेंकने पर भी वह अमरबेल बनकर सब कहीं उगती रही । एक दिन सात भाईयों की सयानी चम्पा घर की छत से लटकती पाई गई । बार बार कुचल जाने पर भी वह अपनी निजता को सुरक्षित रखती हुई

1. हाकी खेलती लड़कियाँ - सात भाइयों के बीच चंपा - कात्यायनी - पृ.सं. 16 प्र. सं.1994

अपराजेय भाव से ऊपर उठती है । स्त्री-शोषण का खुला चित्र खींचने के साथ साथ स्त्री के अपराजेय बोध को भी लोककथा के माध्यम से कात्यायनी ने व्यक्त किया है । स्त्री एक अदम्य शक्ति है जिसके अभाव में विश्व का कोई अस्तित्व ही नहीं है । मातृत्व, सौन्दर्य, क्षमा जैसे गुणों के बावजूद स्त्री अस्वतंत्रता की ज़जीरों में जकड़ी है । आज़ादी की चीख, स्त्री-स्वत्व की पहचान की चीख कात्यायनी की कविताओं में खूब बुलन्द हुई है ।

> सात भाइयों के बीच सयानी चम्पा
> एक दिन घर की छत से
> लटकती पायी गयी ।
> तालाब में जलकुंभी के जालों के बीच
> दबा दी गयी ।
> वहाँ एक नीलकमल उग आया ।
> जलकुंभी के जालों से ऊपर उठकर
> चम्पा फिर घर आ गयी,
> देवता पर चढ़ायी गयी ।[1]

'अपराजिता' और 'वह रचती है जीवन और' में स्त्री की अपराजेय मनस्थिति ही नहीं आज़ादी की चीख भी प्रतिध्वनित होती है । नारी की रचना ऋग्वेद संहिता के अनुसार वंश को बनाये रखने केलिए नहीं हुई है । जीवन को रचने वाली स्त्री को उस जीवन के बारे में सोचने और उसकी केन्द्रविन्दु के सामने प्रश्न चिह्न लगाने का अधिकार है । उसकी आज़ादी की चीख पहाड़ों, घाटियों और ऊँची लहरों से टकराकर प्रतिध्वनित होती है । उस प्रतिध्वनि में स्त्री की अपराजेय मनस्थिति गुंभित है । 'अपराजिता' में कवयित्रि ने स्त्री की अजेय आत्मा की गरिमा उद्घाटित की है । स्त्री की आत्मा को पराजित करने के लिये यद्यपि उस पर तमाम अपवित्र

---

1. सात भाईयों के बीच चम्पा कात्यायनी पृ.सं. 21 प्र. सं. 1994

इच्छाओं का भार लाद दिया गया है फिर भी अपने उत्तराधिकारियों के सामने भी उसकी आत्मा झुकती नहीं । आज भी वह आत्मा अपराजय भाव से आज़ादी केलिये संघर्षरत है सब कुछ संभालती सहती हुई । उनका नारीवाद मानव मुक्ति के प्रसंग से गहरी जुड़ी है । जिस तरह मानवता की अमर अजेय आत्मा को कोई पराजित नहीं कर सका उसी तरह नारी की अत्मा को भी ।

उसी तरह नहीं पराजित कर सके वे
हमारी अजेय आत्मा को
आज भी वह संघर्षरत है
नित-निरन्तर
उनके साथ
जिनके पास खोने को सिर्फ ज़जीरें ही हैं
बिलकुल हमारी ही तरह[1]

स्त्री के वैचारिक महत्व से अवगत होकर भी पुरुष उसे हाशिये से आगे बढने नहीं देता स्त्री ने अपने अधिकारों केलिये खुलकर लड़ना शुरू किया है । 'गार्गी' को स्त्रीत्व के अच्छे प्रतीक के रूप में कवयित्रि ने चित्रित किया है । गार्गी पुरुष की हर वृत्ति की मददगार है । वह अंकशयनी, माँ, जीवन-संगिनी, देवी सब कुछ है । अधूरे जीवन को पूर्ण करने, उसको तरक्क दिलवाने, उसे महान बनाने के उपक्रम की रस्सी बनने का उससे अनुरोध किया जाता है । सा अनुनयों और अनुरोधों के बावजूद स्त्री की हाशिये को निर्मित करनेवाला पुरुष ही है । उस लाँघने की कोशिश नारी की धृष्टता ही समझी जायेगी । यह कविता पुरुष मूल्यों पर चोट ह नहीं करती बल्कि अपनी स्थिति के प्रति सतर्क रहने आह्वान भी देती है । प्रतिरोधी अन्दाज़ कात्यायनी की कविताओं की खासियत है ।

---

1. अपराजिता सात भाईयों के बीच चम्पा कात्यायनी - पृ.सं. 29 प्र. सं. 1994

मत जाओं गार्गी प्रश्नों की सीमा से आगे
तुम्हारा सिर कटकर लुटकेगा ज़मीन पर,
मत करो याज्ञवल्क्यों की अवमानना,
वह पुरुष है !'

समय और समाज के निर्मम, भयावह यथार्थ और कविता में उसकी प्रासंगिकता को उन्होंने खूब पहचाना है । उनकी कविता आस्थागत प्रतिबद्धता, कविता संबंधी अगाध ममता आदि की मिली जुली संवेदनत्मक अभिव्यक्ति है । वे कविता में ही नहीं अपने जीवन में भी सिर्फ नारी मुक्ति से नही मानव मुक्ति के सक्रिय आन्दोलन से जुड़ी है और अविभक्त दृष्टि से समाज को देखना जानती है । इसलिए उनमें पुरुषमात्र से घृणा और दुश्मनी करनेवाला बचकाना नारीवाद मर्ज नहीं है ।[2]

समय को पौरुषपूर्ण मानने के साथ ही उन्होंने जीवन को खतरे से खाली भी नहीं माना है । जीवन के प्रति वे एक चुनौतिपूर्ण अन्दाज़ रखती है । स्त्री के प्रति, स्त्री लेखन के प्रति एक गहन उपेक्षा भाव समाज में वर्तमान है । उस अवहेलना पर जीत पाने की अदम्य आकाँक्षा उनकी कविताओं में मिलती है । एक स्त्री का जीना इस दुनिया में खतरे से खाली नहीं है । तब एक कवयित्री का जीना दुगुना दुष्कर होगा । क्योंकि सारा समाज उस पर एकसाथ हमला बोलेगा । उस के प्रतिरोध केलिए अंतहीन संकल्पना आर्जित करने का आह्वान वे अपनी कविता के माध्यम से देती हैं ।

संकल्प चाहिए,
अद्‌भुत अंतहीन
इस सान्द्र, क्रूरता भरे अन्धेरे में

---

1. गार्गी सात भाईयों के बीच चंपा कात्यायनी - पृ.सं. 32 प्र. सं. 1994
2. इस पौराषपूर्ण समय में संग्रह पर लिखी टिप्पणी से विष्णुखरे - पृ.सं. 137 प्र. सं. 1999

जीना ही क्या कम है
एक स्त्री केलिए
जो वह रचने लगी कविता ! [1]

उनकी कविता थकी हुई मगर अजेय स्त्री की पहचान बनाने की कोशिश की कविता है ।

'त्रियाचरित्रम् पुरुषस्य भाग्यम्' कविता में कात्यायनी ने गुरु शिष्य संवन्ध के ज़रिये स्त्री पर किये जानेवाले अत्याचारों का उल्लेख किया है । स्त्री पर शारीरिक काम का बोझ लाद दिया गया है । विचार के क्षेत्र से हटाने की वजह से स्त्री का कार्य क्षेत्र घर की चहार-दीवारी के भीतर बन्द है । छुआछूत के युग में भी स्त्री भद्र समाज के आस्वादन की सामग्री समझी जाती थी । शरीरिक आस्वादन की दृष्टि से अछूता औरत कोई प्रतिबन्ध उपस्थित नहीं करती । गुरु की इच्छा के अनुसार शिष्या ने गोरैया बन खेतों से धान चुनकर उनकी भूख मिटाई । अपनी कामनाओं की सारी मिठास संजोकर गुरु की प्यास दूर की । सारी स्निग्ध आकाँक्षाओं को मन में छिपाकर तन मन से उसने गुरु की सेवा की । मगर उसकी निस्वार्थ सेवा को, एकनिष्ठ प्रेम को गुरु पहचान न सके । स्त्री को पहचानने केलिये गुरु उसके शरीर को काटने केलिये तैयार होते हैं । स्त्री शरीर को काटने की प्रक्रिया के पीछे स्त्री को भोगवस्तु मानने की पुरुष की पाशविक मनोवृति ही बरकरार है । काटने के प्रयत्न में न उन्हें प्रेम मिला, न उनकी तपस्या पूर्ण हुई । संदेह और प्यार की प्यास में गुरु जीवन भर जलते रहे । स्त्री के एकनिष्ठ प्रेम को पहचानने और उसकी गहराई नापने में आज तक पुरुष समाज सक्षम नहीं हुआ है । अपने पर होनेवाले अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह की जो अग्नि नारी के मन में जल रही थी, आज बेबाकी से बाहर प्रकट होने लगी है । कात्यायनी की कवितायें इस जलन की प्रतिक्रियात्मक अभिव्यक्ति है । हर दृष्टि से विकास के पथ से गुज़रने पर भी स्त्री की स्थिति बदतर ही है ।

---

1. इस पौरुषपूर्म समय में कात्ययनी पृ.सं. 139 प्र. सं. 1999

त्रियाचरित्र नहीं जान सके गुरु,
स्त्री को नहीं पहचान सके ।
प्रेम का स्वाँग तो ताड़ गये
पर प्रेम न पा सके गुरु ।
तड़पते रहे लगातार उसे पाने को
दीक्षा तो अधूरी रही मेरी
लेकिन प्रतिशोध पूरा हुआ ।
तमाम सारी तरक्कियों के बावजूद
दुनिया
बद से बदतर होती रही ।[1]

'एक भूतपूर्व नगरवधु की दुर्गपति से प्रार्थना' स्त्री की लाचारी की सशक्त अभिव्यक्ति है । उसमे नगरवधु आमोद प्रमोद, मदनोत्सव और का मातुर नागरिकों से अपने को मुक्त करने की दुर्गपति से प्रार्थना करती है । अदृश्य परकोटों, बुर्जोवाले महानगर के बाहर खुली हवा में वृक्ष से पीठ टिकाकर कम से कम एक बार ही सही वह खुलकर साँस लेना चाहती है । अभी तक दूसरों की सौन्दर्य पिपासा और कला-साधना की पूर्ति केलिये जी रही थी । उसका अपना कोई स्वत्व नहीं था । वर्षों तक दूसरों की इच्छा पूर्ति केलिये जीकर उसने अपना जीवन खोया है । अब वह जीवित होना चाहती है, अपनी शिनाख्त चाहती है, अस्मिता चाहती है । दुर्गपति का अधिकार सिर्फ शरीर तक है । वह आज एक जीवित लोथ मात्र है । इस जर्जरित अवस्था में ही सही वह मुक्त होना चाहती है । क्योंकि अब आयु ढल गयी जीवन के एकाध क्षण ही बाकी हैं । उन एकाध क्षणों में ही सही वह स्त्री अपने स्त्रीत्व की पहचान, मातृत्व की पहचान चाहती है, नये सिरे से जीना चाहती है । अपने स्वत्व की पहचान के साथ जीने की नारी की उत्कट

1. त्रियाचरित्रं पुरुषस्य भाग्यम् ..... इस पौरुषपूर्ण समय में -कत्यायनी - पृ.सं. 56-57 प्र. सं. 1999

अभिलाषा, जिसे पुरुष ने दबा रखी थी, आज नगरवधू के द्वारा प्रकट हुई है । नगरवधु समकालीन जाग्रत नारी का प्रतीक है । दृढ बन्द किले का द्वार तोड़कर वह खुले आसमान के नीचे उन्मुक्त धूमना चाहती है । स्त्री मोह की अवहेलना के विरुद्ध आज नारी लड़ने लगी है । स्त्री स्वत्व की पहचान की चाह के पीछे कात्यायनी की प्रतिरोधी मानसिकता और मनुष्य-धर्मिता झलकती हैं ।

यह कहना उचित होगा कि
अब मैं जीवित होना चाहती हूँ दुर्गपति,
मुझे जाने दो
मैं अपना पहचान तक जाना चाहती हूँ
अपनी आत्मा तक
अपनी अस्मिता तक जाना चाहती हूँ मैं ।
मेरे शरीर के ही तो तुम स्वामी हो,
वह तो अब लुंज पुंज माँस का एक लोथ भर है
इसे तिरस्कृत कर दो स्वामी
फेंक दो दुर्ग से बाहर ।[1]

लोथ में भी स्पन्दित नारी की अपराजेय आत्मा को कोई नष्ट नहीं कर सकता। नारी-मुक्तिवादी स्वर की प्रमुखता के रहते हुए भी कात्यायनी को महज नारीवादी कहना अप्रासंगिक है । क्योंकि उनकी कविताओं का मुख्य सरोकार संघर्षरत मानव से है । विष्णु खरे के शब्दों में "कला और आस्था के कई खतरे उठाते हुए ही कात्यायनी हिन्दी की समूची जुझारू, प्रतिबद्ध कविता में अपने जागरूक वैविध्य से अनूठी उपस्थिति बना चुकी हैं और विकासशील सशक्त युवा कवयित्रियों की सुखद रूप से बढती हुई कतार में तो वे अपने तरह की एकमात्र हैं ।"[2]

---

1. एक भूतपूर्व नगरवधु की दुर्गपति से प्रार्थना - इस पौरुषपूर्ण समय में पृ.सं. 64 प्र. सं. 1999
2. इस पौरुषपूर्ण समय में विष्णुखरे पृ.सं. 139 प्र. सं. 1999

वीरा की कविताओं में नारी शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध प्रतिरोध का स्वर मुखरित है । वह खुलकर इस शोषण के विरुद्ध अपनी राय व्यक्त करती हैं । घर-गृहस्थी की दृष्टि से नारी की अदाकारी, संबन्धों की ऊष्मा और आत्मीयता को मानते हुए हो वे नारी शोषण के विरुद्ध खड़ी होती हैं । क्या होगा कविता प्रश्नोत्तर के रूप में लिखी गयी है । बेटी के खाना बनाने, गृहस्थी की माँग की पूर्ति करने, भाई की भाँति देर तक सड़कों में पैंट शर्ट पहनकर धूमने की बात को लेकर प्रश्न खड़ा करती है । माँ उन प्रश्नों का उत्तर अपनी पुरानी रूढ़िगत परम्परा के भीतर रहते हुए ही देती है । कहीं भी माँ यह नहीं बताती कि लड़की का क्या होगा । उनकी बदनामी, उनके नाक कट जाने, उन्हें नरक में भी ठौर न मिलने की वात के सिवा बेटी को और कोई सुझाव नहीं देती । परोक्ष रूप से नारी नारी का शोषण करती है । नारी की स्वतंत्रता की तबाही नारी भी करती है । गृहस्थी की पूर्ति न करनेवाली, लड़कों की सी रात में देर तक सड़क पर धूमती बहु का ससुराल में क्या हाल होगा यह प्रश्न बहुत अर्थवान है । स्त्री केलिये निर्धारित पथ से हटकर चलनेवाली नारी के प्रति ससुराल वालों की प्रतिक्रिया को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। क्योंकि भारतीय परिदृश्य में उतना खुला जीवन संभव नहीं है । स्त्री-स्वत्व को एक हद तक वहां स्वीकृति मिली है । भारतीय परिदृष्य को मानती हुई, संबन्धों की ऊष्मा को आत्मसात करती हुई ही वे स्त्री स्वत्व केलिये सक्रिय विद्रोह करना चाहती है । अपनी तबाही के बावजूद वीरा नारी की समग्र मुक्ति केलिये संघर्षरत है । घर-गृहस्थी के परे भी स्त्री की अपनी एक अस्मिता, स्वतंत्र सत्ता और स्वत्व है जिस को गरिमा मिलने केलिये ही वे संघर्षरत हैं । वीरा का संघर्ष पुरुष वर्ग से नहीं अपनी अस्मिता को कटघरे में बाँधे आज की व्यवस्था और समाज से है । उनकी संघर्ष चेतना इन पंक्तियों में खूब व्यक्त होती है ।

माँ
मैं यह जानता चाहती हूँ
कि मेरे अपने जीवन में क्या होगा ? [1]

---

1. क्या होगा -वीरा - पृ.सं. 172 वर्तमान साहित्य कविता विशेषांक अप्रैल -मंई 1992

'तुम फिर क्यों खड़ी हो गई हो सलाखों के पास ?' कविता में पति के अन्यायों के सामने चुप्पी साधकर सलाखों से माथा टिकाकर खड़ी नारी को अन्यायों के विरुद्ध तनकर खड़े होने का आह्वान वे देती हैं । वे उसे सचेत करती हैं कि नारी जड़ दीवार या फर्श नही है जिस पर आदमी अपनी इच्छानुसार धूँसा तान सकता है । उसे उस अवस्था से खुद मुक्त होने की कोशिश करनी है । ठंड़ी सलाखों के पास से खुद माथा हटाना है । स्त्री को खुद अवगत होना है कि वह लाचार नहीं । लाचारी का नाम स्त्री नहीं ।

तुम लाचारी भी तो नहीं हो
फिर दीवार पर
पड़नेवाले घूँसे से
तुम्हारे चेहरे का रंग क्यों उड़ गया ?[1]
लेकिन
अभी तो
हटाना है तुम्हें ही
अपना माथा
ठंड़ी अंधेरी सलाखों
के पास से

विद्रोह के स्वर के साथ अपनी दकियानूसी परिस्थितियों को लेकर एक अवसाद का स्वर भी उसमें गुंभित है । तत्कालीन व्यवस्था से उत्पन्न अयाचित अवस्था के प्रति कवयित्रि प्रतिक्रियान्वित होती है ।

'माँ' कविता की माँ आजन्म परिवार के कटघरे में रही हैं । उन्हें मनुष्य का सा कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं था । स्कूल जाने, किताबें पढने, सवाल करते, खुली-हवा में साँस लेने

---

1 तुम फिर क्यों खड़ी हो गई हो सलाखों के पास ? - वीरा -पृ.सं.175-176 वर्तमान साहित्य कविता विशेषांक अप्रैल - मंई 1992

को भी उन्हें आज़ादी नहीं थी । कवयित्रि को दुःख है कि उन्मुक्त जीवन का जो वरदान उन्हें माँ ने दिया है उसके बदले में ही सही उनके जीवन को वे हरा नहीं कर सकीं । मगर वे खुद आश्वस्त होती हैं कि माँ से पायी सीख वे अगली पीढी को प्रदान कर रही है । अपनी बेटी को हरी हवा सा उन्मुक्त जीवन देकर एक पतवार बनकर उसकी रक्षा करना वे चाहती है ।

माँ, मैं शायद
गढ सकूँ अपनी बेटी को
तुम्हारी ही इच्छित स्वप्नमूर्ति के अनुसार ।[1]

सुमन राजे ने जीवन यथार्थ को कविता के यथार्थ में तब्दील किया । यथार्थ की पहचान से समकालीन कविता में वे अपनी अलग शिनाख्त बना सकी । अनुभव और रचना-व्यक्तित्व उनकी कविताओं में घुल-मिलकर आये हैं । उनकी कवितायें वयस्क और सार्थक संवेदना की अभिव्यक्ति प्रखर धरातल पर करती हैं । समय की प्रखर छाप के साथ साथ उनकी कवितायें अपनी निजता बनाये रखती हैं । मनुष्य विरोधी शक्तियों के विरुद्ध विद्रोह करने का अपूर्व साहस उनकी कविताओं में खुब व्यंजित है । नारी शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध 'पुत्र को लिखी माँ की चिट्ठी' कविता सक्रिय विद्रोह करती है । बैल की सी काम करती किन्तु निजत्व खोती हुई औरत का चित्र खूब सशक्त ढंग से उनकी तूलिका से उभरा है । प्रस्तुत कविता के मुखपृष्ठ पर कवयित्रि ने लिखा है ।

एक पिता ने लिखा था पत्र
पुत्री के नाम
वह इतिहास बन गया
माँ क्या लिख सकती है बेटे के नाम?[2]

---

1 माँ -वीरा -पृ.सं.46 साक्षात्कार नवम्बरम 1993

2. मनुपुत्र के नाम एक खुली चिट्ठी-यात्रादंश - सुमन राजे - पृ. सं. 1987

पुत्र को लिखी उनकी चिट्ठी में नारी-शोषण की परम्परा का वस्तुनिष्ठ चित्र खींचा है । नारी पर होनेवाले अनगिनत शोषण के विरुद्ध आज हर क्षेत्र में नारी तनकर खड़ी होने लगी है । निराशा और अवसाद के परे एक अपराजय-भाव स्त्री में जाग्रत हो गयी है । परम्परागत स्त्री संबन्धी अवधारणा को बदलने के मोह ने स्त्री को काफी जागरण दिया है । पुत्र को लिखी चिट्ठी में सुमन राजे ने स्त्री की कभी न अन्त होनेवाली पीड़ा का चित्र खींचा है जो कवयित्री को अपनी माँ ने और उन्हें दादी ने दी है । वह स्त्री जाति की संपदा है । पुत्र को लिखते वक्त सुमन राजे ने लिखा कि अगर वे वेटी होती तो यह अन्तहीन स्त्री संपदा उन्हें सौंपी जाती । अन्तहीन पीड़ा का सिलसिला नारी की शिनाख्त बन चुका है । समय को बदलने की असीम इच्छा के रहते हुए भी सही पथ-प्रदर्शन के अभाव में कवयित्री निष्क्रिय खड़ी रहती है ।

मैं पूरी ईमानदारी के साथ
समय को बदलने की पहलकदमी मे
साथ देना चाहती थी
पर नहीं जानती थी
मुझे क्या करना चाहिए
वे लोग जो रास्ता बताते थे
खुद ही भटक जाते थे । [1]

इतिहास को फिसलन की घाटियों में भटकाना कवयित्री का उद्देश्य नहीं था इसलियें वे यों ही निष्क्रिय खड़ी रहीं । पुत्र के नन्हे नन्हे हाथ पाव के विकसित होने के साथ साथ उन्हें भविष्य का नया द्वार खोलने का सा अनुभव होता था ।

इस लंबी कविता में उन्होने स्त्री की तुलना बैल से की है जिसके पास समय है पर काल

---

1. मनुपुत्र के नाम एक खुली चिट्ठी - यात्रांदश- सुमन राजे पृ.सं. 51-52 प्र. सं. 1987

का बोध नहीं । उन्होंने स्त्री की स्थिति को बैल से भी बदत्तर माना है । क्योंकि बैल महँगा है और औरत पैसे देकर बेची जाती है । असल में स्त्री बैल और गाय दोनों का काम एक साथ करती है । स्त्री जन्म को शाप माननेवाला युग अभी भी समाप्त नहीं हुआ है । उन्होंने अपनी माँ के जनम की बात सुनी थी । उनके जनम होते ही घर में अन्धकार छा गया । बच्ची को मारने केलिये माँ के पास पुड़िया फेंक दी । छह दिनों तक माँ और वच्ची को भूखा रखा । मगर माँ ने पुड़िया नहीं दी । छह दिनो तक भूखी रहकर भी जिजीविषा की वजह से वह मरी नहीं सभी को चिढाती हुई बढी । स्त्री की इस सख्त और कठोर अवहेलना के विरुद्ध कविता में प्रतिरोध का स्वर उठता है । बढती आबादी और विज्ञान के विकास ने नारी जीवन को अधिक अंधकारपूर्ण बनाया है । दहेज संबन्धी दुर्घटनायें भी खूब हुआ करती हैं । दुर्घटनाओं की बहुलता के इस युग में स्त्री ड़रती हैं कि वे बच्चों को कौन सा भविष्य सौंप सकेंगी । प्रस्तुत कविता इतिहास और संस्कृति की विरूपता और अमानवीय अन्तर्विरोधों को संवेदना के स्तर पर प्रस्तुत करके नारी चेतना संबन्धी एक भिन्न आयाम उपस्थित करती है । "नारी चेतना को लेकर ऐतिहासिक परिवेश में बिना किसी पात्र या मिथकीय माध्यम का प्रयोग करते हुए संवादात्मक शौली में लिखी यह पहली और शायद अकेली लम्बी कविता है"।[1]

सारे के सारे दायित्वों को निभाती हुई उससे जुड़े दर्दों और आंसुओं को शब्दों के महीन जाल में समेटती माँ 'स्थगित कविता' की मूल संवेदना को खूब उजागर करती है । अभाव में घुटकर भी वह माँ बच्चे के नंगे पैंर और खुली छाती केलिये कुछ करना चाहती है । एक हाथ से बच्चे की पीठ थपथपाती और दूसरे हाथ से शब्दों को बुनने की कोशिश करती माँ जागरित समकालीन नारी का प्रतीक है । बच्चे को साँत्वना मिलने तक सब कुछ स्थगित करने केलिये वह तैयार है । माँ के सारे दायित्वों को निभाती हुई अभाव में भी अपराजय भाव से कलम से आज़ादी की आग उगलती नारी का रूप खूब सशक्त बन चुका है ।

---

1. जरख्मी पैंरों को ज़माने की कोशिश -ऋचा दरंवा - पृ.सं. 31 वागर्थ अप्रैल 1998

उसके दोनों हाथ
दो काम करने में लगे हैं ।
एक हाथ आँसुओं को दूध बनाता है
दूसरा
स्याही को आग का दरिया [1]

सुमन राजे कविता में तीनों कालों को एक साथ समेटती हैं । इतिहास का सहारा लेते वक्त उनकी काव्यचेतना मिथकीय बन जाती है फिर भी वह सभी सीमाओं के लांधकर वर्तमान भावबोध का आकलन करती है । 'एरका' महाभारत की एक नुकीली घात है जिसने राज्यसत्ता का नाश किया । कृष्ण और यादव वंश का नाश उसीसे हुआ । इस घास को उन्होंने अपनी कविताओं में एक व्यापक अर्थ - संदर्भ दिया है । एरका' संग्रह की भिन्न भिन्न कविताओं में वह भिन्न भिन्न निर्णायक भूमिका अदा करता है । हर कविता में एरका शोषण, और अन्याय के विरुद्ध खड़ी शक्ति है । माधवी और शिखंड़िन् में वह शोषित नारी के प्रतिरोध में खड़ी शक्ति है । सम्राट ययाति की पुत्री माधवी को चक्रवर्ती पुत्रों की माता होकर भी चिरकुमारी रहने का वरदान प्राप्त था । उसे अपने कुल एवं पितरों का उद्दार करने के लिये जनम दिया था । ऋषि गालव ने दानी ययाती से आठ सौ श्यामकर्ण घोड़े माँगे । दानवीर ने घोड़े के बदले अपनी पुत्री को दिया । श्यामकर्ण घोड़े इकट्ठा करने केलिए गालव ने माधवी को भिन्न-भिन्न राजाओं के हाथ में सौंप दिया । नारी शोषण का प्रत्यक्ष और ठोस उदाहरण के रूप में माधवी सामने उपस्थित होती है । कुंवारी रहने का वरदान माधवी केलिये शाप बन जाता है । शोषण के रूप और भाव बदल गये हैं । मगर शोषण का शाप नारी सदियों से झेलती रहती है । ययाती के दान-धर्म की महत्ता को बनाये रखने और गालव की गुरु दक्षिण की पूर्ती केलिये नारी को अपनी कोख गिरवी रखनी पड़ी । भिन्न शर्तों पर भिन्न-भिन्न लोगों के पास । स्वयंवर की वेदी में माधवी

---

1. स्थगित कविता - यात्रादंश - सुमन राजे - पृ.सं. 36 प्र. सं. 1987

के हाथ से वरमाला छीनते वक्त और वर्षों बाद दुवारा उसके हाथ में वरमाला थमाते समय किसीने भी यह नहीं पूछा कि माधवी की क्या प्रतिक्रिया है । नारी का सक्रिय विद्रोह कविता की अन्तिम पंक्तियों में गुंभित है । नारी-शोषण के विरुद्ध तनकर खड़े होने केलिये वह एरका तलाशती है ।

भूल चुकी हूँ मैं
वह
जिसे कहते हो तुम
भाषा
इसी आस में
तलाशती हूँ
घास का एक -एक
तिनका शायद इनमें बन जाए कोई [1]
एरका!

'शिखंड़िन' में महाभारत के चरित्रों और प्रसंगों को एक नये समय - संदर्भ में परिभाषित करती हैं । यह कविता दार्शनिक बोझिलता के परे है । विचार-संवेदना की एक गहरी अन्तरधारा इसमें प्रवाहित है । समय और संदर्भ के परोक्ष संकेत के अन्दर कवयित्री की जाग्रत नारी-चेतना बुलन्द है । अम्बा भीष्म से प्रतिशोध लेने केलिये शिखंड़ी का जन्म लेती है । नारी जीवन के विभिन्न पक्षों को प्रस्तुत कविता खोलती है । 'शिखंड़िन' में पितामह भीष्म से शिखंड़ी का कथन स्त्री शोषण का एक नया आयाम खोलता है । मातृ -सत्ता पर पुरुष-सत्ता का अन्याय और उसकेलिए बनाये गये नियमों के प्रति कवयित्रि का स्वर विक्षोभ का है । नारी शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध का स्वर समकालीन कविता का केन्द्रबिन्दु हैं । उस स्वर को कवयित्री ने खूब बुलन्द किया है । कन्या के जन्म को इस बदले हुए संदर्भ में भी मंगल नहीं माना जाता ।

---

1. माधवी - एरका-सुमन राजे -पृ.सं. 19 प्र. सं. 1990

शिखंडिन् भीष्म पितामह से एक अर्थवान प्रश्न पूछती है-

मेरी सूरत के पीछे
दिखती थी अम्बा
फन फुंकारती
तुम्हारा अपराध बोध
कुतर रहा था। तुम्हारे रथ के पहिये
अन्ततः तुम
पुरुष थे पितामह
हरण कर सकते थे स्त्री का
पर युद्ध नहीं उससे
किसने रची थी
मर्यादाएं तुम्हारे
ब्रह्मचर्य की [1]

"सुमन राजे के ही शब्दों में कविता मेरेलिए ऊँट के पेट में छिपाई हुई पानी की थैली की तरह है, जो तपते हुए रेगिस्तानों में नंगे पाँव चलते वक्त बहुत काम आती है । यह पानी भी कहीं दूर का नहीं उसी रेगिस्तान से संचित होता है'[2] उनका कविता संसार नारी का संसार होता है ।

समय की तेज़ रफ्तार के साथ कदम मिलाने की दौड़ में कवयित्री राजी सेठ को भूतकाल कदापि गलत नहीं महसूस होता । क्योंकि बीते हुए क्षण ही काल को तेज़ी से बदलने की प्रेरणा देते हैं । स्त्रियों की अवस्था बीते हुए दिनों में बहुत दर्दनाक थी । पिछले दुःखद दिनों

---

1. शिखंडिन् एरका - सुमन राजे -पृ.सं. 47-48 प्र. सं. 1990
2. कविता को किससे खतरा है - सुमन राजे पृ.सं. 30 वागर्थ अप्रैल - 1998

की पुनरावृत्ति नारी कभी नहीं चाहती । उन दिनों की याद समग्र परिवर्तन की प्रेरणा उन्हें देती है । अंधेरे की घात के खुलने की बात नारी नहीं चाहती । वे अब अपमान सहकर घर के कोने में बैठना नहीं चाहती ।

स्त्रियाँ नहीं चाहतीं
वे अपमानित हो
लड़कियाँ नहीं चाहतीं
खुल जाये अंधेरे की घात।[1]

राजी सेठ का नारी मुक्तिवादी स्वर अवसाद या कातरता से संपृक्त नहीं है । उसमें प्रतिरोध का स्वर ही मुखरित है । परिस्थितियों से जूझकर मुक्ति पाने का संकल्प लेकर वे बैठी हैं । जब तक मनुष्य के भीतर पुरुष सत्ता का वह दंभ बना रहेगा तब तक नारी-मुक्ति संभव ही नहीं । संघर्षशील नारी चेतना यहां खूब उभर आयी है ।

यह सच है
पास कर लोगी ।
एक दिन
वह सीमान्त
रमणी की केंचुक पड़ी रह जाएगी
इसी तरफ
तुम्हारे साथ जाएगा
कंधे भिड़ाने की आक्रामक मुद्रा में ।[2]

आठवें और नवें दशक में ही कविताओं में स्त्री की सहज मानवीय उपस्थिति संभव हुई । आज कवियों की मनस्थिति भी बदलती रहती है । स्त्री-मुक्ति आन्दोलन केवल विदेशों में ही नहीं बल्कि हमारे देश में भी स्त्री जाति को रुढियों और दबावों से मुक्त होने का रास्ता दिखा रही है । यह

---

1. आत्मकथा के विरुद्ध - राजी सेठ- पृ.सं. 21 अक्षरा 47 जनवरी - मार्च. 2000
2. मुक्ति मेरी हो - राजी सेठ - पृ.सं. 22 अक्षरा 47 जनवरी - मार्च. 2000

नारीवाद उत्तर आधुनिकतावाद की एक दस्तक या धड़कन है । इसमें नारी का एक निखरा हुआ तेवर उपस्थित है जिससे नारी - जीवन का नया क्षितिज खोलती रहती है । अब नारियों ने खुद अपनी व्यथा कथा बतानी शुरु की है । आज स्त्री लेखन पहले जैसे आरोपों का शिकार नहीं बनता । नारीवादी लेखन के शुरआती दौर में काफी तर्क वितर्क हुए थे । अब नारी अपने अधिकारों के प्रति काफी सचेत और सतर्क हो गयी है । नारियों ने अपने भीतर की तमाम घुटनां को खुलकर प्रकट करना शुरु किया है । पुरुष सत्तात्मक समाज के विरुद्ध मोर्चा संभालने में आज वे काफी सक्षम हुई है । उन्होंने जुबान खोलकर ज़िन्दगी को उलट डाला । नारी मुक्ति आन्दोलन को 'वाद' के कटघरे में बाँधना अन्याय है । वह स्त्री शक्ति का, उसके व्यक्तित्व का सही माने में विकास है । शोषण से मुक्ति का नारा हर क्षेत्र में मुखरित है । उस शोषण तंत्र की त्रासदी का असली भोक्ता नारियाँ ही हैं । नारी-लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने स्त्री की समस्याओं की चर्चा करने योग्य एक अलग मुहावरा गढ लिया है । उस दृष्टि से स्त्री लेखन की अपनी अलग खासियत है । क्योंकि भिन्न भिन्न कवयित्रियाँ भिन्न-भिन्न् ढंग से अपनी स्थितियों के प्रति प्रतिक्रियान्वित होती हैं । एक ओर प्रतिरोध का स्वर है तो दूसरी ओर चुप्पी । स्वर चाहे अवसाद का हो, उम्मीद का हो प्रतिरोध का हो, ध्येय सिर्फ नारी मुक्ति का है । किन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि स्त्रियों ने केवल नारी संबन्धी कवितायें ही लिखी हैं । वे भी समकालीन कविता के अभिन्न् अंग हैं । उनके लेखन को नारी लेखन कहकर अलग करना समीचीन नहीं है । क्योंकि उनकी तूलिका से जीवन का कोई भी त्रासद पक्ष छूटा नहीं है । अनामिका अर्चनावर्मा, कात्यायनी, सुमनराजे जैसे कवयित्रियों ने जिस सूझबूझ और गहराई से स्त्री समस्याओं को सुलझाने की कोशिश की है वह महत्वपूर्ण है । सच्चाइयों को झेलने और उससे जूझने का उनका साहस और अपराजय भाव उन्हें समकालीन कवियों में महत्वपूर्ण स्थान देते हैं ।

अध्याय - पाँच

समकालीन कविता की भाषा

भाषा की भूमिका

व्यक्ति और समाज को जीवन से जोड़नेवाली इकाई भाषा है । भाषा जीवन से उपजती है । सृजन प्रक्रिया में शब्द काव्य को नई स्फूर्ति दिलवानेवाला बीज है । भाषा और मनुष्य का संबन्ध कविता की रचनाशक्ति को दुगुना करता है । संबन्धों की यह अभिन्नता कविता के भावविन्यास और रूपविन्यास को अलग नहीं करती । कविता और भाषा को अलग अलग इकाई मानकर परिभाषित नहीं किया जा सकता । क्योंकि कविता भाषा से बंधी है और भाषा का स्वरूप बहुआयामी और गत्यात्मक होता है । "काव्य भाषा के विभिन्न तत्व कवि की रुचि एवं दृष्टि, कवि के जीवन, यथार्थ की प्रकृति तथा उसके प्रति कवि की प्रतिक्रिया के स्वरूप, कवि द्वारा यथार्थ को आत्मसात् करने तथा उसके अनुसार स्वयं को रूपान्तरित करने की क्षमता तथा उसकी संवेदना व कल्पना शक्ति के अनुरूप संगठित होते हैं ।[1]"काव्यभाषा सामान्य भाषा की तरह इकहरी नहीं होती बल्कि वह व्यापक अर्थ देती है ।

भाषा रचना की समग्रता से जुड़ी है । इसलिए उसे महज रूपविन्यास कहकर टाला नहीं जा सकता । वह रूपविन्यास के साथ-साथ रचना के विषयानुरूप संभव आन्तरिक विन्यास क्रम भी है । आज की कविता की रचना प्रक्रिया को वस्तु और शिल्प कहकर उसके संवेदन तंत्र को बिखरा देना कवि कर्म को कमज़ोर करना है ।

समकालीन कविता की भाषा आम आदमी से जुड़ी देशज भाषा है जो उसको नया आयाम प्रदान करती है । उसने जो भाषा गढ़ी है उसके भीतर आदमी अपने पूरे परिवेश के साथ उपस्थित है । भोगे हुए अनुभव और कठिन जीवन संघर्ष से गढ़ी समकालीन कविता की भाषा कविता को सहजता और बहाव देती है । जीवनानुभव और भावाभिव्यक्ति के बीच का द्वन्द्व भाषा की नियामक शक्ति है । समकालीन कविता की भाषा की सबसे बड़ी खासियत यह है कि उसने शब्दकोश के बदले जीवन - कोश से कवितायें रचकर एक नयी धुन बजायी है । जीवन

---

1. काव्यभाषा की रचना धर्मिता -सत्यपाल शर्मा -ओर पृ.सं. 46 जूलाई - सितंबर -1991

के व्यापक परिप्रेक्ष्य से जुड़ने की वजह से समकालीन कवि उसकी तह में पैठकर ही जीवन मूल्यों की खोज करते हैं । बहुआयामी जीवन के विविधायामी पक्षों की अभिव्यक्ति केलिये ये कवि भिन्न-भिन्न विन्यास क्रम अपनाते हैं । कविता की रचना प्रक्रिया पर विचार करते समय वस्तुपक्ष की अन्तरंगतायें स्वतः स्पष्ट होती हैं । क्योंकि यथार्थ की तीव्रता का एहसास भाषा की शक्ति पर निर्भर है । पूर्ववर्ती कविता में भाषा की चर्चा एक अलग इकाई के रूप में होती थी । शिल्पलक्षी ये कवितायें जीवन की अभिव्यक्ति करते हुए भी जीवन से दूर चलती थीं। समकालीन कवियों ने पूर्ववर्ती व्यक्ति केन्द्रित भाषा के स्थान पर बोलचाल की भाषा की व्यापकता अपनाई जिससे यथार्थ का धरातल अधिक प्रखर हुआ । बहुआयामी जीवन के विविधायामी पक्षों को सशक्त ढंग से उभारने में यह भाषा सक्षम निकली । इसलिए समकालीन कविता की भाषा की खोज असल में जीवन की खोज है ।"साठोत्तरी हिन्दी कवियों ने परम्परागत रूढ़ियों और शास्त्रीय अलंकरणों के संशिलष्ट आच्छादन से काव्य भाषा को मुक्त कर उसे लोक-जीवन के निकट लाने की कोशिश की । उन्होंने भाषा को कवि-कर्म का अनिवार्य अंग माना।"[1]

यथार्थवादी कविता की भाषा

समकालीन कविता की भाषा के पूर्ववर्ती स्वरूप पर विचार किये बिना समकालीन कविता की भाषा की अहमियत का अन्दाज़ लगाया नहीं जा सकता । समकालीन कविता की भाषा का निपट यथार्थवादी स्वरूप नागार्जुन और त्रिलोचन की कविताओं में भी प्राप्त है । वे श्रमजीवियों की दुनिया को ही अपनी कविताओं का विषय बनाते रहे । इसलिए उनकी भाषा की बुनावट यथार्थवादी रही है । नागार्जुन की कविता की भाषा सृजन की भाषा है जिसके भीतर श्रमजीवियों की एक संश्लिष्ट और जीवंत दुनिया सुरक्षित है । दरअसल उनकी भाषा जीवन के व्यापक संदर्भ-से जुड़ती है । समकालीन सत्य उनकी भाषा में समग्रता से उतरता है । जंग

---

1. साठोत्तरी हिन्दी कविता का लोकचेतनात्मक स्वरूप - हरिशर्मा - पृ.सं. 21, मधुमति दिसंबर 1996

लगे, पथरा गये आज के सत्य का एहसास उन्होंने वहुत पहले ही कराया था । उनकी वहुत सारी कवितायें बेवाकी से श्रम के महत्व की उद्घोषण करती है । श्रम का महत्व ही नहीं श्रमजीवियों का जीवन -संघर्ष भी उनकी भाषा में पूरे तनाव के साथ उतरा है ।

हरिजन गाथा में समय की भयावहता और अमानवीयता का यथार्थ चित्र उभर आया है । उनकी निपट यथार्थवादी भाषा में पैशाचिक हत्याकांड़ सहजता से उतरा है ।

ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि
हरिजन माताएँ अपने भ्रूणों के जनको को
खो चुकी हो एक पैशाचिक दुष्कांड में
ऐसा तो कभी नहीं हुआ था ।[1]

"छायावादोत्तर कविता की भाषा यथार्थ से संपृक्त होकर उसके शक्ति-स्रोतों से संबद्ध होकर विकसित हुई है और उसका विकास वस्तुतः सामाजिक चेतना वाले प्रगतिशील कवियों ने किया है [2] ।"उनकी भाषा चौ तरफा फैले यथार्थ को सफलतापूर्वक दर्ज करती है । दुःख और संताप उनकी भाषा के भीतर रिसता रहता है

सामान्य मानव का संघर्ष पूर्ण जीवन त्रिलोचन के ठेठ भाषा प्रयोग में सहजता से उतरता है । उनकी निपट यथार्थवादी भाषा आगामी कविता की भाषा का प्रारूप तैयार करती है । तनाव को उसी माने में प्रस्तुत करते वक्त भी उनकी भाषा तनाव से जर्जरित नहीं होती । उनकी भाषा औसत भारतीय की अनुभूति की अभिव्यक्ति है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त उपजी प्रगतिवादी विचारधारा सिद्धान्तबद्ध थी जो पूँजिवादी शोषण व्यवस्था के प्रति सचेत और मेहनतकश जनता के अभिभावक थी । यथार्थ की अभिव्यक्ति तब भी अपरिपक्व ही रही । आज के कवि इसके विपरीत एक नये सामाजिक यथार्थ पर खड़े हैं । प्रगतिशील कविता की अभिभावक मनस्थिति और परिवर्तन की प्रबल चाह

---

1. हरिजन गाथा नागार्जुन प्रतिनिधि कवितायें - पृ.सं. 137 प्र. सं. 2004
2. अपनी केवल धार - नन्दकिशोर नवल पृ.सं. 226 प्र. सं. 1979

से उपलब्ध वयस्क मनस्थिति ने समकालीन कविता के स्वरूप और स्वभाव निर्माण में बड़ी भूमिका अदा की । हर समकालीन परिस्थिति के मूल में सामाजिक शक्तियाँ ही कार्यरत हैं । वैयक्तिक भूमिकायें एकदम नगण्य नहीं । मगर निर्णायक भूमिका सामाजिक शक्तियों की ही है । इन परिस्थितियों से गुज़रते गुज़रते कवियों ने यह महसूस किया कि अतिक्रान्तिकारित समकालीन भारतीय यथार्थ को ठोस भूमि के बजाय एक कृत्रिम भूमि पर ही खड़ा करती है । इसलिए बहानेबाजी और बड़बोलेपन कविता के यथार्थ को पुष्ट नहीं करते बल्कि उसे एक कृत्रिम घरातल पर खड़ा करते हैं ।

नयी कविता की भाषा

नयी कविता प्रयोगधर्मी कविता है । उसने पूर्ववर्ती युग की निपट यथार्थवादी भाषा को परिवर्तित करने का प्रयास किया । पूर्ववर्ती भाषा हिन्दुस्तान की आबादी की भाषा है जो अपने अधिकारों से वंचित कातर जनता की भाषा है । नयी कविता की भाषा उच्च मध्यवर्ग के जीवन यथार्थ के द्वन्द्व से उभरी है । उसमें व्यक्ति की निजी भूमिका तलाशने की दृष्टि वर्तमान है । व्यक्तिवादी जीवन-दृष्टि सूक्ष्म से सूक्ष्मतम अमूर्तन में नयी कविता को कैद करती रही । नयी कविता का अस्तित्ववादी मिजाज पूर्ववर्ती भाषा से उसे उधिक जटिल बनाता रहा । वैयक्तिक अनुभूतियों की बहुलता से नयी कविता वैयक्तिक गाठों को सुलझाने का उपक्रम करती रही । भावों की जटिलता से भाषा अधिक जटिल बनती रही । पूर्ववर्ती कविता की आलंकारिक भावुक शौली से नयी कविता भी पूर्णतः मुक्त नहीं हुई । अज्ञेय की कवितायें वौद्धिकता, सूक्ष्मता और सौन्दर्यबोध की दृष्टि से प्रौढ एवं मंजी हुई हैं । उनके भाषाई उद्यम के बीच यथार्थ कमज़ोर होता रहा । एकाध नये कवियों ने भाषा की जड़ता को तोड़ने का उपक्रम किया । मुक्तिबोध, केदारनाथसिंह, रघुवीर सहाय आदि कवियों ने कविता की भाषा की दृष्टि से एक नयी पहचान बनाई । उन्होंने कविता को गद्य के निकट लाकर लय को खोने नहीं दिया ।

मुक्तिबोध का काव्य संसार अन्य कवियों की अपेक्षा जटिल और तनावपूर्ण है । सतही ढंग से जटिल और दुरूह दीखती उनकी भाषा का स्तर बिलकुल भिन्न है । समकालीन कविता की मुख्य धारा की भाषा सर्जनात्मक है । मुक्तिबोध की कविता की जटिलता अस्तित्ववादी कृत्रिम बोझ नहीं । समाज और राजनीति के भीतर घटती जटिल समस्याओं से जूझते कवि उस तनाव को व्यक्त करने केलिये एक दृष्टिकोण अपनाते हैं । नयी कविता के समन्वयात्मक दृष्टिकोण के परे उन्होंने अपने वारीक दृष्टिकोण के ज़रिये भाषा को एक भिन्न और ऊँचा स्तर प्रदान किया । यह जटिलता भाषा की नहीं जीवित संसार की है । काव्यभाषा को चालू मुहावरे से मुक्त करने की सीख समकालीन कवियों ने मुक्तिबोध से पाई है ।

उसके मस्तिष्क के भीतर एक मस्तिष्क
उसके भी अन्दर एक और कक्ष
कक्ष के भीतर
एक गुप्त प्रकोष्ठ और
कोठे के साँवले गुहान्धकार में
मज़बूत सन्दूक
दृढ, भारी भरकम
और उस सन्दूक भीतर कोई बन्द है
यक्ष
या कि ओराँग उटाँग हाय ।[1]

दिमाग और मन के भीतर वर्तमान अन्धकार की ओर कवि इशारा करता है । भीतर के तनाव की जटिलता को बेपर्द करते वक्त उनकी भाषा भी उसी भांति रूपायित होती है । ओराँग उटाँग को मनुष्य के भीतर छिपी असत्य शक्ति का प्रतिरूप मानते है । दिमागी गुहान्धकार और उससे संबद्ध तनाव कैसी खिंची-खिंची सी उनकी भाषा में उतर आया हैं । तनाव को तनाव बनाये रखनेवाली भाषा मुक्तिबोध की खासियत है ।

---

1. दिमागी गुहान्धकार का ओराँग -उटाँग - मुक्तिबोध -मुक्तिबोध रचनावली 2 - पृ.सं. 163 प्र. सं. 1990

मुक्तिबोध की भाषा में सर्जनात्मक संभावनायें निहित हैं । स्वाधीनता के पूर्व और पश्चात की कई वास्तविकताओं के वे भोक्ता हैं । इसलिए उनकी कविता की विषयवस्तु काफी व्यापक है । विषयवस्तु की व्यापकता के अनुसार मुक्तिबोध की भाषा में भी फैलाव आ गया है । उनकी भाषा का प्रखर रूप मजदूरों की हड़ताल संबन्धी कविता में खूब प्रत्यक्ष है ।

वेदना के रक्त से लिखे गये
लाल लाल घनघोर
धधकते पोस्टर
गोलियों के कानों में बोलते हैं .....। [1]

सर्वहारा वर्ग के पक्षधर मुक्तिबोध ने संघर्ष से जूझकर एक जुझारू मनस्थिति हासिल की है । हड़ताली पोस्टर उन्हें वेदना के रक्त से लिखे गये महसूस होते है । व्यक्ति और समाज की सीमायें उनकी भाषा में लय हो जाती हैं । उनकी भाषा अन्य कवियों की अपेक्षा गतिशील और संवेदनशील है जो सार्वजनिक यथार्थ से संपृक्त है ।

केदारनाथ सिंह ने समकालीन कविता का पथ प्रदर्शत करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है । उनसे होकर भाषा एक सशक्त कड़ी बनकर आगे की ओर प्रवाहित हुई । भाषा और मनुष्य के संबन्धों की अभिन्नता पर उन्होंने खूब बल दिया है । "नक्शा" कविता श्रमजीवियों के जीवन की अस्थिरता को द्योतित करती है । एक किसान का बेटा बहुत कुछ जानने के विचार से एक नक्शा घर ले आया । उसने उस नक्शे में बहुत कुछ देखा । धीरे धीरे वह इस बात से अवगत हुआ कि असली दुनिया और नक्शे की दुनिया दोनों अलग है । नक्शा कवित इस सच्चाई को भरपूर उजागर करती है । कानून में फंसी समग्र मानवराशी की कराह उसमें गुंफित है ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावलि मुक्तिबोध पृ.सं. 150 प्र. सं. 1990

नक्शे में कोई राजा नही था ।[1]

पर कानून था

नक्शे में।

भाषा के प्रति संवेदशील केदार की भाषा में सार्थक और सशक्त उपयोग की कई संभावनायें भरी पड़ी हैं । उनकी कविता की ही नहीं भाषा की भी एक खास पहचान है । समय के धड़कते सत्य का कविता में साक्षात्कार करानेवाले कवि की भाषा में अर्थसघनता और लयात्मकता का संश्लिष्ट रूप वर्तमान है । "अकाल में सारस"की उनकी कवितायें भाषा का एक नया और सघन मोड़ उपस्थित करती हैं । "मातृभाषा" कविता जीवन यथार्थ की दृष्टि से ही नहीं उसे शब्दबद्ध करने की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है । समकालीन कविता की भाषा को कवि ने अवश्य ही एक नया मोड़ दिया है

जैसे चींटियाँ लौटती हैं

बिलों में

कठफोड़वा लौटता है

काठ के पास

वायुयान लौटते हैं एक के बाद एक

लाल आसमान में ड़ैने पसारे हुए

हवाई अड्डे की ओर

और मेरी भाषा

मैं लौटता हूँ तुम में

जब चुप रहते रहते

अकड़ जाती है मेरी जीभ [2]

दुखने लगती है

मेरी आत्मा

---

1. नक्श यहाँ से देखो - केदारनाथसिंह - पृ.सं. 27 प्र. सं. 1983

2. मातृभाषा-अकाल में सारस-केदारनाथ सिंह - पृ.सं. 11 द्वि. सं. 1990

यह कविता कवि की मातृभाषा प्रेम को ही नहीं भाषा के पुनः अर्थ संभवा होने की प्रक्रिया को भी संकेतित करती है । मानव विरोधी माहौल में कवि आत्मीय परिवेश को, रागात्मक संवेदना को पुनः संवेदित करना चाहता है ।

परिवर्तित माहौल को रघुवीर सहाय ने भी अपनी काव्य-भाषा में आत्मसात किया । समय का अहसास और कवि का संघर्ष दोनों उनके भाषाई विन्यास में दर्ज हुआ है । वे वक्तव्यबाजी को अपने ढंग से अपनाकर जीवित भाषा की गर्मी पाठकों को महसूस कराते थे । काव्यभाषा में संवादात्मक स्थिति पैदा करते वक्त भी लय छूट नहीं जाता । गद्य का विन्यास कविता को विस्तार ही नहीं देता परिस्थिति जन्य तनाव को भी मूर्त करता है । रघुवीर सहाय की कविता "हँसो हँसों जल्दी हँसो" में तत्कालीन विड़म्बना पूरे तनाव और प्रभाव के साथ उपस्थित है । इस कविता का अन्तराल भी अपना एक अलग अर्थ रखता है ।

हँसो तुम पर निगाह रखी जा रही है
हँसो अपने पर न हँसना क्योंकि उसकी कड़वाहट
पकड़ ली जाएगी और तुम मारे जाओगे।[1]

जीवन और कविता के बदलाव के अनुसार श्रीकान्त वर्मा ने अपनी काव्य भाषा बदली । भिन्न-भिन्न काव्य संग्रहों में कवि की भाषिक संरचना भिन्न रही । नई कविता के भाषा विन्यास में भीतरी और बाहरी तौर से कवि ने परिवर्तन लाने की कोशिश की । संश्लिष्ट विचारों से प्रेरित होकर श्रीकान्त वर्मा ने मध्यवर्ग की बिखरती टूटती ज़िन्दगी के यथार्थ की सार्थक अभिव्यक्ति की । नयी कविता की गरिमामय भाषा को तोड़कर बोलचाल की आमफहम भाषा में काव्य करने की सार्थक कोशिश उन्होंने की । कवि ने अपनी क्षोभ और अस्वीकृति प्रकट करने केलिये बेधक और व्यंग्यपरक वाणी का प्रयोग किया । समकालीन कविता जीवन के व्यापक परिप्रेक्ष्य से जुड़ी है ताकि उसकी भाषा की भी उसमें शिरकत है ।

---

1. हँसो हँसो जल्दी हँसो रघुवीर सहाय - पृ.सं. 25 प्र. सं. 1975

श्रीकान्त वर्मा ने एक भिन्न रचना-संवेदन द्वारा भाषागत खोज़ की । कवि के सशक्त भाषा-संकेत समकालीन कविता की भाषा के सशक्त दिशा संकेत को रेखांकित करते हैं । उन्होंने कविता के प्रचलित मुहावरे को तोड़ा । जीवन-यथार्थ उनकी कविता में शब्दों तक सीमित न रहकर दुरगामि अनुगूँज़ें पैदा करता है । 'प्रजापति' उनकी कविता - संबन्धी परिभाषा को ही उद्घाटित नहीं करती जीवन के विसंगत और उत्तेजक यथार्थों की भी मुनादी करती है

अमूर्त ! कितनी अमूर्त है कविता ।
कहाँ हैं
इन सारी कविताओं में वह चेहरा
जो जितना मेरा है
उतना ही दूसरे का ![1]

कवि-कर्म और मानव-कर्म की बुनियाद स्वतंत्रता है । उस स्वाधीनता के साथ कवि-कर्म के द्वन्द्व और तनाव को भी यह कविता संप्रेषित करती है । कवि कविता में अपने ही चुने हुए नरक से गुज़रते हैं । "एक शब्द दूसरे शब्द के साथ है और नहीं है, एक वाक्य समाप्त है और अधूरा है, एक कविता अपने आप में संपन्न है और फिर भी असंपन्न है ।[2] "

भाषा-परिवर्तन

पूर्ववर्ती भाषा की समस्त गतिशीलताओं को ग्रहण करने के बावजूद समकालीन कविता की भाषा की बनावट पूर्ववर्ती कविता से भिन्न है । जीवन की विसंगतियों,विडम्बनाओं और परिवेशों से सीधे जुड़ने की वजह से समकालीन कविता की भाषा यथार्थ की संश्लिष्टता की प्रतीक व्यवस्था है । जीवन का अत्यन्त सामान्य प्रसंग आज की कविता का विषय बन गया है । बयान की भाषा के बदले चित्रण की भाषा को समकालीन कवियों ने आत्मसात किया है ।

---

1. प्रजापति-जलसाघर श्रीकान्त वर्मा पृ.सं. 76 प्र. सं. 1993
2. विसंगत यथार्थ की कविता समकालीन कविता का व्याकरण - परमानंद श्रीवास्तव – पृ.सं. 66 प्र. सं. 1980

वस्तुस्थिति को उकेरने की अपूर्व काबिलियत उनमें है । समकालीन कविता में अनुभवों का वैचारिक धरातल स्पृहणीय नहा बल्कि जीवन संदर्भों से उत्पीड़ित मानव की व्यथा चिन्हित है । उसकी अन्तरधारा विचार नहीं जीवन सन्दर्भ है । सामान्य जीवन संदर्भों के वैविध्यपूर्ण आयाम समकालीन कविता को ऊँचा ओहदा देता है । खगेन्द्र ठाकुर के शब्दों में "आलोच्य दौर की कविता जीवन के सामान्य कारबार के बीच से उठकर आयी है । इसलिए स्वभावतः जीवन के सामान्य कारबार की भाषा कविता की भाषा के रूप में विकसित हुई है । यह भी कहा जा सकता है कि इस दौर के कवियों ने अपने जीवन के अनुभवों को, जीने के विविध अनुभवों को काव्यात्मक स्वरूप देने की समस्या का समाधान कामकाज की भाषा का उपयोग करके किया है "।[1]

समकालीन कविता की भाषा की बुनावट

अकविता के दौर में धूमिल ने लिखना शुरू किया था । मगर उस सीमित हाशिये को उन्होंने तुरन्त ही तोड़ा और समय की माँग के अनुरूप एक भाषा गढ़ी । आदमी को आदमी की गिरफ्त से मुक्त करके एक दूसरे से जोड़ने की अपूर्व ताकत उनकी कविताओं में है। इसलिए रूप, रंग और अर्थ की दृष्टि से धूमिल की भाषा पूर्णतः स्वतंत्र है। कविता में भाषा की पहचान कवि की क्षमता का एक विशिष्ट पहलू है । उन्होंने अपनी कविता के लिये शब्द और संदर्भ अप्रत्याशित क्षेत्रों से चुने हैं । इसलिए उनकी कविता की भाषा मानवीय सरोकार से संपृक्त है । एक ओर धूमिल की कविता मनुष्य की कमज़ोरियों को स्पष्ट करती है तो दूसरी ओर वस्तुस्थिति का साक्षात्कार भी करती है । धूमिल की भाषिक संरचना समकालीन दौर का बेजोड़ हिस्सा है । उनकी काव्यशैली ने आगामी पीढी पर मुहर लगाया है । अपने समय की विसंगति को तेज़ छुरी-जैसी भाषा में उन्होंने पेश किया है । अमानवीय संकट को वे कविता के माध्यम से सार्वजनिक बनाते हैं । मैं हूँ" कविता एक कवि की आत्माभिव्यक्ति है । उस आत्मवक्तव्य

1. समकालीन कविता की भाषा - कविता का वर्तमान - खगेन्द्र ठाकुर पृ.सं. 192 प्र. सं.1988

में समग्र मनुष्य समाज की पीड़ा ही दर्ज हुई है भूख, टूटन, आँसू आदि से त्रस्त आम आदमी ही उनकी कविता के केन्द्र में है ।

मुझे लिखो, मैं कटी हुई अंगुलियाँ हूँ
जिसे भूख ने खा लिया है ।
मैं हूँ अथाह रुदन, अंधकार के आरपार
जिसे एक टूटे हुए हृदय ने
खुद को जोड़ने केलिये गा दिया है ।[1]

यद्यपि उनमें क्रान्तिकारी अन्दाज़ विद्यमान है फिर भी कवि की भाषा ठेठ और सशक्त है । धूमिल की कविता की भाषा की कई भावी संभावनायें हैं । उन्होंने साधारण जन-जीवन और जनतंत्र से संबन्धित कई मामूली शब्दों का संयोजन करके भाषा को यथार्थवादी और पैनी बनाई है । उसकी काव्यात्मक संप्रेक्षणीयता तेज़ है । जहाँ समकालीन कविता जीवन के बहुआयामी पक्षों को बेपर्द करती रहती है वहाँ उनकी भाषा के भी कई स्तर हो सकते हैं । मामूली शब्दों के ज़रिये अपने अनुभव-लोक को वे दूसरों के लिये अनुभवगम्य बनाते हैं । शब्दों को प्रचलित अर्थों से मुक्त करके उन्हें नई अर्थ-भंगिमा देते हैं । समकालीन कविता की ज़मीन जन-भाषा की है जिसमें शौलियों से बढकर मनोवृत्तियाँ ही मुख्य हैं । बोलचाल की भाषा को काव्यभाषा बनाने से काव्यसंसार को क्षति नही पहूँचती बल्कि कविता अपनी जड़ों की ओर लौटती है । तब काव्य-भाषा वस्तुस्थिति की नहीं लड़ाई की भाषा बन जाती है ।

पूर्व परम्पराओं से अब तक के हमारे मोह और सलूक को तोड़कर नवीन परिस्थितियों की माँग के अनुरूप समकालीन कवियों ने एक नयी धारा प्रवाहित की है । इसलिए वे कविता में नया अर्थ-स्तर खोज निकालने में सक्षम निकले हैं । "आज का सार्थक कवि-कर्म परिस्थितियों से गरजकर अपने होने का हिसाब-किताब रखना भर नहीं हैं बल्कि उस होने की दिशा को खोजना और पाना भी हैं ।[2]"

---

1. मैं हूँ - कल सुनना मुझे-धूमिल - पृ.सं. 62 प्र. सं. 1970
2. समकालीन कविता की भाषा - कविता का वर्तमान खगेन्द्र ठाकुर पृ.सं. 192 प्र. सं.1988

आठवें और नवें दशक तक आते आते समकालीन कवियों और कविताओं ने अपनी एक स्वायत्त पहचान बना ली । जीवन संबन्धी बदली हुई धारणाओं को अभिव्यक्त करने योग्य एक भाषा भी समकालीन कवियों ने आत्मसात कर ली । समकालीन कविता के आधार-भूत यथार्थ के साथ भाषा भी विकसित होती रही । मानवीय संपर्क के सब से महत्वपूर्ण माध्यम भाषा कविता संबन्धी अवधारणाओं के बदलने के साथ साथ भिन्न भिन्न रूपों और भावों को ग्रहण करती है । समकालीन कविता की भाषा और काव्यवस्तु को अलग करना उसके संवेदन तन्त्र को विखरा देना है । भाषा मनुष्य का एक संज्ञानात्मक क्रिया कलाप है जिसके ज़रिये वह अपने अनुभव भावी पीढी को हस्तांतरित करता हैं ।"[1] समकालीन कविता यथार्थ की विजय की कविता है । वह समकालीन जनविरोधी शक्तियों एवं मूल्यों से संघर्ष करती है । सामाजिक परिवर्तन की पृष्ठभूमि में आर्थिक पूँजिवादी और राजनीतिक संकट की स्थितियाँ मौजूद हैं। सामाजिक उथल-पुथल और राजनीतिक अस्थिरता के इस युग में सर्वहारा वर्ग और सत्ता के बीच की खाई गहरी होती जा रही है । संकट की अवस्था से गुज़रते गुज़रते बह खुद अपनी चेतना को तीव्र कर रहा है । 'बदलना' शब्द आज जनता के सामने एक प्रश्न चिह्न लगाता है । जनता लगातार एक नये विकल्प की खोज में है । क्योंकि उसे मालूम नहीं है कि क्या बदलना है और क्या नहीं। फिर भी बदलाव की इच्छा और विकल्प की खोज मनुष्य को यथार्थ की एक नयी अवस्था में पहुँचा देती है ।

समकालीन -यथार्थ का गहरा असर समकालीन कविता की भाषा की बुनावट पर भी पड़ा है । बहुआयामी समकालीन कविता की विविधायामी भाषा की अहमियत पर विचार करते समय उसकी इतिहास दृष्टि, मनुष्यधर्मिता और लोकधर्मी चेतना स्वतः उभर आने लगती हैं । यह अन्तश्चेतना समकालीन कविता की संसक्ति है । भाषा के इन आयामों का विश्लेषण अलग महत्व रखता है ।

भाषा की इतिहास दृष्टि

भाषा कविता की संसक्ति है । उस संसक्ति को व्यक्त करनेवाली इकाई उसकी इतिहास दृष्टि है । वह वस्तुस्थितियों को बड़ी गहराई से परखती है । शब्दों और अन्तरालों के भीतर वह गहरी उतरती है और नया अवबोध जगाती है । इतिहास दृष्टि का महत्व इस दृष्टि से है कि वह कविता के शब्दों को अर्थवान बनाती हैं । उसमें नयी-नयी संभावनायें और अर्थ भंगिमायें खोज निकालती है । वस्तुस्थिति के गहरे अवबोध से भाषा बलवती होती है ।

आज के कवियों ने जीवन के मूल-भूत अनुभवों को वस्तुस्थिति के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । अनुभव-चित्रण की भाषा यथार्थ की खूब व्यंजना करती है । समकालीन कविता की भाषा पूर्ववर्ती कविता की भाषा से इस दृष्टि से भिन्न है कि उसकी सघनता बढ़ती गयी। उसके पूर्व भाषा को शक्ति दिलाने केलिये भाषेतर माध्यमों का प्रयोग किया जाता था । शब्दों के अर्थ और शक्ति को न पहचानकर शब्देतर माध्यमों को अपनाने का श्रम कविता को कमज़ोर बनाता था । जीवन-संघर्षो को कविता की बुनियादी अन्तरधारा मानते नगार्जुन त्रिलोचन और मुक्तिबोध की धारा से जुड़कर ही समकालीन कविता की धारा आगे बढती है । द्वन्द्वात्मक माहौल को शब्दों के भीतर जकड़ने का अपूर्व साहस कुमार विकल में है । शब्दों से आज लोग ऊबते जा रहे हैं । किन्तु कवि कुमार विकल को शब्दों की शक्ति पर पूरा भरोसा है । निराला और मुक्तिबोध के पश्चात अन्धेरे को पहचानने और उससे जूझने की क्षमता महज कुमार विकल ने दिखाई । अन्धेरे से लड़ने की चाह उनकी भाषिक संरचना में भी है । अमानवीय व्यवस्था के आतंक और सत्ता के उत्पीड़न से उपजे अन्धकार की शिनाख्त उनकी कविताओं में बिखरी मिलती है । भाषा में भी वे बिम्बों का अन्धकार नहीं चाहते । क्योंकि उसके अन्धेरे में जीवन का उजाला छूट जाता है । समकालीन कविता बिंबों से मुक्ति की कविता है । कुमार विकल की कविता 'एक छोटी सी लड़ाई' समकालीन भाषा के बदलाव का प्रस्थान बिन्दु है जिसे पकड़कर बाद की पीढ़ी आगे बढ़ी है ।

मुझे लड़ना है
अपनी ही कविताओं के बिंबो के खिलाफ
जिनके अन्धेरे में मुझसे
ज़िन्दगी का उजाला छूट जाता है [1]

एक दूसरी कविता में शब्दों की अर्थवत्ता को न पहचानकर उसे तोड़ने वाले मनुष्य के खिलाफ लड़ना चाहते हैं । वे शब्दों की ही नहीं उसके अर्थों की भी हिफाजत चाहते हैं । शब्दों की अर्थवत्ता को तोड़ना और छोड़ना दोनों उन्हें खूब अखरता है । यह कविता के प्रति अन्याय है साथ ही कविता की मनुष्य धर्मी चेतना को भी क्षति पहुँचाना है ।

समकालीन कविता शब्दों से खिलावाड़ नहीं करती शब्दों की अर्थवत्ता की उद्घोषणा करती है । वे अपने तरीके से शब्दों की हिफाजत करना चाहते हैं ।

मुझे शब्दों की हिफाजत
अपने तरीके से करनी है
और पहली लड़ाई
उस आदमी के खिलाफ़ लड़नी है
जो शब्दों की अर्थवत्ता को तोड़ता है
और दूसरी उसके विरुद्ध
जो शब्दों की अर्थवत्ता को छोड़ता है ।[2]

कवि समाज को जड़वत् बनानेवाली शक्ति के खिलाफ लड़ते है । समकालीन कविता की भाषा अपने संघर्ष से इतिहास को आगे बढानेवाली आम जनता से जुड़ी है । उसकी नयी रचनात्मक भूमिका शब्दों की निरर्थकता के परे उसमें सार्थकता लाने की कोशिश करती है । यद्यपि वे सपाट ढंग से अपनी बातें कह छोड़ते हैं फिर भी कविता के भाव और अर्थ कमज़ोर

---

1. एक छोटी सी लडाई -कुमार विकल पृ.सं. 33 प्र. सं. 1980
2. शब्दों की हिफाज़त केलिये - एक छोटी सी लडाई -संपूर्ण कवितायें -कुमार विकल - पृ.सं. 74 प्र. सं. 2000

नहीं पड़ते ।"वे एक ओर भारतीय समाज में जनतंत्र के नाम पर उग रहे वनतंत्र में बढती दरिन्दगी के विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे तो दूसरी ओर अपनी विश्वास भरी भाषा में अपने समय का अप्रिय सच कहने के लायक बनाने के लिये रचनात्मक संघर्ष कर रहे थे । इस दोहरे संघर्ष से पैदा होने के कारण ही उनकी कविता प्रायः आत्मा की चीख लगती है ।"[1] समकालीन कवि वैयक्तिक लड़ाई में जनता को हिस्सेदार बनाकर जनता की लड़ाई लड़ते हैं । यह लड़ाई केवल राजनैतिक व्यवस्था से नहीं उस सोच के विरुद्ध भी है जो शताब्दियों से मनुष्य को यथास्थिति में संतुष्ट रहने केलिये बाध्य करती है । इस लड़ाई ने भाषिक संरचना पर भी गहरा प्रभाव डाला है । यह प्रवृत्ति एक नये तेवर और मुकम्मल एहसास के साथ चन्द्रकान्त देवताले में है । वे भाषा का इस्तेमाल चमत्कार या खिलवाड़ केलिये नहीं करते । वस्तुस्थिति के प्रति देवताले का गुस्सा और आक्रोश महज स्थिति को समझने से उपजा नहीं बल्कि खुद उससे गुज़रने से उपजा है । समय की शिनाख्त ने उनके दिल और दिमाग को ही नहीं रक्त और मज्जे को भी झकझोरा है । समकालीन होने की भागदौड़ में भी उन्होंने मानवीय अनुभवों की गहराई को सही माने में पहचाना । उन्होने कविता को मनुष्य के निकट लाने में पहलकदमी की है ।

'रचना-प्रक्रिया' में वे अन्धकार और प्रकाश को एक साथ पिरोना चाहते हैं । जीवन की हर स्थिति को शब्दबद्ध करने को तैनात कवि शब्द और अर्थ को जोड़कर अपने ही भीतर के सत्य को उद्‌घाटित करते हैं

हाथों में होते हैं अर्थ
पारे की तरह
और शब्द रेत की मानिन्द
मैं रोपना चाहता हूँ ।
पारे को रेत में
और फिर रेत को [2]

---

1. धूपधर्मी कविताओं का कवि - कुमार विकल की संपूर्ण कविताओं की भूमिका से -मैनेजर पाण्डेय - पृ.सं. 5 प्र. सं. 2000
2. रचना प्रक्रिया -दीवारों पर खून से चन्द्रकान्त देवताले -पृ. सं. 10 तृ. सं. 1975

देवताले की भाषा इतनी प्रौढ और सशक्त है कि मनुष्य पर होती साजिश का बेसाख्ता चित्र 'लकड़बग्घा हंस रहा है' संग्रह की कविताओं में हुआ है । जीवन की हकीकत को रेखांकित करते वक्त कवि ने उस जीवन को भाषा का एक भद्दा नाटक कहा है । श्रमजीवियों के पसीने से समय का पहिया घूमता रहता है । मगर वे अपनी ताकत से बिलकुल अनभिज्ञ होकर नमक और प्याज के टुकड़े को ढूँढते रहते हैं । समय के सत्य को भाषा में पकड़ने की सफल कोशिश उन्होंने निम्नलिखित कविता में भी की है ।

इस साजिश को मैं पहचानता हूँ
अपनी कविता की कपट वेधी आँखों से
क्योंकि कपट से कपट के बीच धँसी हुई यह भाषा
सुख के पहाड़ की चोट तक पहुँचाती है
हड्डियों को सपना दिखाती है तपती धूप में
एक क्षण बाद
गायब पहाड़
क्षत-विक्षत सपना
जस की तस हड्डियाँ
यह भाषा चुपके
आदमी का मांस खाती हैं ।[1]

आठवें दशक के ये कवि भाषा के मूल में निहित यथार्थ के सरोकारों को खूब उजागर करते हैं । परिस्थिति और मनस्थिति के अनुकूल भाषा तलाशने की प्रक्रिया में देवताले जैसे कवि पूर्ववर्ती भंगिमा युक्त भाषा पर चोट करते हैं । समसामयिक बदलते यथार्थ से कविता को अलग करनेवाली पूर्ववर्ती भाषा पर समकालीन कवियों ने प्रहार किया । आठवें दशक की

1. भाषा के इस भद्दे नाटक में - लकड़बग्घा हंस रहा है चन्द्रकान्त देवताले -पृ. सं. 15 उद्‌भावना -फरवरी 1980

कविता में भाषा संकेत कुछ गहरे हो गये हैं । समकालीन कविता में शब्द-योजना की कोई निर्धारित पद्धति नहीं है जिसस भाषा का सारा व्याकरण ही बदल गया है और भाषा नये सिरे से भावों को प्रस्तुत करने लगी । आज की कविता की भाषा समसामयिक सच्चाई का व्यापक संदर्भ में गहरा संकेत देती है । समकालीन दौर में रचनारत लीलाधर जगूड़ी इस बदले हुए व्याकरण को लेकर ही कवितायें बुनती रहीं । अनुभव की अन्तसूत्रता की वजह से उनकी कविताओं को समकालीन महाकाव्य का दर्जा उपलब्ध हो गया है । उनकी कविता रूढ काव्य संस्कारों को तोड़कर परंपरा के पुनराविष्कार की प्रक्रिया को अपने में आत्मसात करके समाज की हकीकत का खुला आविष्कार करती है । भाषा का सरलीकृत रूप जगूडी में खूब पाया जाता है । सरल गद्यात्मक भाषा में शब्दों की आवृत्ति के भीतर जीवन यथार्थ को चित्रित करने की उनकी क्षमता उल्लेखनीय है । हर रोज़ कोई न कोई खोया जाता है या लापना होता है । तिस पर भी शेष लोगों का जीवन बिना किसी रुकावट से चलता रहता है । किसी न किसी कारण से हर दिन आबादी में कमी आती है । मगर संकट यह है कि इस अवस्था में भी कभी किसी एक का खाना भी बचा नहीं रहता । भाषा की सहजता और सरलता के भीतर जीवन यथार्थ कभी कृत्रिमता का कवच धारण नहीं करता ।

लेकिन ताज्जुब है कभी भी उस एक का
खाना नहीं बचता
कभी भी उस एक के सोने की जगह सूनी नहीं रहती

हमें हमारे अलावा ही कोई गिन सकता है
सुबह हम कितने थे और कितने रह जाते हैं शाम को

शाम को हम कितने थे और कितने रह जाते हैं सुबह को
हममें से रोज़ कोई कम हो जाता है ।[1]

'पेड़ की आज़ादी' प्रश्नोत्तर रूप में लिखी गयी है । पेड़ से पूछा गया कि उसे पत्ते, फूल, फल, तना, टहनियाँ इनमें से क्या चाहिए । उनको इनमें से खास वस्तु सुनाने की इजाजत दी जाती है । मगर पेड़ चुनाव कैसे कर सकता है । पेड़ों के नाश से सारी समृद्धियाँ झड़ेंगी । मनुष्य उसे पेड़ होने का उदाहरण बनाना चाहता है । मगर आज़ादी जड़ों से उखाड़ने में नहीं होने में है । पेड़ को मनुष्य का हर सवाल बेहूदा लगता है । इसलिए पेड़ ने ऐलाना किया कि –

कुछ देकर आप कुछ नहीं देते हो
जो देते हो वह अभाव और जो नहीं देते
वह मेरी ज़रूरत बन जाता है
कुछ लेकर आप जो स्वतंत्रता देंगे
देने के बाद भी
वह जितनी आपके पास चली जायेगी
उतना मैं अधूरा हो जाऊँगा
यह जानते हुए भी कि स्वतंत्रता होने में है
न होने में नहीं ।[2]

भाषा की मनुष्य धर्मी चेतना

समकालीन कविता वस्तु जगत के शोषण और यथार्थ को बिना किसी आलंकारिकता और भावुकता से सरल शब्दों में प्रस्तुत करती है । भावात्मक शोषण का वे बिलकुल निषेध करते हैं । विनोद कुमार शुक्ल की छोटी छोटी कविताओं से गुज़रते हुए एक शान्त, धूसर

1. रोज़ एक कम - भय भी शक्ति देता है -लीलाधर जगूड़ी - पृ.सं. 24 प्र. सं. 1991
2. पेड़ की आज़ादी - महाकाव्य के बिना - लीलाधर जगूड़ी - पृ.सं. 115 प्र. सं. 1996

अनुभव सा लगाता है । मुहावरों की आलंकारिकता, बड़बोलेपन आदि से उनकी कवितायें मुक्त है । भाषा का एक नया द्वार उनकी कविताओं से खुलता है । शान्त किन्तु प्रौढ़ और गंभीर लहजा समकालीन कविता की सबसे बड़ी खासियत है । वही बात समकालीन कविता को पूर्ववर्ती कविता से अलगाती है ।"उनकी कविता निर्मोह और अपस्फीति की कविता है । वे चारित्रिक मसखरेपनं के सामने अपनी कविताओं के माध्यम से प्रश्नचिन्ह लगाते है ।"[1] अपने वाक्य विन्यास की मौलिकता से अनुभव-लोक को पाठकों के पास छोड़कर अदृश्य होनेवाली भाषा चातुरी कवि की अपनी खासियत है । झरती हुई पत्तियों की जगह फूटती हुई कोंपलों में समय और काल को देखने का हौसला उनकी कवितायें दिखाती हैं । जिस भाषा को राजनीतिज्ञों और कवियों ने झूठा और अर्थहीन माना था उसी भाषा में शुक्लजी ने यथार्थ और खोयी हुई आस्था की पुनरसंगठन और पुनररचन की है "स्टेशन की तरफ आते जाते 'और "प्यारे नन्हे बेटे को' कविता समकालीन भाषा का एक नया आयाम उपस्थित करती हैं । पहली कविता में जेल के दहशत भरे वातावरण अन्धेरा और तकलीफ देह का विन्यास गद्यमयी भाषा में उन्होंने किया है । कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से 'प्यारे नन्हे बटे को' कविता उल्लेखनीय है । आधुनिकतावाद और यथार्थवाद की टकराहट की तीखी अभिव्यक्ति उनकी भाषिक संरचना की मुनादी करती है । वस्तुगत यथार्थ और भाषा का तीखा एहसास यह कविता देती है ।

ऊँचा हो लड़का
लड़की का हो दुल्हा प्यारा
उस धटना तक
कि हर वो आदमी
जो मेहनतकश
हर वो औरत
दबी सतायी बोझ उठानेवाली [2]
लोहा

---

1. सब कुछ होना बचा रहेगा के ब्लर्ब से विनोद कुमार शुक्ल प्र. सं. 1992
2. प्यारे नन्हे बेटे को - सबकुछ होना बचा रहेगा - विनोद कुमार - शुक्ल - पृ.सं. 12 प्र. सं. 1992

उन्होंने लोहा और पेड़ शब्द का खूब प्रयोग किया है जो मेहनतकश आदमी के जीवन स़ जुड़े हैं । पेड़ जीवन में अनुभव होती शून्यता, प्रकृति की वीरानगी और स्वतंत्र देश में अनुभव होनेवाली अस्वतंत्रता आदि बातों की घोषणा करता है । निम्न मध्यवर्गीय आदमी के गर्द-भरे गुबार का चित्र ये कवितायें उपस्थित करती हैं । कवि के शब्दों में मानव-जीवन की उपस्थिति की संवेदना सशक्त हुई है ।"कवि के यथार्थ बोध ने उन्हें लोक-जीवन के निकट पहूँचा दिया है । उनकी दृष्टि का आत्मीय संस्पर्श संप्रेषण को जीवंत बनाता है । उनकी कविता जैसे एक तीसरा नेत्र है जो बेहद मामूली और रोज़मर्रा दृश्यों के पीछे छिपे सुंदर स्वप्नलोक या ड़रावने भुतहेपन को उजागर कर देती है । और ऐसा वो करती है बिना फैंटसी या सर्रिलियज्म का सहारा लिए ।"[1]

सृजनात्मक क्षमता से संपन्न विनोद कुमार शुक्ल की भाषा एक सशक्त और गंभीर आभा के साथ उनकी कविता की हर पंक्ति में उपस्थित है । उनके निरलंकार वाक्यविन्यास शब्द भंगिमाओं और अर्थ भंगिमाओं को एक साथ उकेरता है । "अतिरिक्त नहीं" काव्य - संग्रह के प्रारंभ पृष्ठ पर उन्होंने अपने कविता संसार को इस प्रकार परिभाषित किया है कि कवि की भाषिक संरचना का एक स्पष्ट चित्र मन में उजागर होता है ।

शब्दहीनता में
मैं किसी भी कविता के पहले
मुक्ति को मुक्तियों में दुहराता हूँ
शब्दशः नहीं ध्वनिशः
एक झुंड़ पक्षियों का पंख फड़फड़ाकर
उड़ जाता है ।[2]

'हताश से एक व्यक्ति बैठ गया' कविता के द्वारा वे आदमी को पहचानने के पहले उसकी हताशा को पहचानते हैं । भाषा की दृष्टि से वे एक ऐसे प्रयोगधर्मी कवि हैं जिनमें भारतीय समाज

---

1. अतिरिक्त नहीं - विनोद कुमार शुक्ल प्र. सं. 2000
2. अतिरिक्त नहीं विनोद कुमार शुक्ल प्र. सं. 2000

और मानव मात्र के प्रति सहानुभूति, करुणा और प्रतिबद्धता एक साथ मिलती हैं । उनकी शैली न प्रतिबद्धता और प्रयोगधर्मिता की साजिश की है । उन्होंने हिन्दुत्व को महज धार्मिक दृष्टि का पर्याय नहीं बल्कि मानवतावादी आध्यात्मिक, सॉस्कृतिक, कलात्मक परंपरा विशेष का पर्याय माना है । इतिहास, भविष्य, वर्तमान और अतीत का एकीकृत रूप उनकी कविताओं के मूल में वर्तमान है । इन सब की तह में खुद अच्छा मनुष्य बनने और समग्र दुनिया को सुखी करने और मुक्त करने की अदम्य लालसा निहित है । हताशा से बैठे व्यक्ति को खींचते वक्त उनकी सरल भाषा व्यक्ति से बढ़कर उसकी सख्त हताशा, टूटन और दुर्दशा को शान्त ढंग से ध्वनियों के ज़रिये व्यक्त करती है । समग्र देश की बुनियाद में वर्तमान नासूर को उन्होंने पहचाना है ।

हताशा से एक व्यक्ति बैठ गया था
व्यक्ति को मैं नहीं जानता था
हताशा को जानता था
इसलिए मैं उस व्यक्ति के पास गया ।[1]

समकालीन काव्यभाषा जीवनानुभवों का प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करती बल्कि उसको इन्द्रियग्राह्य भी बनाती है । श्रम की सघनता और उसकी थकान को पूर्ववर्ती नागार्जुन जैसे कवियों ने अभिव्यंजित किया है । कवि उदयप्रकाश ने उस थकान को भाषा में पूर्णतः उतारा है । कारीगर की कलाकृति में पसीने से लथपथ श्रमजीवि के चेहरे का प्रत्यक्षीकरण उन्होंने किया है । श्रम और कर्म के विषय का तादात्म्य दिखाने में उनकी कविता काफी सक्षम हुई है । प्रस्तुत कविता में जीवनानुभव समग्रता और सहजता के साथ उभरा है । चीखते - कराहते संसार से अपने को जोड़कर उस जीवन के रेशे-रेशे को अलग करने की उन्होंने कोशिश की है । समाज का निष्करुण यथार्थ उनकी भाषा में मूर्त हो गया है । यथार्थ भाषागत विशेषता के साथ उसमें उभरा है ।

---

1. हताशा से एक व्यक्ति बैठ गया था अतिरिक्त नहीं विनोदकुमार शुक्ल पृ.सं. 13 प्र. सं. 2000

कारीगर नहीं है

लेकिन इमारत में

कारीगर का चेहरा पसीने में [1]

लथपथ है

समकालीन कविता का परिवेश सतही ढंग से शान्त दीखने पर भी अन्दर से बेचैन है । यह बेचैनी और द्वन्द्व जो जीवन का है भाषा में भी उसकी मौजूदगी समकालीन काव्यभाषा की खासियत है । असद जैदी की पंक्तियों में जीवन का यह विरोधाभास अतिशय तन्मयता के साथ बरकरार है ।

करवट ली बच्चा देखा अनमना है

पत्नी बेसुध सोयी पड़ी है

और हम तीनों बेज़ार है

नहूसत - अलग-बगल ऊपर-नीचे सब तरफ व्याप्त थीं

सोती रही थी और जागती रही थी

खा चुकी थी और रो चुकी थी

हँसने लगी थी और जाने लगी थी [2]

परस्पर विरोधी क्रियायें-सोते हुए भी मानसिक तौर से जागी अवस्था मन की बेचैनी को व्यक्त करती है । स्थितियों की अभिव्यक्ति में जीवन की जटिलता और उससे उत्पन्न द्वन्द्व का प्रत्यक्षीकरण होता है ।

असद् जैदी की भाँति अरुण कमल ने भी भाषिक संरचना की दृष्टि से सशक्त मिसाल अपनी कविताओं के द्वारा प्रस्तुत की है । कितने सरल शब्दों में किन्तु पूरी तन्मयता और

1. इमारत - सुनो कारीगर - उदयप्रकाश - पृ.सं. 18 प्र. सं. 2001
2. दोपहर - कविता का जीवन - असद जैदी - पृ.सं. 27-28 प्र. सं. 1998

अहमियत के साथ उन्होंने समकालीन यथार्थ की अभिव्यक्ति की है । समकालीन दौर में अन्याय खुले तौर पर हो रहा है । हर आदमी इस बात से वाकिफ है कि परोक्षतः और प्रत्यक्षतः समकालीन संदर्भ में अन्याय हो रहा है । फिर भी अपनी सुरक्षा हेतु सब चुप्पी साधते हैं । तानाशाही मनोवृत्ति युगों से मौजूद है जो भिन्न-भिन्न समय से गुज़रते-गुज़रते अलग अलग रूप अपनाती है । गुप्त आज कुछ भी नहीं है । कोख का बच्चा भी इस वैज्ञानिक युग में प्रत्यक्ष और खुला है । हर कहीं खुला संग्राम हो रहा है । फिर भी आदमी चुप्पी साधता है । हर जीवन संदर्भ समकालीन कविता में प्रत्यक्षीकृत हो गया है भाषा की सरलता और तन्मयता के ज़रिये -

कोई अपनी पत्नी को पीट रहा है बेतहाशा
कहता है मेरी औरत है
जहाँ कहीं दुःख में आदमी
जहाँ कहीं मुक्ति केलिये लड़ता है आदमी
वहाँ कुछ भी नहीं है निजी
कुछ भी नहीं है गुप्त
फिर भी तुम चुप क्यों हो ? [1]

लाक्षणिक प्रयोग छायावादी कविता से निकलकर समकालीन कविता तक आ चुका है । वह लाक्षणिक प्रयोग भी मानव संवेदना से संपृक्त है जो मानवपक्ष को खूब संवेदित करता है । मामूली सरल शब्दों के ज़रिये लाक्षणिक प्रयोग करनेवालों में राजेश जोशी अगुवा है । स्वप्न देखनेवाला मनुष्य है । स्वप्न शब्द मनुष्य की मौजूदगी का एलान करता है । रोटी हिरन होने का सपना संजोने के पीछे स्वप्न संजोते मनुष्य का चित्र उभरता है । यह अप्रचलित शब्द संयोग मनुष्य की मौजूदगी को ध्वनित करता है । जंगल जैसी व्यवस्था में आदमी को एक जून

1. तुम चुप क्यों हो - सबूत - अरुण कमल - पृ.सं. 60-61 प्र. सं. 1999

अन्न केलिये कुलांचें मारनी पड़ती है । मगर आदमी के स्वप्न को अधूरा बनाता हुआ चीता हिरन का दबोच लेता है । इसके बाद एक स्वप्न हीन सचमुच की रात मनुष्य को अनुभव होती है जिसका वह वर्षों से आदी है ।

रोटी हिरण होने के स्पप्न में डूबी
जंगल में कुलांचे भर रही थी ।[1]

अमानवीय परिस्थितियों का प्रतिरोध करने में असमर्थ मनुष्य उससे गुज़रते-गुज़रते संवेदनहीन होता जा रहा है । उसके भीतर एक शिकारी जाग पड़ता है । यह बदली हुई मनस्थिति उसकी लाचारी है । जीवन संदर्भ से, अपनी निर्ममता और संवेदनशून्यता से मनुष्य मनुष्यत्व खो रहा है । इस आतंकवादी संस्कृति को मनुष्य के नये जीवन-संदर्भ से जोड़कर लाक्षणिकता द्वारा नयी अर्थ छवि से संपन्न करता है । अतीत में जो घट चुका है और आज जो घट रहा है उसकी पहचान अरुण कमल समय की दृष्टि से करते हैं । "अरुण कमल अक्सर समय को और चीज़ों को उसकी तरफ से भी देखना चाहते हैं जो सबसे कमज़ोर है, जो अपने कौर केलिये भी हाथ नहीं उठा सकता।"[2]

पेड़ को पत्थर बनने में लगा है हज़ार वर्ष
आदमी देखते देखते पत्थर बन रहा है ।

विगत पीढी के कवियों के समग्र शब्दाडंबर के परे सरल शब्दों के ज़रिये रचनात्मक संप्रेक्षणीयता को तीव्र और प्रभावशाली बनाकर समकालीन कविता की भाषा तक को मानवीय सरोकार से संपृक्त किया है । यथार्थ की सौन्दर्यात्मक अभिव्यक्ति की संभावना को कवि अरुण कमल ने 'सूर्यग्रहण' के द्वारा काव्यात्मक बनाया है । अरुण की कविताओं का विषय सामाजिक और राजनीतिक टकराहट से उपजा है जिसे प्रौढ गंभीर भाषा ही उकेर सकती है । "प्रगतिशील, कविता विकसित होकर जहाँ पहुँच गयी है वहाँ उसमें भाषा और शिल्प के अनेक स्तर और

---

1. सचमुच की रात-मिट्टी का चेहरा - राजेश जोशी - पृ.सं. 16 प्रथम संस्करण
2. कि सहसा एक ओर कुछ कौधा सर्पमणि सा-कविता का अर्थात-परमानंद श्रीवास्तव - पृ.सं. 60 प्र. सं. 1999
3. सबूत अरुण कमल पृ.सं. 59 प्र. सं. 1989

बहुविध रूप देखे जा सकते हैं ।"[1] गर्म भाषा का गठन समकालीन कविता में एकदम है । फिर भी वस्तुस्थिति को उभारने में समकालीन कविता की भाषा सक्षम हुई है । वह ा तौर से नहीं भीतरी तौर से मनुष्य के दिल को कुरेदती है । समकालीन भाषा के सूक्ष्म और ी अन्दाज़ की सशक्त उपस्थिति अरुण के 'सूर्यग्रहण' में है । सूर्यग्रहण के वक्त लोग का ी बन्दोबस्त में रहते हैं । विष-संचार की वजह से खाना नहीं खाते । ऐसे बन्दोबस्त के बीच ी कुछ सिरफिरे सौन्दर्य के इस विपुल पुंज को कम से कम एक बार ही सही देखना चाहते हैं । य, पृथ्वी और चन्द्रमा के मेल मिलाप का वे आस्वादन करना चाहते हैं। ऐसे मसीहों से अगली प ी बहुत कुछ पाती है । अरुण की भाषा उस सौन्दर्य पुंज को कितनी सतर्कता से उभारती ह ।

और एक साथ
सूर्य पृथ्वी और चन्द्रमा खड़े हो
आमने - सामने
कुछ सिरफिरे तो होंगे ही जो आँख बेचकर भी
तमाशा देखें
ढेर सारे छोटे दृश्यों को देखने से अच्छा है
बस एक बार देखना सौन्दर्य का विपुल पुंज
जो लूटं सकें सो लूटे
ऐसी सुन्दरता कौन काम की
जिसके देखे दीदा फूटे ?[2]

प्रकृति सौन्दर्य को कविता से हटा नहीं दिया है । खुरदरे यथार्थ की अभिव्यक्ति समकालीन कविता की खासियत है । मगर समकालीन कविता का यथार्थ वे समग्र परिस्थितियाँ हैं जिनका सामना करने केलिये मनुष्य बाध्य है । उस यथार्थ के भीतर भी कवियों ने सौन्दर्यात्मक नया

---

1. कविता का वर्तमान - खगेन्द्र ठाकूर - पृ.सं. 221 प्र. सं. 1988
2. सूर्यग्रहण - अपनी केवन धार - अरुण कमल - पृ.सं. 21-23 तृ. सं. 1999

दृष्टिकोण हासिल किया है । समकालीन कविता की सौन्दर्य दृष्टि एक भिन्न स्तर का है । आँधी की भयानकता का संश्लिष्ट रूप कवि ने प्रस्तुत किया । वह कई बिम्बों से दृश्य को मुर्त करता है । पूर्ववर्ती कवियों में ऐसा सौन्दर्य बोध कम है । प्रकृति का वह ताल-मेल और प्रकृति का दुर्देष सौन्दर्य अरुण की भाषा में मूर्त हो उठे हैं। उनकी भाषा समकालीन यथार्थ को बेपर्द करती है ।

पछाड़ खा रहे हैं अन्धड़ में पेड़
ललाट से ललाट टकराते
मथ रहे हैं बादलों से भरा आकाश
गरजता है गगन
और बिजलियों को देह में सोखने को
उद्यत
गरजते हें धरती की ओर से
ये वृक्ष
ठहरेगा कौन इस राह पर आज
देखेगा कौन इन संघर्षरत वृक्षों का दुर्द्धूष सौन्दर्य[1]

अपने हिस्से में लोग आकाश और चन्द्रमा को पूरा देख लेते हैं । किन्तु रोटी और समय की दृष्टि से मनुष्य अपने हिस्से का सिर्फ तकाजा कर सकता है । वह सबका नहीं है । समय काफी बदल गया है । उससे भी हिस्सेदारी का तकाजा बेकार है । तंदूर में हर वक्त रोटी बनती रहती है । मगर वह रोटी सबकी भूख नहीं मिटाती । बनानेवाले को खुद की भूख मिटाने का अधिकार नहीं । वह चारों ओर से चकमा गया है ।

– बाज़ार में जो दिख रही है
तंदूर में बनती हुई रोटी

1. सौन्दर्य - अपनी केवल धार - अरुणकमल - पृ.सं. 16, तृ. सं. 1999

सबके हिस्से की बनती हुई रोटी नहीं है ।

जो सबकी घड़ी में बज रहा है

वह सबके हिस्से का समय नहीं है [1]

इस समय

सरल गद्यात्मक भाषा में समय और जीवन की मार्मिक परिभाषा उन्होंने दी है ।

राजेश जोशी की भाषा में अनुभव अनुभूत सत्य है । उनकी भाषा कविता में संगीत और लय को मिलाते वक्त भी अर्थ संपृक्ति को क्षति नहीं पहुँचाती । संवेदनीयता और बारीक व्यंजना उनकी कविताओं को संवेदनीय बनाती हैं । वे सपाट कथनों और सामान्य सूक्ष्मताओं को प्रश्नाकुलता में बदलते हैं । यह प्रश्नाकुलता जीवन के मार्मिक पक्षों और अमूल्य संवेदनाओं को उद्‌घाटित करती है । इसलिए लगभग व्यर्थ महसूस होनेवाली सहायक क्रिया पर उन्होने संगीत - लय युक्त कविता लिखी । उन पंक्तियों में सहायक क्रिया की अपरिहार्यता खूब महसूस हुई है । आदमी की मानिन्द सहायक क्रिया के पंक्ति के अन्त में आकर बैठने का चित्रण उसकी अनिवार्यता को खूब व्यंजित करता है । इस छोटी सी इकाई की तुलना उन्होंने कमज़ोर निर्बल जन से की है । सामाजिक विन्यास अति-साधारण को असाधारण के पूरे तनाव से युक्त समान्तरता में उभारते हैं । अभिजात वर्ग के बीच आदमी प्रायः निचले तबके का साबित होता है । मगर उस अस्सहायता में निहित ताकत का अन्दाज़ सहायक क्रिया द्वारा व्यक्त होता है । सहायक क्रिया में भी उस अस्सहाय की सी ताकत है । चाहे तो वह पूरे वाक्य को गड़बड़ा सकती है नहीं तो चुप्पी साध सकती है । उनका कालबोध गहरा और आत्मीय है । काल को वे इसके द्वारा अलग चिन्हित करते हैं ।

— काल को चिन्हित करती सहायक क्रिया अक्सर

शब्दों की पांत में इस तरह अन्त में आकर बैठती है

---

1. अपने हिस्से में लोग आकाश देखते हैं -अतिरिक्त नही - विनोदकुमार शुक्त - पृ.सं. 17 प्र. सं. 2000

जैसे वह एक गरीब पाहुन हो
जो सिकुड़कर बैठा हो पंगत के आखिरी कोने पर
यह जितनी चुप चुप सी लगती है उनती ही जिद्दी भी
वह चाहे तो गड़बड़ सकती है पूरे वक्त को अकेले !![1]

घर, परिवार और बाज़ार में प्रयुक्त रोज़मर्रा के शब्द उनकी कविताओं में गहन अर्थतलों को व्यंजित करते हैं । 'हमारी भाषा' समकालीन कविता की भाषा चातुरी के एक अलग मिसाल है । मनुष्य को एक दूसरे से मिलाती कड़ी भाषा हमारी सुविधा है । भाषा मनुष्य के अनुभव जगत की अन्तरधारा को कितनी मार्मिकता से अनुभवगत करा सकती है इसका मसलन "हमारी भाषा' देती है ।

उन्हें हमारी भाषा से कोई मतलब नहीं था
भाषा हमारी सुविधा थी
हम हर चीज़ को भाषा में बदल ड़ालने को उतावले थे ।[2]

गद्यात्मक भाषा समकालीन कविता के भावों को क्षति पहुँचाये बिना उसे खूब तीव्र करती है । समकालीन कविता का भाषायी उद्यम कविता के भीतर घटित विन्यास क्रम है । उसका स्वरूप आरोपित नहीं स्वयं सृजित है । अपने समय में जीवित रहते हुई भी समयातीत रहस्यों को गहरी ऐन्द्रिकता और भाषा के नये संगीत में आलोकधन्वा आत्मसात करते हैं । छोटी स्मृति सघन ऐद्रिक कविताओं में भी लंबी कविताओं का सा वाचिक स्वरूप देखा जा सकता है । 'सफेद रात' कविता कवि के बुनियादी कवि स्वभाव और काव्य स्वभाव को उद्‌घाटित करती है । रंग ध्वनि और विन्यास अपनी सारी भंगीमाओं के साथ इसमें मौजूद हैं जो उसके भीतर की मानवीय उपस्थिति को सुदृढ करता है । कभी कभार महज एक शब्द पूरे संदर्भ को ही मुर्त नहीं करता बल्कि यथार्थ के नैकटय और उसकी समकक्षता तक की मुनादी

---

1. सहायक क्रिया - दो पंक्तियों के बीच राजेश जोशी - पृ.सं. 15-16 प्र. सं. 2000
2. हमारी भाषा - दो पंक्तियों के बीच - राजेश जोशी - पृ.सं. 17 प्र. सं. 2000

करता है यद्यपि आलोक धन्वा क्रान्तिकारी कवि है फिर भी उसका विद्रोह बड़बोलेपन नहीं । उसका हाशिया व्यापक है । समकालीनता से वे समय की अनन्तता तक चलते हैं मगर हर कदम में वे समाज से जुड़े हुए हैं । पीढ़ियों के बदलाव से संवेदना का स्तर बदलता है जिसे एक सजग शिल्पी ही भाषा के नये मुहावरे में बाँध सकता है ।

कविता का वृत्तान्त और वृत्तान्त की कविता

समय और समाज की सच्चाइयाँ अपनी भयावहता में ही समकालीन कविता में प्रकट होती है । इस भयावह की अभिव्यक्ति केलिए एकाध कवि वृत्तान्त का लहजा अपनाता है । वृत्तान्त का लहजा अपने आप में एक विकल्प है । औपचारिकता और कृत्रिम सौन्दर्यात्मक परिष्कार के विरुद्ध यह भाषा का एक नया मुहावरा है । हर तरह का वर्तमान संकट एक संघर्ष श्रृँखला की तरह इस लहजे में उभरता है । "वृत्तान्त एकालाप नहीं है, वह दूसरों तक पहुँचकर ही वृत्तान्त बनता है ।[1]

कभी कभी भाषा कविता में सांस्कृतिक गतिविधि का रूप धारण करती है । वह किस अर्थ में और कहाँ तक साँस्कृतिक गतिविधि को चिन्हित करेगी - उसका मसलन आलोक धन्वा की "सात सौ साल पुराना छंद कविता देगी । एक साँस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को मनुष्य के आदिम लगाव से संपुष्ट करके वे प्रस्तुत करते हैं । बेशक उनमें एक अविराम फक्कड़पन है, सूफियों की सी गाफिल लापरवाही और दीवानगी भी, जुनून भी, पर साथ ही एक सतर्क सधी निगाह भी जो दृश्यों पर महज टिकी नहीं रहती उनमें अपना पक्ष, अपना तर्क, अपना विज़न भी चुनती हैं ।

पहला प्यार जब राख हो गया
खुद को बचाया उस साँवली नृत्य शिक्षिका ने

---

1. कविता का वृत्तान्त कविता का अर्थात परमानन्द श्रीवास्तव पृ.सं. 119 प्र. सं. 1999

दंगे के खिलाफ दिखी वह प्रभातफेरी में फिर
शरीर और समुदाय एक होता हुआ
लंबी छुट्टी बीच में ही खत्म कर
लौटी वह फिर काम पर [1]
आई अपनी छात्राओं के बीच
अभ्यास करने सात सौ साल पुराने छंद का ।

नृत्य शिक्षिका पुनः सात सौ साल पुराने छंद का अभ्यास करने लौट आयी । इसमें शरीर और समुदाय का अर्थ छंद में आकर खुलता है । शरीर और समुदाय भिन्न सत्तायें है फिर भी वे अलग नहीं एक अप्रत्याशित घटना की वजह है । इस छंद से जुड़कर कई घटनायें घटित होती हैं । किन्तु अन्त में भी शिक्षिका उस 'छंद में लौट आने केलिये मजबूर है । यह मज़बूरी उसकी जीविका है । इससे जुड़ी घटनाओं की स्मृति दिलाते वक्त ये शब्द कारण की स्पेस लेते हैं ।

भाषा की सार्थक गतिविधियों के बीच यथार्थ दृश्य की स्थिति हासिल करता है । आलोक धन्वा की कविता का अर्थ प्रथम वाचन में खुलता ही नहीं उसकी गूँजें और अनुगूँजें बड़ी देर तक बनी रहती है । सपाटता के बदले समकालीन कविता में कोमल संवेदनीयता आ गयी है जिससे जीवन संदर्भ का कविता से क्षरण नहीं होता बल्कि वह काफी प्रखर बनता है । 'कपड़े के जूते' में जूते जीवन से बहुत निकट से जुड़े हैं । क्योंकि वह मनुष्य के दैहिक श्रम की उपज है । 'जूते' समय के पार बहुत दूर तक अपना अर्थ संप्रेषित करता है क्योंकि उसमें ज़मीन पर चलते आदमी की पगध्वनियों, श्रम और थकान को पहचानने की आत्मिक चाह मौजूद है । उस आत्मिक चाह से ही उनकी सामाजिक पक्षधरता की भागीदारी शुरू होती है । नश्वरता और मृत्यु के परे यह जूता अबाध गति से चलती ज़िन्दगी से मनुष्य को जोड़ता है । कविता को

---

1. सात सौ साल पुराना छंद-दुनिया रोज बनती है आलोकधन्वा पृ.सं. 80 प्र. सं. 1998

वृत्तान्त से जोड़कर कविता में वृत्तान्त और वृत्तान्त द्वारा कविता रचने की नयी शैली आलोक धन्वा ने विकसित की –

कपड़े के जूते इतने पुराने हो चुके हैं
कोई कह सकता है कि
जहाँ वे जूते है वहाँ कोई समय नहीं है
कपड़े के वे जूते समय से बाहर झूल रहे हैं
मृत्यु भी अब उन जूतों को पहनना नहीं चाहेगी
लेकिन कवि उन्हें पहनते हैं
और शताब्दियां पार करते हैं ।[1]

ऐसे वृत्तान्त संबन्धी कई कवितायें आलोकधन्वा ने लिखी हैं । 'भागी हुई लड़कियाँ" और 'ब्रूनो की बेटियाँ' जैसी कविताओं में कुलीनता की हिंसा की बात प्रस्तुत की है । उसमें कई वृत्तान्त और प्रसंग जोड़ दिये हैं । सामंती मनोवृत्ति को तोड़ने में 'भागी हुई लड़कियाँ' सफल निकली हैं । जब फिल्मों में उसके भागने का दृश्य दिखाता था तो महज मन बहलाव था । अब जब वह जीवन का ठोस यथार्थ बन गया, मनुष्य की सपने और संभावनायें बदली हैं, बढी हैं,जीवन संबन्धी दृष्टिकोण बदला है । परिवर्तित माहौल लड़कियों को अपनी दृष्टि से कोई साहसिक काम करने का मौका दिलाता है । जीवन का फैसला वह खुद लेने लगी है । यह भागने की बात आज व्यक्तिगत की निस्सहायता से बढकर एक समुदाय के क्षरण को उजागर करती है । साहस के कुछ सामूहिक बिंबों को ही कवि यहां प्रस्तुत करते हैं । व्यापक अर्थ में उनकी प्रेम कवितायें मात्र रोमाँटिक भावो का प्रस्तुतीकरण नहीं इन्सानियत का तकाजा है । यह कविता भी आदिम राग से संबद्ध है जिसमें कवि नें स्त्री की अपूर्व हैसियत को पहचाना है । उन्होंने स्त्री-विमर्श नहीं किया बल्कि पुरुषसत्तात्मक समाज में स्त्री की नियति को पहचाना ।

---

1. कपडे के जूते-दुनिया रोज़ बनती है - आलोकधन्बा - पृ.सं. 20 प्र. सं. 1998

उन्होंने पुरुष दृष्टि से नहीं स्त्री पक्ष से जुड़कर कविताएँ लिखी हैं । स्त्री के विरुद्ध उपजी क्रूर दमनकारी नीतियों और शक्तियों के प्रतिरोध में उन्होंने अपने अपूर्व भाषाई विन्यास से हस्तक्षेप किया –

वे पृथ्वी की आबादी में थीं
जैसे खुद पृथ्वी
जैसे खुद हत्यारे
लेकिन आज की सुबह?
जबकि कल रात उन्हें जिंदा जला दिया गया ।
क्या, सिर्फ जीवित आदमियों पर ही टिकी है
जीवित आदमियों की दुनिया?[1]

अलोकधन्वा की कविताओं में निरन्तर स्पन्दित अबाध गतिशील यथार्थ का विराट फलक निहित है । ब्रूनो की बेटियाँ' में मनुष्यधर्मी चेतना से संबद्ध कई थल हैं । मज़दूरिन औरतों के जीवन के कई दृश्य कविता में एक दूसरे से पिरो दिये हैं । ईमानदार जीवन परिदृश्य इसमें यत्रतत्र उतरता है । कहीं से भारत की मिट्टी में आकर बसी गयी मज़दूरिन औरतों के श्रम और संघर्ष को अनदेखा करते हुए उनके अस्तित्व के सारे चिन्हों को एकदम मिटा दिया । निचले तबके के इन मज़दूरों की संघर्ष कथा कहीं भी दर्ज नहीं की गयी है । उनके लिये बनायी गई योजनाओं में वे एकदम धूमिल हैं । मगर निर्माता मौज-मस्ती करके जेब भरता है । यह कविता महज औरतों के स्वत्व से संबन्धित नहीं समग्र सर्वहारा के स्वत्वान्वेषण की कथा है । पूर्ववर्ती भाषाई विन्यास को तोड़कर गद्यात्मक सरल भाषा में यथार्थ के कई स्थलों और संदर्भों को उन्होंने उकेरा है ।

कविता में वृत्तान्त को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य देनेवालों में विष्णु खरे भी शीर्षस्थ हैं । उनमें एक निर्मम आत्मपरीक्षण की-सी आलोचनात्मक जिज्ञासा है । विष्णु खरे की कवितायें

---

1 ब्रूनो की बेटियाँ-दुनिया रोज़ बनती है अलोक धन्वा पृ.सं. 50 प्र. सं. 1998

नये मूल्यांकन विवक से जीवन यथार्थ को व्यंजना करते है । कथानुमा शैली में समय की विसंगतियों को संवेदनात्मक पहचान उन्होंने की है । मामूली बातों को विषय बनाकर ब्योरों के ज़रिये भीतरी तनाव को वे रेखाँकित करते हैं । सहज सरल वृत्तान्तपरक कहानीनुमा शैली के ज़रिये कवि ने भाषा की अपनी एक दुनिया संजोई है । 'टेबिल' कविता में पीढियों की स्मृतियाँ करुणा और व्यंग्य से संपृक्त होकर प्रत्यक्षीकृत होती है । स्मृतियों के बिम्ब समय को आगे-पीछे करते हुऐ, समय के साथ चलते हुए यथार्थ को रहस्यमय और स्वप्नोन्मुख बनाते है । टेबिल में ही नहीं उनकी बहुत सारी कविताओं में मात्र एक उल्लेख जीवित अनुभव में बदलता है । यह कहानीनुमा अन्दाज़ विष्णु खरे की दुनीया की खासियत है । कविता की लय को सुरक्षित रखते हुए भावों की अभिव्यक्ति में क्षति पहुँचाये बिना उनकी कवितायें आगे बढती हैं । हर कविता एक कथा से लिखी गयी है । एक वृत्तान्त की तरह जिससे कई संदर्भ जुड़ गये हैं परस्पर विरोधी मगर परस्पर गुंथी हुई । 'टेबिल' कविता एक सामान्यीकृत यथार्थ ही नहीं पीढी दर पीढी की संपत्ति है । चार पीढियों की दर्दनाक, परस्पर विरोधी भावों की मिलीजुली संवेदना उस टेबिल से जुड़ी है । चार पीढियों ने अपनी अपनी समयानुसृत चीज़े उस पर रखी थी । मुरलीधर नाज़िर ने बहुत मेहनत करके यह फोल्डिंग टेबिल बनाई थी जिस पर ही उनके जीवन की सारी कारवाई चलती थी । आगे उसके पुत्र सुन्दरलाल और फिर तीसरी और चौथी पीढी ने उसे अपना लिया था । आखिरी पीढी तक आते आते उस पर गौरज़रूरी चीज़े लगवानी शुरु की । क्योंकि ज़माने और दृष्टिकोण के बदलने से यह टेबिल उसे अखरने लगा । यद्यपि टेबिल एक समान्यीकृत वस्तु है फिर भी मानवीय संवेदना से संपृक्त करके उसे कवि ने विशिष्ट बना दिया है । टेबिल एक साथ कई ज़िन्दगियों को पकाकर एक गहरी करुण कथा बनाती है—

जिस तरह चौबीस बरस पहले
यह अब गंजा और तुँदियल होता हुआ मँझोल अफसर
उझककर झाँकता था उस आईने में

जिसम सुन्दरलाल बाएँ गाल को जीभ से उभारकर
दाढी बनाते हुए भैंगे होकर देखते थे
(नाक के तीखेपन और जबडे की लम्बाई में मरहूम मुरलीधर का असर
शायद पहचानते हुए)
और टेबिल के हिलने की वजह से
वह थोड़ा थोड़ा हिलता था ।[1]

भाषा की लोकधर्मी चेतना

लोकधर्मी चेतना ही काव्यभाषा को सबसे अधिक चेतना संपन्न बनाती है । काव्यभाषा महज रचनाकार का माध्यम नहीं है बल्कि वह कवि के संस्कार, जीवन और उसकी रचनादृष्टि का समवेत है । काव्यभाषा असल में कवि दृष्टि का आईना ही है । सामान्य जन जीवन से जुड़ी लोकधर्मी काव्यभाषा ही हिन्दी की मूल प्रवृत्ति के अनुरूप ढल रही है । नागार्जुन, मुक्तिबोध, त्रिलोचन जैसे पूर्ववर्ती कवि इस जीवन्त काव्यभाषा को लेकर चलते है । "कई समकालीन रचनाकारों ने इसका अनुसरण किया । इनकी काव्यभाषा का चरित्र लोकधर्मी है क्योंकि उसके समूचे रचाव में श्रम, मानवीय संघर्ष, मनुष्य हृदय के कोमल और कठोर पक्ष तथा प्रकृति की क्रूर और रंगमयी लीला रची बसी है । उसमें अपनी जातीय परम्परा सहज रूप में जीवित हैं"।[2] पूर्ववर्ती कवियों की लोकधर्मी काव्यभाषा का एक संश्लिष्ट और विकसित रूप समकालीन कवियों में पाया जाता है । भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद, धार्मिक उन्माद और मरती हुई संवेदना के इस दौर में घर और गाँव उजड़ते जा रहे हैं। समकालीन कवि उन्हे पुनःबसाना चाहते हैं । परम्परा को पुनः वापस, लाने की लालसा और कोशिश के साथ तीव्रगति से ये कवि आगे बढते हैं ।

लोकगीतों की मर्मस्पशी सहजता और सांकेतिकता लेकर विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की कवितायें भी आई हैं । अपनी सहजता में भी एक क्लासिकी गरिमा से संपृक्त होकर ही ये कवितायें आस्वादनीय हो जाती हैं । अपनी मिट्टी की महक और लोक की गंध से महकते

---

1. टेबिल पिछला बाकी विष्णु खरे पृ.सं. 17 प्र. सं. 1998
2. लोगधर्मी काव्य भाषा और समकालीन कविता - शंभुगुप्त - पृ.सं. 55-ओर -जुलाई -सितंबर 1991

शब्द विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की कविताओं को लोकधर्मी चेतना से संपुष्ट करते हैं । उनकी कविताओं में उस अजय मनुष्य की उपस्थिति सर्वत्र मिलती है जो निजी स्थिति में संतुष्ट है । वह अधूरे सपने और इकतरफे प्रेम से भी एकदम संतुष्ट है । सभी तरह की परेशानियों और तोड़-फोड़ के बावजूद भी मनुष्य में मौजूद साहस के अंश को कवि पहचानता है । 'आखर अनन्त' आकार में छोटी है फिर भी उसकी संवेदनीयता प्रखर है । मनुष्य की जुझारू मनस्थिति सरल भाषा में काफी संप्रेक्षित हुई है –

मुझे सन्तोष है
मैं ने सपने देखे
जो पूरे नहीं हुए
मैं ने प्रेम किये इकतरफे
मुझे सन्तोष है
मैं ने चुराये कुछ अमर बीज
और छींट
दिये कागज़ पर[1]

उनकी कविता में जिजीविषा, संकल्प और मनुष्य के भीतर छिपी मनुष्यता को पहचानने का प्रयास भी है ।

एकान्त श्रीवास्तव ठेठ देशी शब्दों के कवि हैं । लोकधर्मी चेतना का सशक्त रूप उनकी कविताओं में उपलब्ध है । एकान्त श्रीवास्तव की कविता महानगर की भागदौड़, आपाधापी और कोलाहल में उसी गाँव की और उसी मनुष्य की बात करती है जो मुख्य मार्ग से कटा हुआ है, मगर उसकी जीवन शौली आज भी इस लायक है कि वह पूरि दुनिया और समाज की जीवन

---

1 आखर अनन्त - आखर अनन्त - विश्वनाथ प्रसाद तिवारी पृ.सं. 93 प्र. सं. 1991

शैली बन सके।"[1] गृहातुरता के कवि एकान्त श्रीवास्तव की 'कविता की ज़रूरत' कविता उनके काव्य-संसार को पूर्णत; परिभाषित करती है –

मुझे
वसन्त की खुशबू से भरी
पूरी पृथ्वी दो
कविता लिखने केलिए ।[1]

अपने आसपास के जीवन को पैनी निगाह और जादुई पारदर्शिता से निहारकर भाषाई माध्यय से अनुभव को भी वे यथार्थ में तब्दील करते हैं । लोककथा की बातें आम आदमी की ज़िन्दगी के चारों ओर मंड़राती रहती हैं । ठेठ देशी शब्दों में आत्मीय संबन्धों की सशक्त अभिव्यक्ति एकान्त ने की हैं । अपनी मिट्टी की धूल से संपर्क जोड़ने की अदम्य लालसा उनकी कविताओं में है । अपने गाँव, उसकी सभ्यता और वहाँ के जीवन से अपने को पुनः जोड़ने का तीव्र राग इनमें है । 'मोड़' कविता में यह चाह, गृहातुरता भटकन सब है। ज़िन्दगी और नौकरि की परेशानियों और तनाव के बीच से समय उलीचकर मिलते भाई बहन के आत्मीय संबन्ध के साथ उनका जीवन संघर्ष भी जुड़ा है । एक ही फूल की पाँच पंखुड़ियाँ- उन पाँच भाई-बहनो के आत्मीय संबन्ध की यह कविता उद्घोषणा करती हैं । ऐसे मोड़ों का आम आदमी आदी हो गया है –

यह एक मोड़ था
जहाँ पुरानी ज़िन्दगी
एक लोककथा की तरह लगती थी
मगर वहाँ कोई राजा नहीं था
जो घायल हिरण के पीछे

1. समय की आहट -एकान्त श्रीवास्तव की कवितायें कवि का वक्तव्य पृ.सं. 24 वागर्थ नवम्बर 1999
2. कविता की ज़रूरत-अन्न है मेरे शब्द-एकान्त श्रीवास्तव पृ.सं. 20 प्र. सं. 1994

जंगल में भटक रहा हो
वे हम थे जो भटक रहे थे
अपने गंतव्य से बहुत बहुत दूर
किसी चीज़ के पीछे
यह जाने बगैर
कि वह क्या है ।[1]

'माँ' कवित में माँ की स्मृतियों को मन में संजोते कवि इस समकालीन दौर में भी प्रेम के अक्षय रूप को प्रस्तुत करता है । संबन्धों की ऊष्मलता उनकी कविताओं की संवेद्यता को प्रखर बनाती है । स्मृतियों में बिखरे माँ का चित्र इसमें खरा उतरा है । माँ में व्यक्ति मन के पूरे संवेग और आवेग का बेसाख्ता चित्र उतरा है । शब्द इसमें कई अर्थ ध्वनियों को स्पष्ट करने के साथ साथ उसके भीतर रची-बसी एक पूरी दुनिया को भी सामने खड़ा करता है । व्यक्तिनिष्ठता को तोड़कर वस्तुनिष्ठता के एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में कविता मंड़राने लगती है ।

शताब्दियों से
उसके हाथ में सूई और धागा है
और हमारी फटी कमीज़
माँ फटी कमीज़ पर पैबन्द लगाती है
और पैबन्द पर काढती है
भविष्य का फूल [2]

समकालीन कविता में मामूली जड़ वस्तुयें अनुभव का स्तर हासिल करती हैं । जड़ चूड़ियों की खनक सें ज़िन्दगी के संघर्षों की खनक जुड़ी है । यह खनक पूरे सन्नाटे को तोड़कर मुखर होती है । पिता की स्मृतियों से जुड़ी इस खनक को सुनता भी है और पहचानता भी ।

---

1. मोड़-एकान्त श्रीवास्तव पृ.सं. 28 वागर्थ नवम्बर 1999
1. माँ-अन्न हैं मेरे शब्द-एकान्त श्रीवास्तव - पृ.सं. 49 प्र. सं. 1994

किन्तु उससे रोका नहीं जा सकता । यह आर्थिक विपन्नता से त्रस्त सिर्फ एक परिवार की बात नहीं बल्कि उस साजिश के शिकार बने हुए करोड़ो सर्वहारों की यह दर्दनाक कहानी है । ठेठ देशी भाषा में उस निजी खनक को व्यापकत्व दिया गया है –

चूडियाँ
माँ के हाथ की
वजती हैं
सुवह शाम
इनमें है
परदेश गये पिता की
स्मृतियों की खनक
जो बनाये रखती हैं
घर को घर
यह कैसी कार्यवाही है
सन्नाटे के विरुद्ध
जो सुनी जा सकती
कार्यवाही है
सन्नाटे के विरुद्ध
जो सुनी जा सकती है
जाना जा सकती है
लेकिन रोकी नहीं जा सकती ।[1]

इससे मिलता ठेठ देशी और आत्मीय स्वर कवयित्री नीलेश लघुवंशी में भी मयस्सर है । निरक्षर माँ नोट को पहचानती है पति के पसीने की गंध से । चुड़ियों की मानिन्द नोट भी आर्थिक विपन्नता से त्रस्त एक पूरी व्यापक दुनिया को अनुभवेद्य बनाता है । उस नोट में माँ

1. चूड़िया -अन्न हैं मेरे शब्द एकान्त श्रीवास्तव - पृ.सं. 47 - 48 प्र. सं. 1994

का संघर्ष हो नहीं पूरे परीवार का संघर्ष जुड़ा है । पत्नी और बच्चों को एक वक्त का जून दिलवाने में रत पति की यातना ही अपनी माँ को अधिक दुखाती है । वह उस नोट को सहलाती हुई पति को साँत्वना देता-सा महसूस करती है -

पिता और नोट के बीच
सफर करते हैं माँ के तंगहाल सपने
नोट को तुड़ाते हुए हर बार
हिचकिचाती है माँ ।[1]

उस हिचकिचाहट में पूरे जर्जरित वर्ग की पीड़ा की खनक है ।

भाषा में मिथकीय संसार का विकास

मिथकीय अवधारणा पूर्ववर्ती कविताओं में सक्रिय है । भारतभूषण अग्रवाल, धर्मवीर भारती, नरेशमेहत्ता आदि इस मिथकीय अवधारण को पुष्ट करते रहे । नयी कविता में इसकी बहुलता पाई जाती है । पूर्ववर्ती कविताओं की सी मिथकीय संपृक्ति समकालीन कविता में भी है । पुराण कथा के छिद्रों को खोजनेवाली कल्पना पूर्ववर्ती कविता में पूर्णतया समाप्त नहीं हुई है । आज के यातनापूर्ण संदर्भ में भी विज्ञान, इतिहास संस्कृति, यथार्थ और कल्पना से जुड़ी अभिव्यक्ति पाई जाती है । विष्णुखरे ने मिथकीय अवधारणा को समकालीन दौर में एक नया परिप्रेक्ष्य और सूझबूझ दी है । "द्रौपदी के विषय में कृष्ण" कविता के ज़रिये कृष्णा और द्रौपदी संबन्धी पुरानी परम्परा को एक नयी अर्थवत्ता दी है । कवि इसमें संबन्धों के भिन्न-भिन्न स्तर और उसकी अर्थछवियों को खोलता है । उस मिथकीय संदर्भ को बड़ी संयत और प्रौढ भाषा में उन्होंने उकेरा है । उनकी भाषा सहज और सरल है किन्तु जीवन यथार्थ उसके भीतर अंशतः नहीं बल्कि पूर्णतः उपस्थित है ।

---

1. पीता की पीठ घर निकासी नीलेश रघुवंशी - पृ.सं. 38 प्र. सं. 1997

द्रौपदी और कृष्णा के संबन्ध को लेकर एक भिन्न धारणा कवि के शब्दों में गढ़ी बन गयी है । उसे व्यक्त करने का उनका तरीका पाठकों को अचंभे में ड़ालता है । उनके को एक रागात्मक संबन्ध का स्तर उन्होंने प्रदान किया है । उस संबन्ध चित्रण में मनु की कई कोमल, तरल फिर भी प्रौढ़ अनुभूतियाँ संवेदित होती हैं । साथ ही मनुष्य को छोड़ने वाली अभिशप्तताओं की दर्दनाक कहानी भी जुड़ी है । इन अभिशप्तताओं से वक्त वह आम आदमी का यथार्थ बन जाता है ।

कितना समय बीत गया जब तुमने मुझे अंतिम बार पुकार था
वह बहुत बड़ी शूरवीरता नहीं थी दोनों या तीनो बार
लज्जित भीरुता और उद्दंड़ कायरता के बीच से
केवल एक सामान्य साहस में तुम्हारे समीप होने की छोटी सी बात

'लापता' महाभारत के स्त्री पर्व के अंतर्गत आये दो श्लोक पर आधारित कवि महाभारत के बाद उस युद्ध में कितने मारे गये, इतने बड़े नाश के बाद भी युद्ध शुद्ध वै उत्सुकता का प्रतीक है । ऐसे दो प्रश्नों के उत्तर के रूप में यह कविता लिखी गयी है । धृतराष्ट्र युधिष्ठिर से पूछते हैं । युधिष्ठिर युद्ध में मारे गये और लापता लोगों की आँकड़े रखते हैं । उसकी गिनती के सिवा और कुछ वह इसके बारे में बता नही सकता । अ तनावपूर्ण वह स्थिति कवि की सरल भाषा में सार्थक बन गयी है । मिथकीय परि संदर्भगत गहरा आकलन इसमें हुआ है । यह विष्णुखरे की भाषा की गरिमा है कि ए और लय के भीतर ही विरोधी भाव एकीकृत हुए हैं । मिथकीय संदर्भ की इ अभिव्यक्ति समकालीन कविता में विरले ही है ।

---

1. द्रौपदी के विषय में कृष्ण - सबकी आवाज़ के पर्दे में विष्णु खरे -पृ.सं. 20 प्र. सं. 1994

लेकिन इतिहास में दर्ज होने केलिये
आपका जीवित या मृत पाया जाना अनिवार्य सा है
जो लापता है उनका कोइ उल्लेख नहीं होता ।[1]

काव्य में कथा तत्व की संरचना की बात नयी नहीं है । पूर्ववर्ती कई कविताओं में वह खासियत बखूबी मिलती है । कविता में कथा संरचना से यही मतलब है कि ये कवितायें अपनी कथा स्वयं सृजित करती हैं । यह संरचना कविता को न कहानी सदृश बनाती न भावों को सरलीकृत करती है। वह मूल संवेदना और मनुष्य की स्मृतियों को परस्पर गूँथती है । कविता में कथा का उल्लेख काव्य को कहानीनुमा चीज़ बनाना नहीं है । "कथा अर्थात् एक तरह का काव्यत्मक बखान जिसके द्वारा कवि अपनी ओर से बिना ज्यादा कुछ कहे - सुने अपनी समस्त काव्यात्मक ऊर्जा के साथ अन्तरंग ढंग से पाठक तक पहूँचे और उसके मन मस्तिष्क में कोई जगह बना ले।"[2] मिथकीय संदर्भ की बहुलता समकालीन कविता की खासियत नहीं है । ऐसे संदर्भों पर लिखी गयी कवितायें विरले ही है । किन्तु एकदम नवीन और प्रौढ़ दृष्टि से समकालीन कवियों ने उसे प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । भगवत रावत मानवीय रिश्तों की संपृक्ति को कविता का अनिवार्य हिस्सा मानते हैं । उनकी कविता आम आदमी के पक्ष में है । फिर भी उन्होंने कुछ ऐसी कवितायें भी लिखी है जिसमें मिथकीय संदर्भ ही कविता का मुख्य स्वर है । 'कृष्णा कथा' दुहराई हुई बात है फिर भी एक भिन्न दृष्टिकोण से कवि ने व्रजवासियों की दुख-कथा प्रस्तुत की है । कहीं भी कवि ने कृष्णा गोपिका या व्रज शब्द का प्रयोग नहीं किया है । उस मिथकीय संदर्भ से जुड़ी हुई बात भी समग्र मानव की मुक्ति से संबद्ध है । 'बिथा कथा' काव्य संग्रह की यह प्रथम कविता असल में एक बिथा कथा ही है । वह साँवला लड़का जिसने सबका मन हर लिया था जिसपर ज़मीन की फटी बिवाइयों को भरने की आशा टिकी थी । गाँव से बाहर गया तो कभी वापस नहीं आया । व्रजवासियों का दुख एक ज्ञानी पुरुष की दया

---

1. लापता-सबकी आवाज़ के पर्दे में - विष्णुखरे -पृ.सं. 60 प्र. सं. 1994
2. कविकथन - बिधा कथा - भगवत रावत -पृ.सं. 9 प्र. सं. 1997

से हटनेवाला नहीं है । वह सर्वहारा वर्ग की मुक्ति से जुड़ा है । सरल भाषा के जादुई स्पर्श से कवि ने इस संदर्भ को जीवंत बनाकर समकालीन कवियों में अग्रिम स्थान हासिल किया है ।

हम उस वक्त भी अपनी अपनी नहीं
सारे गाँव की मुक्ति चाहते थे आप
सच-सच बताइए आप वही तो
नहीं हैं जो पहले भी आए थे
हमारे पास ।[1]

कथा के आकलन से समकालीन काव्य-भाषा में कई प्रकार की गुणात्मक समृद्धियाँ लक्षित होती हैं ।

---

1. कृष्ण कथा बिंबकथा - भगवत रावत -पृ.सं. 17 प्र. सं. 1997

उपसंहार

आधुनिक हिन्दी कविता विकास के विभिन्न मोड़ों से गुज़रकर समकालीन दौर तक पहुँच गयी है । वह हर युग में समकालीन यथार्थ से जुड़ती रही । नवजागरण काल में वह बहिरंग सामाजिक जीवन से संबद्ध थी । धीरे-धीरे कविता स्थूल जगत की अपेक्षा सूक्ष्म जगत के यथार्थ को अभिव्यक्ति देने लगी । छायावादियों की इस अन्तर्मुखता को तोड़कर निराला कविता को जीवन के निकट लाये । उन्होंने आधुनिक हिन्दी कविता को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य से जोड़ा । उनकी यथार्थवादी कवितायें आगामी कविता केलिए भूमि तैयार करती रही । इस दृष्टि से आधुनिक हिन्दी कविता की शुरुआत निराला से होती है ।

निराला की यथार्थोन्मुखता प्रगतिवादी युग में व्यापक परिप्रेक्ष्य में शब्दबद्ध होने लगी। प्रगतिवादी कविता ठोस यथार्थवादी धरातल की खोज करती रही । वह पूंजिवादी वर्चस्व के विरुद्ध आवाज़ बुलन्द करती रही । इसलिए उनकी कविताओं में मानवमुक्ति का स्वर गूँजता रहा ।

प्रगतिवादी कवि निपट यथार्थवादी थे । इसके विपरीत नयी कविता का यथार्थ जीवन संघर्ष के द्वन्द से उभरा है । उसपर मध्यवर्गीय मानसिकता का दबाव पड़ा है । इस कारण से यथार्थ की आंशिक अभिव्यक्ति ही होती रही । किन्तु एकाध नये कवि इस जड़ता को तोड़ने में समर्थ निकले । मुक्तिबोध ने कविता को यथार्थ से जोड़कर आगामी कविता केलिए पथ प्रदर्शित किया ।

समकालीन कविता समय सापेक्ष और संवेदना सापेक्ष अभिव्यक्ति है । इस कारण से काल और उसकी निरन्तरता समकालीन कविता में बेहद मुखरित है । इसलिए जीवन का

यथार्थ उसमें सहज ही उभर आता है । "समकालीनता" कालसूचक शब्द न होकर रचना और रचनाकार को सजीव एवं कालजयी बनानेवाली दृष्टि है । वह जीवन के व्यापक परिप्रेक्ष्य को ही अंकित करती है । इसलिए समकालीन कविता अपनी पूर्ववर्ती कविता की अपेक्षा खास पहचान देती है । उसमें असुरक्षित भविष्य से संबद्ध वर्तमान की प्रासंगिकता है ।

समकालीन कवि विद्रोह के नाम पर कविता को उत्तेजनात्मक वक्तव्यों से नहीं भरते हैं। वे वर्तमान जीवन की कटु किन्तु तिक्त सच्चाइयों का साहस के साथ सामना करते हैं । धूमिल, कुमार विकल जैसे समकालीन कवियों में यह साहस बखूबी से मिलता है । उनकी रचनाओं में जो मानव बिंब उभरता है वह संघर्षों के बीच चरमराते आम आदमी का है । धूमिल को आक्रोश का कवि कहा जाता है, किन्तु उनकी संवेदना वयस्क है । उसकी कविता विभिन्न कोणों से पिसते आम भारतवासी की पीड़ा, छटपटाहट और कशमकश का शब्दबद्ध रूप है । इस प्रकार समकालीन कविता देशी सन्दर्भों को मज़बूत बनानेवाली कविता है । यथार्थ की स्वीकृति के कारण ही समकालीन कविता की खास पहचान है । वादों के दबाव से मुक्त होकर समकालीन कविता समय और विचार साथ-साथ लेकर चलती है । वह कविता को सौन्दर्य के वायवी कटघरे से मुक्त करके यथार्थ की ठोस ज़मीन पर खड़ा करती है ।

समकालीन कविता की जनवादी दृष्टि जीवन को उसकी अन्तरंगताओं के साथ पकड़ती है । वह जीवन यथार्थ को उसके सारे अन्तर्द्वन्द्वों और अन्तर्विरोधों के साथ अभिव्यक्त करती है । समाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक मूल्य विघटनों और अन्तर्विरोधों को कविता आत्मसात करती है । उसे प्रखरता के साथ संप्रेषित भी करती है । तब संवेदन तंत्र भी स्वतः प्रखर होने लगता है ।

कविता की जनवादी दृष्टि मानवता से संबद्ध है । अतीत से बढ़कर उसमें वर्तमान यथार्थ की प्रासंगिकता है । उसमें युग को बदलने की शक्ति है । जनवादी दृष्टि समकालीन कविता में सशक्त सन्निहिति के रूप में मौजूद है । सन्त साहित्य मुक्ति-कामना का साहित्य है । इसलिए कहा जा सकता है कि जनवादी दृष्टि का प्रथम प्रस्फुटन सन्त साहित्य में हुआ है । नवजागरण काल में भारतेन्दु ने जनवादी दृष्टि से प्रेरित होकर कविताएँ नहीं लिखी थी, किन्तु सामाजिक सोदेश्यता से जुड़ी उनकी कविताओं की तह में जनसमुदाय की मुक्ति की बात निहित थी । जनवादी दृष्टि की प्रखर अभिव्यक्ति छायावादी कवि निराला की कविताओं में ही मिलती है । छायावादी कवि होते हुए भी कालातिक्रमण की अपूर्व क्षमता उनमें थी । बाद में नागार्जुन, त्रिलोचन, मुक्तिबोध, शमशेर आदि ने निराला के संवेदना-संसार का विस्तार किया । समकालीन कवियों में धूमिल, अरुण कमल, आलोक धन्वा, कुमार विकल, वेणुगोपाल, ज्ञानेन्द्रपति आदि ने जनवादी स्वर को हमलावर अंदाज़ में मुखरित किया ।

कविता जब अपनी जनोन्मुखता से भरी रहती है तो वह पूर्ण हो जाती है । समकालीन कविता की यही दृष्टि रही है । जनवादिता के विभिन्न रूप समकालीन कविता में मिलते हैं । यह जनोन्मुखता ही समकालीन कविता का स्वत्व है । वही उसका कर्म और धर्म है ।

विकास की अवस्था में भी भारतीय समाज का भीतरी हिस्सा अपरिवर्तित है । वहाँ कई प्रकार के अविकास होते रहते हैं । ये अन्तर्विरोधी पक्ष काल के प्रवाह में अधिक प्रबल होते हैं । गतिशीलता के स्थान पर जड़ता जड़ जमा लेती है । यह अन्तर्विरोध मनुष्य को अतिशय भयावहता से गुज़रने का आदी बनाता है । धीरे-धीरे आदमी इसके प्रति भिन्न-भिन्न

ढंग से प्रतिक्रियान्वित होने लगता है । यथार्थ को इस भयावहता के प्रति एकाध लोग निस्संगता बरतता है । कई प्रतिरोध का स्वर उठाते हैं। कुछ लोग आन्तरिक तौर से टूट जाते हैं। समकालीन कविता की जनवादी दृष्टि इन अन्तर्विरोधी पक्षों के प्रति प्रखर ढंग से प्रतिक्रियान्वित होती है । वह प्रतिक्रिया आक्रोश नहीं सहज परिणति है । उसमें आदमी को उस स्वयंसिद्ध अवस्था से मुक्त करने की कामना भी निहित है । वह मुक्ति कामना स्थिति के प्रति उसका विद्रोह है । यह विद्रोह की भावना समकालीन कविता की सक्रिय सन्निहिति है ।

मनुष्य ही दरअसल समकालीन कविता के केन्द्र में है । उसकी विस्थापित सांस्कृतिक स्थिति पर समकालीन कविता ज़ोर देती है । सांस्कृतिक विघटन को व्यापक परिप्रेक्ष्य में ही देखना चाहिए क्यों कि वह मात्र किसी व्यक्ति या समाज की समस्या नहीं है। समकालीन कविता में सांस्कृतिक विघटन की समस्या के विकराल रूप को जीवन्तता के साथ उभारा है । चन्द्रकान्त देवताले की कविता "उसके सपने", "थोड़े से बच्चे और बाकी बच्चे" अरुण कमल की "खुशबू रचते हैं हाथ" विनोदकुमार शुक्ल की "बाज़ार की सड़क" वेणुगोपाल की कविता "वे हाथ होते हैं" मंगलेश डबराल की "पागलों का एक वर्णन" जैसी कवितायें समकालीन जीवन यथार्थ के अन्तर्विरोधी पक्षों की अभिव्यक्ति करनेवाली सशक्त कविताएँ हैं।

नारी मुक्ति का स्वर समकालीन कविता की बड़ी खासियत है । मानव मुक्ति की कामना में निहित स्त्री-मुक्ति का स्वर समकालीन कविता में प्रखरता के साथ अभिव्यक्त हुआ है । स्त्री रचनात्मकता आज भी तर्क विषय है । यह सही भी है कि नारीवाद के नाम पर

अतिशय कोलाहल होता रहता है । परन्तु उससे अलग स्त्री स्वत्व की पहचान एक अनिवार्यता है । समकालीन कवियों के समान स्त्री कविताएँ भी स्तरीय हैं । स्त्री होने के कारण उसे अलग हटाने की ज़रूरत नहीं होते । वे समकालीन दौर के समकालीन कवि ही हैं । इन समकालीन कवयित्रियों में अनामिका, कात्यायनी, सुमन राजे, अर्चना वर्मा आदि ने जिस सूझबूझ और गहराई से स्त्री समस्याओं को सुलझाने की कोशिश की है वह महत्वपूर्ण है । सच्चाइयों को झेलने और उससे जूझने का उनका साहस, अपराजेय भाव आदि उनकी कविताओं में दृष्टव्य है ।

समकालीन कविता की भाषा आम आदमी से जुड़ी देशज भाषा है जिसके भीतर आदमी अपने पूरे परिवेश के साथ उपस्थित है । समकालीन कविता ने शब्द-कोश से नहीं जीवन-कोश से ही कविता केलिए शब्द चुने हैं । इसी कारण से ही बहुआयामी जीवन के विविधायामी पक्षों को प्रखर अभिव्यक्ति देने में समकालीन कविता सक्षम हुई है । समकालीन कविता जीवन की खोज की कविता है ।

समकालीन कविता की भाषा अपनी पूर्ववर्ती कविता की भाषा से प्रौढ़ और सघन है । पूर्ववर्ती कविता में भाषा को शक्ति दिलाने केलिए भाषेतर माध्यमों का इस्तेमाल किया जाता था । शब्दों की अर्थ और शक्ति को बिना पहचाने शब्देतर माध्यमों का इस्तेमाल कविता को कमज़ोर करता रहा । लेकिन समकालीन कवियों ने विशेषकर कुमार विकल ने शब्दों की शक्ति को दृढ़ता के साथ अपनाने का प्रयास किया । कुमार विकल की कविता "एक छोटी सी लड़ाई" समकालीन भाषा के बदलाव की प्रस्थान बिन्दु है जिसे पकड़कर अगली पीढ़ी आगे बढ़ी है । समकालीन काव्यभाषा जीवनानुभव का प्रत्यक्षीकरण ही नही करती बल्कि उसे इन्द्रियग्राही भी बनाती है ।

अन्ततः समकालीन कविता लोक जीवन से गहरी जुड़ती है । जीवन यथार्थ क पर्त-दर-पर्त खोलते-खोलते वह मनुष्य के बहुत नज़दीक आ गयी है । यह मानवीय संस्पर्श समकालीन कविता का कविता यथार्थ है । समकालीन कविता की खोज जीवन की खोज है ।

समकालीन कविता अपने लोक का सृजन करती है । लेकिन वह अपने लोक तक सीमित नही है । वह व्यापक वैशविक यथार्थ का भी चित्रण करती है। उसमें भारतीय यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है । भारतीय जीवन के असंख्य पक्ष उनके इतिहास सम्मत परिप्रेक्ष्य में समकालीन कविता में दर्ज हुए हैं। अतः सहज ही यह कहा जा सकता है कि उसमें वैशविक संदर्भों का भी पूरा सन्निवेश है । भारतीय वैश्वीकरण के संदर्भ में समकालीन कविता का वाचन इस कारण से संभव हो जाता है ।

संदर्भ ग्रन्थ

1	अकविता और कला सन्दर्भ	डॉ श्याम परमार कृष्ण ब्रदर्स, अजमेर प्रथम संस्करण 1968
2	आठवें दशक की हिन्दी कविता	शंभुनाथ प्रथम संस्करण 1980
3	आठवें दशक की कविता	विश्वनाथ प्रसाद तिवारी कीर्ति प्रकाशन गोरखपुर प्रथम संस्करण 1982
4	आधुनिकता के बारे में तीन अध्याय	धनंजय वर्मा विद्याप्रकाशन मन्दिर नई दिल्ली 110 002 प्रथम संस्करण 1984
5	आधुनिकता के प्रतिरूप	धनंजय वर्मा विद्याप्रकाशन मन्दिर नई दिल्ली 110 002 प्रथम संस्करण 1986
6	कविता कालयात्रिक	डॉ. लक्ष्मीनारायण प्रवीण प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1988
7	कविता तीरे	कमलाप्रसाद वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 110 002 प्रथम संस्करण 1995

8	कविता का अर्थात्	परमानन्द श्रीवास्तव आधार प्रकाशन पंचकूला-134 113 प्रथम संस्करण 1999
9	कविता का थल और काल	डॉ. ए. अरविन्दाक्षन किताब घर, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2001
10	कविता का वर्तमान	खगेन्द्र ठाकुर परिमल प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1988
11	कविता और समय	अरुण कमल वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1999
12	कविता की संगत	विजय कुमार आधार प्रकाशन, पंचकूला प्रथम संस्करण 1996
13	कविता के नये प्रतिमान	नामवर सिंह राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 110 002 पुनरावृत्ति 1997
14	कविता के सौ बरस	संपादक -लीलाधर मंडलोई शिल्पायन, दिल्ली प्रथम संस्करण 2001
15	कविता से साक्षात्कार	मलयज संभावना प्रकाशन हापुड 245 101 प्रथम संस्करण 1987

16	कालयात्री है कविता	प्रभाकर क्षोत्तिय राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1993
17	नयी कविता सीमायें और संभावनायें	गिरिजाकुमार माथुर अक्षर प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1966
18	मेरे समय के शब्द	केदारनाथ सिंह राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1993
19	यथाप्रसंग	नंदकिशोर नवल किताब घर, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1992
20	शमशेर	संपादक - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
21	शब्द और कर्म	मैनेजर पाण्डेय वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1997
22	समकालीन हिन्दी कविता	डॉ. ए. अरविन्दाक्षन राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1998
23	समकालीन हिन्दी कविता	विश्वनाथ प्रसाद तिवारी राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 110 002 प्रथम संस्करण 1982
24	समकालीन कविता का व्याकरण	परमानंद श्रीवास्तव शुभदा प्रकाशन, दिल्ली 110 032 प्रथम संस्करण 1980

25	समकालीन कविता की भूमिका	विश्वंभरनाथ उपाध्याय मंजुल उपाध्याय दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लि. द्वितीय संस्करण -1976
26	स्त्रीत्व का मानचित्र	अनामिका सारांश प्रकाशन, दिल्ली 110 091 प्रथम संस्करण 1999
27	समकालीन कविता और कुलीनतावाद	अजय तिवारी राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1994
28	समकालीन हिन्दी साहित्य विविध परिदृश्य	डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1995
29	समकालीन कविता संप्रेक्षण:विचार आत्मकथ्य	वीरेन्द्र सिंह पंचशील प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1987
30	समवेशी आधुनिकता	धनंजय वर्मा विद्याप्रकाशन मन्दिर नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1968
31	साठोत्तरी हिन्दी कविता परिवर्तित दिशायें	विजयकुमार
32	साठोत्तरी हिन्दी कविता में जनवादी चेतना	नरेन्द्रसिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 110 002 प्रथम संस्करण 1990
33	हिन्दी की जनवादी कविता	वसिष्ठ अनूप प्रथम संस्करण 1994

कविता - संकलन

1. अर्चना वर्मा

i कुछ दूर तक
अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., असारी रोड
प्रथम संस्करण -1981

2 लैटा है विजेता
वाणी प्रकाशन, दिल्ली 110 007,
प्रथम संस्करण -1993

2. अनामिका

1 बीजाक्षर
भूमिका प्रकाशन, दरियागंज
प्रथम संस्करण 1981

2 अनुष्टुप
किताब घर
नयी दिल्ली 110 002
प्रथम संस्करण -1998

3. अरुण कमल

1 अपनी केवल धार
वाणी प्रकाशन, दिल्ली 110 002
तृतीय संस्करण -1999

2 सबूत
वाणी प्रकाशन,
दिल्ली 110 002
प्रथम संस्करण 1989

3 नये इलाके में
वाणी प्रकाशन,
प्रथम संस्करण 1996

4. असद जैदी

1 कविता का जीवन
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 1988

5	अज्ञेय	1	तारसप्तक भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन प्रथम संस्करण
		2	हरि घास पर क्षण भर
6	अशोक वाजपेयी	1	तिनका तिनका प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली 30 प्रथम संस्करण 1996
7	आग्नेय	1	सिरहाने मीर के वाणी प्रकाशन, दिल्ली 110 007 प्रथम संस्करण 2001
8.	आलोक धन्वा	1	दुनिया रोज़ बनती है राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 110 002 प्रथम संस्करण 1998
9	उदय प्रकाश	1	अबूतर-कबूतर राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली 110 002 प्रथम संस्करण 1984
		2	रात में हारमोनियम वाणी प्रकाशन, दिल्ली 110 007 प्रथम संस्करण 1998
		3	सुनो कारीगर वाणी प्रकाशन, दिल्ली - 110 007 प्रथम संस्करण 2001
10.	एकान्त श्रीवास्तव	1	अन्न हैं मेरे शब्द आधार प्रकाशन, पंचकूला प्रथम संस्करण 1994
11.	कात्यायनी	1	सात भाईयों के बीच चंपा आधार प्रकाशन, पंचकूला प्रथम संस्करण 1994

2 इस गौरवपूर्ण समय में
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 110 002
प्रथम संस्करण 1999

12. कुमार विकल

1 एक छोटी सी लड़ाई
संभावना प्रकाशन, पंचकूला
प्रथम संस्करण 2000

2 संपूर्ण कवितायें
आधार प्रकाशन, पंचकूला
प्रथम संस्करण 2000

13. कुमार अंबुज

1 क्रूरता
राधाकृष्ण प्रकाशन
नई दिल्ली 110 002
प्रथम संस्करण 1996

2 किवाड़
राधाकृष्ण प्रकाशन,
नई दिल्ली 110 002
प्रथम संस्करण 1996

3 अनन्तिम
राधाकृष्ण प्रकाशन
नई दिल्ली 110 002
प्रथम संस्करण 1998

15 कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह

1 इतिहास का संवाद
श्रीकला प्रकाशन
दिल्ली
प्रथम संस्करण 1979

16 केदारनाथ सिंह

1 यहाँ से देखो
राधाकृष्ण प्रकाशन,
नई दिल्ली 110 002
प्रथम संस्करण 1983

- अभी बिलकुल अभी
संभावना प्रकाशन
हापुड़ 245 101
द्वितीय संस्करण 1980

3 अकाल में सारस
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली 110 002
प्रथम संस्करण 1988

4 ज़मीन पक रही है

17 केदारनाथ अग्रवाल

1 जो शिलायें तोड़ते है
परिमल प्रकाशन, इलहाबाद 211 006
प्रथम संस्करण 1986

2 फूल नहीं रंग बोलते हैं

18 गगन गिल

1 एक दिन लौटेगी लडकी
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली 110 002,
प्रथम संस्करण -1989

2 अंधेरे में बुद्ध
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली - 110 002
प्रथम संस्करण 1996

3 यह आकांक्षा समय नहीं
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली - 110 002
प्रथम संस्करण 1998

19 चम्पा वैद

1 सन्नाटे के इर्द-गिर्द
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नई दिल्ली 110 002
प्रथम संस्करण 1997

		2 अब सब कुछ बैचारिकी संकलन नई दिल्ली 110 091 प्रथम संस्करण 1993
20.	चन्द्रकान्त देवताले	1 दीवारों पर खून से राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली 110 002 प्रथम संस्करण 1975
		2 लकड़बग्धा हँस रहा है संभावना प्रकाशन हापुड़ 245 101 प्रथम संस्करण 1980
		3 उसके सपने वाणी प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 1997
21	जगदीश चतुरवेदी	1 इतिहासहन्ता जगतराम एण्ड सन्स दिल्ली 110 031 प्रथम संस्करण 1984
22	देवीप्रसाद मिश्र	प्रार्थना के शिल्प में नहीं लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद - 1 प्रथम संस्करण 1989
23	धर्मवीर भारती	1 कनुप्रिया भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणासी प्रथम संस्करण 1959
		2 अन्धायुग
24	धूमिल	1 संसद से सडक तक राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 6 प्रथम संस्करण 1972

2 कल सुनना मुझे
युग बोध प्रकाशन, वाराणासी 2
प्रथम संस्करण 1977

3 सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 110 002
प्रथम संस्करण 1984

25 नागार्जुन

1 तुमने कहा था
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 110 002
प्रथम संस्करण 1980

2 युग धारा
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 110 002

3 सतरंगे पंखोंवाली
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 110 002
प्रथम संस्करण - 1984

4 चुनी हुई रचनायें
वाणी प्रकाशन,
नई दिल्ली 110 002
प्रथम संस्करण 1985

26 निराला

1 निराला रचनावली
राजकमल प्रकाशन,
नई दिल्ली 110 002
प्रथम संस्करण 1983

27 नीलेश रघुवंशी

घर-निकासी
किताब घर,
नई दिल्ली 110 002
प्रथम संस्करण 1997

28 प्रभात त्रिपाठी

1 आवाज़
राधाकृष्णा प्रकाशन
नई दिल्ली 110 002
प्रथम संस्करण 1994

2 सड़क पर चुपचाप
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 110 002
प्रथम संस्करण 2000

29 प्रयाग शुल्क

1 कविता संभव
अमिताभ प्रकाशन, कलकत्ता 7
प्रथम संस्करण 1968

2 बीते कितने बरस
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 110 002
प्रथम संस्करण 1993

30 बोधिसत्व

1 सिर्फ कवि नहीं
प्रथम संस्करण 1991

2 हम जो नदियों का संगम है
राधाकृष्ण प्रकाशन,
प्रथम संस्करण 2000

31 भारत भूषण अग्रवाल

अग्निलीक
प्रथम संस्करण

32 भगवत रावत

1 बिथा कथा
प्रवीण प्रकाशन,
नई दिल्ली 110 030
प्रथम संस्करण 1997

33 मुक्तिबोध

मुक्तिबोध रचनावली, भाग - 1& 2
संपादक नेमिचन्द्र जैन
राजकमल पेपर बैक्स
नई दिल्ली 110 002
प्रथम संस्करण 1985

34 मलयज

1 अपने होने को अप्रकाशित करता हुआ
संभावना प्रकाशन, हापुड 245 101
प्रथम संस्करण 1980

35 मंगलेश डबराल

1 पहाड पर लालटेन
राधाकृष्ण प्रकाशन,
नई दिल्ली 110 002
प्रथम संस्करण 1981

2 घर का रास्ता
राधाकृष्ण प्रकाशन,
नई दिल्ली 110 002
प्रथम संस्करण 1988

3 हम जो देखते हैं
राधाकृष्ण प्रकाशन,
नई दिल्ली 110 002
प्रथम संस्करण 1997

4 आवाज़ भी एक जगह है
वाणी प्रकाशन,
नई दिल्ली - 110 002
प्रथम संस्करण 2000

36 रघुवीर सहाय

1 सीढियों पर धूप में

2 आत्महत्या के विरुद्ध
राजकमल प्रकाशन
प्रथम संस्करण - 1967

3 हँसो हँसो जल्दी हँसो
नाशनल पब्लिशिंग हाउस,
दिल्ली 110 006,
प्रथम संस्करण 1975

37 राजेश जोशी

1 मिट्टी का चेहरा

2 नेपथ्य में हँसी
राजकमल प्रकाशन,
प्रथम संस्करण - 1994

		3	दो पंक्तियों के बीच राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 110 002 प्रथम संस्करण 2000
38	राजकमल चौधरी		इस अकाल वेला में, वाणी प्रकाशन प्रथम संस्करण 1988
39	लीलाधर जगूडी	1	भय भी शक्ति देता है राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 110 002 प्रथम संस्करण 1991
		2	महाकाव्य के बिना किताब घर, नई दिल्ली 110 002 प्रथम संस्करण 1995
40	विजयदेव नारायण साही	1	मछली घर भारती मंडार, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1966
		2	साखी इंस्टर्न मीडिया सर्विसेज प्राइवेट लि. सातवाहन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली 110 065, प्रथम संस्करण 1983
41	विनोदकुमार शुक्ल	1	सब कुछ होना बचा रहेगा राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 110 002 प्रथम संस्करण 1992
		2	वह आदमी नया गरम कोट पहनकर चला गया विचार की तरफ आधार प्रकाशन, पंचकूला प्रथम संस्करण 1996

		3	अतिरिक्त नहीं वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 110 002 प्रथम संस्करण 2000
42	विष्णु खरे	1	सबकी आवाज़ के पर्दे में राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 110 002 प्रथम संस्करण 1994
		2	पिछला बाकी राधाकृष्ण प्रकाशन प्रथम संस्करण 1998
43	विश्वनाथ प्रसाद तिवारी	1	आखर अनन्त राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 110 002 प्रथम संस्करण 1991
44	वेणुगोपाल	1	वे हाथ होते हैं अनादी प्रकाशन, इलाहाबाद 2 प्रथम संस्करण
		2	हवायें चुप नहीं रहती संभावना प्रकाशन, हापुड- 245 101 प्रथम संस्करण 1980
		3	चट्टानों का जलगीत शीर्षक प्रकाशन, हापुड- 245 101 प्रथम संस्करण 1980
45	वीरेन डंगवाल		इसी दुनिया में निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1991
46	शमशेर	1	कुछ कवितायें कुछ और कवितायें राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 110 002 प्रथम संस्करण 1984

2 काल तुझसे होड है मेरी
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 110 002
प्रथम संस्करण 1988

3 टूटी हुई बिखरी हुई
राधाकृष्ण प्रकाशन,
नई दिल्ली 110 002
प्रथम संस्करण 1990

4 इतने पास अपने

47 सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

1 गर्म हवायें

2 जंगल का दर्द
प्रथम संस्करण 1994

3 कुआनो नदी,
प्रथम संस्करण 1973

4 खूँटियों पर टंगे लोग
राजकमल प्रकाशन,
नई दिल्ली 110 002
प्रथम संस्करण 1982

48 सुमन राजे

1 यात्रादंश
साहित्य निकेतन, धानपुर
प्रथम संस्करण 1987

2 एरका
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नई दिल्ली 110 002
प्रथम संस्करण 1990

पत्रिकायें

1)	अक्षरा	जनवरी मार्च	2000
2	आलोचना	जनवरी मार्च	1968
3)	आलोचना	अप्रैल जून	1987
4)	आलोचना	जूलाई सितंबर	1987
5)	आलोचना	अक्तूबर दिसंबर	1987
6)	उद्‌भावना	फरवरी	2001
7)	ओर	जूलाई - सितंबर	1991
8)	गगानांञ्चल	अंक 34	1989
9	दस्तावेज़	अक्तूबर-- मार्च	90-91
10	दस्तावेज़	अप्रैल जून-	1991
11	दस्तावेज़	अप्रैल जून-	1992
12	दस्तावेज़	जनवरी - मार्च	1999
13	पल प्रतिपल	मार्च जून	1999
14	पल प्रतिपल	सितंबर	2000
15	भाषा	जून	1981
16	भाषा	दिसंबर	1982
17	भाषा	सितंबर	1984
18	मधुमति	मई	1991
19	मधुमति	मई	1996
20	मधुमति	दिसंबर	1996
21	वर्तमान साहित्य विशेषाँक	अप्रैल -मई	1992

22	वसुधा	जुलाई सितंबर	2000
23	वागर्थ	अप्रैल	1998
24	वागर्थ	अक्तूबर	1998
25	वागर्थ	नवंबर	1999
26	संचेतना		1999
27	समीक्षा	जनवरी मार्च	1993
28	साक्षात्कार	नवंबर	1993
29	हंस	मार्च	2001
30	ज्ञानोदय	अक्तूबर	1968